CCP-03

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पौध संरक्षण एवं प्रबंधन (Plant Protection Management)

4

पाठ्यक्रम अभिकल्प समिति

अध्यक्ष

प्रो. (डॉ.) एल. आर. गुर्जर
निदेशक, संकाय विभाग
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा (राजस्थान)

समन्वयक / सदस्य

समन्वयक

प्रो. (डॉ.) बी. अरुण कुमार
आचार्य राजनीति विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

सदस्य

1. **डॉ. पुरुषोत्तम सिंह सिनसिनवार**
   सेवानिवृत्त आचार्य (मृदा विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक,
   कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा
2. **प्रो. (डॉ.) ए.पी. सिंह**
   आचार्य (सस्य विज्ञान) इन्दिरा गांधी
   कृषि विश्वविद्यालय, रायपुर(छ.ग.)
3. **डॉ. एस.एस. तोमर**
   आचार्य (सस्य विज्ञान) एवं क्षेत्रीय निदेशक,
   कृषि अनुसंधान केन्द्र, कोटा
4. **श्रीमती श्वेता गुप्ता**
   गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
5. **डॉ. एन.एन. त्रिपाठी**
   सह आचार्य (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र
   कोटा

सम्पादक एवं पाठ लेखक

सम्पादक

श्रीमती श्वेता गुप्ता
गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

इकाई लेखक — **इकाई संख्या**

1. **डॉ. प्रताप सिंह** — 4
   आचार्य(सस्य विज्ञान),
   कृषि अनुसंधान केन्द्र,कोटा
2. **डॉ. एच. आर. चौधरी** — 15
   आचार्य(सस्य विज्ञान),
   कृषि अनुसंधान केन्द्र,कोटा
3. **डॉ. एन.एन. त्रिपाठी** — 7,8
   सह आचार्य (कीट विज्ञान) कृषि विज्ञान केन्द्र
   कोटा
4. **डॉ. आर.के. शिवरन** — 1
   सहायक आचार्य(सस्य विज्ञान),कृषि अनुसंधान
   केन्द्र, कोटा
5. **डॉ. बलदेव राम** — 2
   सहायक आचार्य(सस्य विज्ञान),कृषि अनुसंधान
   केन्द्र,कोटा
6. **डॉ. जे.पी. तेतरवाल** — 5
   सहायक आचार्य (सस्य विज्ञान), कृषि
   अनुसंधान केन्द्र, कोटा
7. **डॉ. अनुराधा शर्मा** — 13
   सहायक आचार्य, वनस्पति विज्ञान
   वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा
8. **डॉ. अशोक कुमार कुम्हार** — 11
   सहायक संचालक
   कृषि किसान कल्याण तथा कृषि विकास
   भोपाल (म.प्र.)
9. **श्री अविनाश सरोंजा** — 14
   सहायक क्षेत्रीय प्रबन्धक
   नेशनल फर्टिलाइजर लिमिटेड
   (भारत सरकार का उपक्रम) नीमच (म.प्र.)
10. **श्रीमती श्वेता गुप्ता** — 3,6,9,10,12
    गेस्ट फेकल्टी, कृषि विज्ञान
    वर्धमान महावीर खुला
    विश्वविद्यालय, कोटा

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो. (डॉ.) विनय पाठक	**प्रो.(डॉ.) एल.आर. गुर्जर**	**प्रो. (डॉ.) पी.के. शर्मा**
कुलपति	निदेशक,संकाय विभाग	निदेशक, क्षेत्रीय सेवाएं
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा	वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय,कोटा

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

उत्पादन 2013

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप मे 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

विषय सूची

पौध संरक्षण एवं प्रबंधन (Plant Protection Management)

इकाई संख्या	इकाई का नाम	पृष्ठ संख्या
इकाई – 1	खरपतवार के महत्व, विशेषताएं एवं हानिकारक प्रभाव	6–13
इकाई – 2	खरपतवार का वर्गीकरण, फसल से जुड़े खरपतवार	14–26
इकाई – 3	फसलों मे खरपतवार नियंत्रण	27–53
इकाई – 4	एकीकृत खरपतवार प्रबंधन	54–72
इकाई – 5	खरपतवार नाशक के छिड़काव में इस्तेमाल उपकरण	73–82
इकाई – 6	फसलों के मुख्य कीट और उनका नियंत्रण	83–102
इकाई – 7	बागवानी फसलों के मुख्य कीट और उनका नियंत्रण	103–117
इकाई – 8	एकीकृत कीट प्रबंधन	118–132
इकाई – 9	कीटनाशक छिड़काव के उपकरण	133–147
इकाई – 10	पादप रोग विज्ञान का इतिहास एवं सिद्धान्त	148–173
इकाई – 11	फसलों के मुख्य फफुदीय रोग एवं नियंत्रण	174–196
इकाई – 12	बागवानी फसलों के मुख्य फफुदीय रोग एवं नियंत्रण	197–212
इकाई – 13	फसलों के मुख्य जीवाणु रोग एवं नियंत्रण	213–224
इकाई – 14	बागवानी फसलों के मुख्य जीवाणु रोग एवं नियंत्रण	225–239
इकाई – 15	भंडारित अनाज कीट	240–248

इकाई 1

खरपतवारों के महत्व, विशेषताएं एंव हानिकारक प्रभाव

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्वेश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 परिभाषा

1.3 खरपतवारों के महत्व

1.4 खरपतवारों की विशेषताएं अथवा कठोरता अथवा मितव्यता

1.5 खरपतवारों से हानियां

1.6 साराशं

1.7 बहु चयनात्मक प्रश्न

1.8 सर्दभ ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

खरपतवार उगाई जाने वाली फसल को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से हानि पहुंचाते है। इस प्रकार खरपतवार कृषक की प्रति इकाई क्षेत्र आय कम करते है। फसलोत्पादन में खरपतवार की रोकथाम आवश्यक है। खरपतवार की रोकथाम करने के लिए खरपतवारों का अध्ययन आवश्यक है। खरपतवारों के वर्गीकरण में मुख्यतः उनके अंकुरण बढ़ने पकने का समय, उनकी आयु, खरपतवार के वुर्द्धि करने का ढंग, उनकी जलवायु एवं मृदा सम्बन्धी आवश्यकता उनकी भौतिक एवं दैहिक व फसलों के साथ घनिष्ठता आदि कारकों को विशेष आधार माना जाता है।

1.1 प्रस्तावना

कृषि में खरपतवार एक प्रमुख समस्या है जो किसानों को अपनी उगाई जाने वाली फसलों से पूर्ण लाभ नहीं उठाने देती । खरपतवार उगाई जाने वाली फसल को प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से हानि पहुँचाते है। इस प्रकार खरपतवार कृषक की प्रति इकाई क्षेत्र आय कम करते है। खरपतवारों द्वारा की जाने वाली फसल की पैदावार में हानि 5 प्रतिशत से 70 प्रतिशत तक ऑकी गई हैं खरपतवार द्वारा कभी-कभी खेतो से 150 किग्रा./हे. नाइट्रोजन उपयोग कर ली जाती है। विभिन्न वैज्ञानिकों ने खरपतवारों का विस्तृत अध्ययन करके खरपतवारों को विभिन्न रूप में परिभाषित किया है।

1.2 परिभाषा

खरपतवार वे अवांच्छित पौधे हैः जो किसी स्थान पर बिना बोये उगते हैं और जिनकी उपस्थिति कृषक को लाभ की तुलना में हानिकारक अधिक है।

(अ) एब्सोल्यूट खरपतवार-इस वर्ग के अन्दर उपर्युक्त सभी एकवर्षीय, द्विवर्षीय बहुवर्षीय खरपतवार सम्मिलित करते हैं। कृषक को हमेशा इनसे हानि ही पहुँचती है। फलोत्पादन में यह एक प्रमुख समस्या है।

(ब) रिलेटिव खरपतवार-इस वर्ग में फसलों के वे पौधे जिन्हें किसान खेत में नहीं बोता, वे स्वयं ही उग आते हैं, रिलेटिव खरपतवार कहते हैं, जैसे-गेहूं के खेत में जो, जना व सरसों आदि यदि उग जाये तो ये समस्या है। ये सभी निम्न प्रकार के होते है

1. **अनुकारी अथवा नकलची खरपतवार**-धान के खेत में जंगली धान, गेहूँ के खेत में जंगली जई व मंडूसी जैसे खरपतवार अपने परपोषी फसल के पौधों के साथ बाह्य आकारिकी में मिलते हैं और फसल के साथ-साथ बढ़ते रहते हैं। इन्हें अनुकारी या नकचली खरपतवार कहते हैं।
2. **विशेष सूक्ष्म जलवायु के खरपतवार**-काँसनी व स्वाइनक्रैस खरपतवार को छायायुक्त व ठंडी नम जलवायु की आवश्यकता होती है। यह जलवायु बरसीम व लुसन की फसल में प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। ये खरपतवार इसी कारण से इन फसलों में पाये जाते हैं।

जंगली प्याज, लहसुन व मंडूसी के बीज उसी ऊँचाई व उसी समय पर पकते हैं, जबकि सर्दियों की अन्न वाली फसलों के बीज पकते हैं। फसल की कटाई पर वे फसल के बीजों में मिल जाते हैं।

(स) रोगय-जब किसी फसल की अन्य जाति का पौधा बिना बोये खेत में ही उगता है तो वह रोगय कहलता है। उदाहरण के रूप में यदि गेहूँ की एच. डी. 1553 की फसल में बिना बोये गेहूँ की यू.पी. जाति 262 का पौधा उग जाये तो यह रोगय कहलायेगा। किसी जाति विशेष की शुद्वता को बनाये रखने के लिये इस प्रकार के अइच्छित पौधों को खेत में उखाड़ना (रोगिग) आवश्यक होता है।

प्रभागीय व संकाय खरपतवार-इस वर्ग के खरपतवार पहले जंगली जातियों के साथ उगते हैं तथा कृषित भूमियों पर पहुँचकर फसलों के साथ पूर्ण प्रतियोगिता कर मनुष्यों के कार्य-कलापों को सहन करते हुए, उगना प्रारम्भ कर देते हैं, जैसे-नागफनी

अविकल्पी खरपतवार-जो खरपतवार कृषि भूमियों या अव्यवस्थित भूमियों में अन्य पौधों की जातियों से प्रतियोगिता नहीं कर पाते उन्हें अविकल्पी खरपतवार कहते हैं जैसे -हिरनखुरी

अनिष्टकारी खरपतवार-वे खरपतवार जो अनइच्छित कष्टप्रद व साधारणतया मनुष्यों के नियन्त्रण के बाहर है। ये खरपतवार प्रजनन व वितरण की असीम क्षमता रखते है। मनुष्यों द्वारा नियन्त्रण की कोशिशों को ये निष्फल कर देते हैं। कॉसनी, अमरबेल, दूबघास, मौथा, कॉस आदि इसके उदाहरण है।

रेंगने वाले खरपतवार-इनके तने भी भूमि पर रेंगकर चलते हैं। इनके तीनों की गॉठों से जड़ें निकलती है। दूब व नूनिया इसका उदाहरण है।

ट्रेलिंग खरपतवार-इन खरपतवारों के तने भी दुर्बल होते हैं। प्रायः फसल के पौधों के सहारे लिपटकर ये ऊपर चढ़ते हैं, जैसे हिरनखुरी चटरी-मटरी व मुनमुना आदि।

आरोही खरपतवार-ये खरपतवार फसल के पौधों के सहारे ही ऊपर लिपटकर चढ़ते हैं। लिपटने के लिये इनमें ट्रेन्डिलस होते हैं, जैसे-कन्दुरी

1.3 खरपतवारों के महत्व

1. **मृदा में पोषक तत्वों का योग**-बहुत से खरपतवार अपनी वानस्पतिक वुद्धि अधिक कर लेते है यदि हरी खाद के रूप में इनका प्रयोग कर लिया जाये तो मृदा में ये काफी मात्रा में पोषक तत्व जमा कर लेते हैं । मृदा के ऊपरी सतह में पहुंचा देते हैं बावर्चा व गोखरू 3.5 प्रतिशत शुष्क भार के आधार पर नाईट्रोजन रखते हैं आई.सी. ए.आर. के एक सर्वेक्षण के आधार पर यह पाया गया है कि कुछ जंगली लैग्यूम वातावरण से नत्रजन का स्थिरीकरण करती है और इनमें 15-6 प्रतिशत तक नत्रजन पाई जाती है। इनके अन्दर पोटाश की भी मात्रा होती है। इस प्रकार की लैग्यूमस को खेत में दबाने पर मृदा में इनका सडाव भी शीघ्र होता है। इस प्रकार खरपतबार मृदा में विभिन्न खाद्य तत्वों को बढ़ाने में सहायक हो सकते हैं।
2. **मृदा क्षरण की रोकथाम**-खरपतवार भूमि के ऊपर फैलकर व भूमि में जड़ों का विकास करके, वायु एवं जल द्वारा होने वाले मृदा क्षरण को रोकने में सहायता देते है।
3. **चारे के रूप में खरपतवारों का उपयोग**-विभिन्न खरपतवार जैसे दूब चारे के रूप में पशुओं का उत्तम आहार है।
4. **खरपतवारों का दवाइयों में प्रयोग**-कुछ खरपतवारो जैसे गुम्बा सॉप के काटने पर काम में लाया जाता है। सत्यानाशी के बीजों से निकाला गया तेल अनेक त्वचा रोग में प्रयोग होता है।
5. **खरपतवारों का आर्थिक महत्व**-कॉस आदि खरपतवार छप्पर आदि तैयार करने के काम आते हैं। मूंज व रामबॉस से रस्यॉ तैयार करते है। लेमिन घास की पत्तियों से निकाला गया तेल सुगन्ध के लिये प्रयोग करते है। यह तेल मच्छर भगाने वाली क्रीम तैयार करने के काम में भी लाया जाता है।
6. **खरपतवारों से ऊपरी भूमि का सुधार**-ऊसरी भूमि के सुधार के लिये सत्यानाशी व सैजी खरपतवार को उगाना लाभदायक पाया गया है।
7. **खरपतवार का सजावट में प्रयोग**-बागो व सड़को के किनारे कुछ खरपतवारों का हैज लगाने में प्रयोग किया जाता है जैसे जरायन आदि।

1.4 खरपतवारों की विशेषताएँ अथवा कठोरता अथवा मितव्यता

फसल के पौधों की अपेक्षा, खरपतवारों में उगने बढ़ने एवं विस्तार करने का गुण अधिक होता है। खरपतवारों की अनेकों विशेषताओं का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है।

1. खरपतवारों के बीजों का अंकुरण शीघ्र होता है व बीजांकुर तेजी से बढ़वार करते है। खरपतवारों की बीजांकुर सख्त होते है तथा वे फसल के पौधों के साथ प्रकाशए नमी व पोषक तत्वों के लिये तेजी से संघर्ष करते है। खतरवारों के बीजों की विशिष्ट क्रियाविधि उसमें अंकुरण की आवृत्ति हैं जिसमें खरपतवरों की कुछ जातियों जैसे जंगली चैलाई, नियमित समयान्तर पर अंकुरित होती रहती हे।

2. खरपतवारों के फूल शीघ्र आते है बीज अधिक मात्रा में व फसल से जल्दी पकते है। जंगली चैलाई का एक पौधा 1080220, मकाये का एक पौधा 178000, सत्यानाशी पॉच हजार जंगली जई 250 एवं स्ट्रीगा आधा करोड़ बीज प्रतिवर्ष पैदा करता है। इस प्रकार खेत से खरपतवारों का पूर्णतया उन्मूलन कभी-कभी असम्भव हो जाता है।
3. खरपतवारों की जड़ें, फसल के पौधों की तुलना में शीघ्र विकसित होती है। इनकी वृद्वि भूमि में चारों ओर व काफी गहराई तक होती है। प्रयोगों से मालूम होता है कि कॉस व हिरनखुरी की जड़ें भूमि में 20 फीट व जवासे की जड़ें भूमि में 13 फीट की गहराई तक पहुँच जाती है।
4. खरपतवारों के बीजों की अंकुरण शक्ति बहुत समय तक बनी रहती है। बथुवे के बीज भूमि में 40 वर्ष तक रहने के बाद भी उग आते हैं।

भूमिगत बीजों का जीवनकाल

विभिन्न खरपतवारों का आयु काल

खरपतवार	**आयु वर्षो में**
दूबघास	2
बरू	4
सोकस आर्वेन्सिस	5
मौथा	5
एग्रोपाइरोन रिपेन्स	5
ट्रिबुलस टैरिस्ट्रिस	8
पीला पौधा (सा. एस्कुलेन्टस	20
सिरसियम आर्वेन्स	20
जंगली सरसों	30
हिरन खुरी	50

5. अधिकतर खरपतवारों को लम्बे समय तक जलमग्न अवस्था में रखने से अंकुरण क्षमता बहुत घट जाती है। दूबघास के बीजों को 28 सेमी. गहराई पर जलमग्न 30 दिन तक करने से अंकुरण 48 प्रतिशत व 50 दिन तक करने से अंकुरण 14 प्रशित रह जाता है। परिपक्व व शुष्क बीज नीमयुक्त कच्चे बीजों की अपेक्षा अग्नि के प्रभाव के प्रति अधिक रोधी होते है। हिरनखुरी के बीजों का अंकुरण अग्नि द्वारा घट जाता है। कई झाड़ीदार खरपतवार के बीजों की अंकुरण क्षमता, अग्नि के सम्पर्क में आने के कारण बढ़ जाती है।
6. कुछ खरपतवारों के बीज, अपरिपक्व अवस्था में काटे जाते हैं तो भी अपनी अंकुरण क्षमता 100 प्रतिशत बनाये रखते हैं, जैसे-सोन्वस आर्वेन्सिस । जंगली पालक व चिकवीड के अपरिपक्व बीजों वाले पौधे को उखाडने पर भी बीज परिपक्व हो जाते है। विभिनन खरपतवारों के पौधे में फूल आने के बाद बीज परिपक्व होने का समय नीचे तालिका में दिया गया है।

खरपतवारों के पौधों में फल आने से परिपक्व होने का समय

1. कृष्णशील	25	15
2. सत्यानाशी	50	35
3. प्याजी	40	15
4. खिसारी	35	15
5. सफेद सैंजी	35	20
6. मकोय	45	15
7. मुनमुना	30	15

7. जलवायु भूमि व जैविक प्रतिकूल परिस्थितियों में खरपतवार के पौधे शीध्रता से बीजों का उत्पादन कर लेते हैं।
8. अधिकतर खरपतवारों की पत्तियों पर, इनकी रक्षा के लिये, सख्त बाल, चिपचिपे पदार्थ अथवा कॉटे होते हैं।
9. खरपतवारों की पत्तियों पर क्रियाशील रन्ध्रकूपों की संख्या अधिक पाई जाती है।
10. खरपतवारों की बीजों में वितरण अथवा फैलाव के लिये बीजों पर हुक, पंख, बाल व कॉटे आदि होते हैं, जैसे-काकोलेबर व कम्पोजिटि वर्ग के खरपतवारों के बीजों पर।
11. खरपतवार के पौधे यदि बीज बनने के पहले किन्हीं कारणों से नष्ट हो जाये, तो वे विभिनन वानस्पतिक भागों द्वारा अपनी वृद्वि कर लेते है। उदाहरण के लिये, मौथा ट्यूबरस व हिरनखुरी में अपनी वृद्वि लेते है।
12. खरपतवारों के बीजों का आकार व रंग कभी-कभी फसल के बीजों के आकार व रंग से मिलता हुआ होता है। जिसके उदाहरणार्थ, सरसों के बीजों में सत्यानाशी के बीज इसी प्रकार मिल सकते है।
13. खरपतवार के पौधे जलवायु की विषमताओं को अपना रूप बदलकर सह लेते है।
14. एक ही खरपतवार विभिन्न प्रकार की भूमियों में पनप सकता है।
15. खरपतवार के पौधे, फसलों के पौधों की तुलना, में विभिन्न प्रकार की बीमारियों व कीट पतंगों के आक्रमण को सहन करने की क्षमता अधिक रखते है।
16. खरपतवारों की, फसल के पौधों की तुलना में जल सम्बन्धी आवश्यकता कम होती है। जिन भूमियों में जल की कमी के कारण कोई फसल पैदा नहीं होती वहॉ पर भी कुछ खरपतवारों के पौधे सफलतापूर्वक फलते-फूलते है।
17. कुछ खरपतवारों के पौधे विभिनन विकारों वाली भूमियों जैसे-ऊसर, अम्लीय, कंकरीली जलमग्न व दलदली आदि भूमियों में भी वृद्वि कर लेते है।
18. बीजों में सुषुप्ता-फल, बीज या कलियों में सुषुप्ता वह अवस्था है जिसके अन्दर वे जिन्दा रहते हुए अंकुरण नहीं करते।
19. **कुटिल प्रकृति**-बहुत से खरपतवार अपने कड़वे स्वाद दुर्गन्ध, कॉटेयुक्त प्रकृति के कारण पशुओं व मनुष्यों से अपनी रक्षा करते है।

20. **स्वयं पुनः प्रजनन**-फसलों के बीजों के अंकुरण के लिये भूमि की अच्छी तैयारी, नमी का स्तर आदि बनाना होता है, जबकि खरपतवार के बीज स्वयं ही विपरीत परिस्थितियों में उग जाते है।

खरपतवार में निम्न तीन प्रकार की सुषुप्ता अवस्था पाई जाती है-

21. **एनफोर्सड**-जुताई के समय जब बीज नीचे सतहों में चले जाते हैं तो इस प्रकार की सुषुप्ता अवस्था पाई जाती है। जब पुनः जुताई में ये बीज भूमि की ऊपरी 3-5 सेमी की सतह में आते हैं तो नमी व ताप की उचित परिस्थितियॉ मिलने पर अंकुरण करते है।
22. **इन्नेट**-इन्नेट सुषुप्तावस्था सख्त बीज कवच जैसे गोखरू या अपरिपक्व भ्रूण जैसे स्मार्टवीड व कुछ मरूद्भिद खरपतवारों के बीजों में अंकुरण नियन्त्रक के कारण होती है। कुछ विभिन्न जलवायु की परिसिथतियों में यह सुषुप्तावस्था टूट जाती है।
23. **इन्डयूसड**-कुछ बीजों में देहिक परिवर्तनों के कारण इस प्रकार की सुषुप्तावस्था पैदा होती है। ये दैहिक परिवर्तन, भूमि में ताप, कार्बन डाइ-आक्साइड, ऑक्सीजन का दबाव आदि के कारण हो सकती है। जंगली जई के बीज तीनों प्रकार की सुषुप्तावस्था रखते है। सुषुप्तावस्था के कारण बीज अपनी अंकुरण क्षमता, प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बनाये रखने में सक्षम सिद्व होते है।

1.5 खरपतवारों से हानियां

`फसलों की पैदावार में विशेष रूप से खरपतवार, कीट पतंगे पशु व पादप व्याधियॉ अधिक हानि पहुँचती है। अनुमान लगाया गया है कि, खरपतवारों द्वारा पैदावार में की गई कमी, अन्य उपयुक्त तीनों कारकों द्वारा पैदावार में की कमी की तुलना में अधिक होती है। खरपतवार विभिन्न रूपों में हानिकारक होते है। खरपतवार द्वारा की गई कुछ हानियों का वर्णन निम्न प्रकार है।

1. **मृदा नमी पर प्रभाव**-खरपतवारों के पौधे भी मृदा में फसल के पौधों की भांति नमी का उपयोग करते है। कभी-कभी खरपतवारों की जलमांग मुख्य फसल की जल मॉग से भी अधिक होती है जैसा कि.पि. सी. रेहजा के अनुसंधानों से सिद्व होता है। इसके अनुसार शुष्क क्षेत्रों में ज्वार का जलोत्सर्जन गुणांक 430 है जबकि दूब का 313 कुन्दा का 556 और टेफेरोजिया परप्यूरिया का 1108 जलीत्सर्जन गुणांक है।
2. **मृदा में पोषक तत्वों पर प्रभाव**-मृदा में विभिन्न पोषक तत्व जो फसल के पौधों के लिये उपयोगी होते हैं, खरपतवारों द्वारा 7-20 प्रतिशत तक ग्रहण कर किये जाते हैं, असाना (1950) ने गेहूं के खेत में प्रयोग के आधार पर बताया कि विभिन्न खरपतवार 17-20 किग्रा. नाइट्रोजन प्रति है. चूस कर लेते है। कपूर (1950) ने बताया कि पोहली 60 किग्रा. नाइट्रोजन /है. प्रतिवर्ष ग्रहण कर लेती है।
3. **फसलों की उपज पर प्रभाव**-अनेकों वैज्ञानिकों के अनुसंधानरों के आधार पर यह देखा गया है कि विभिन्न फसलों में खरपतवारों के द्वारा 5-50 प्रतिशत तक पैदावार में कमी आ जाती है।

4. **फसलों के गुणों पर प्रभाव**-प्रयोगों के आधार पर यह देखा गया है कि विभिन्न फसलों के दानों से तेल एवं प्रोटीन की प्रतिशता कम हो जाती है। गन्ने के पौधे में चीनी की प्रतिशता कम हो जाती है सब्जियों के गुणों पर भी कुप्रभाव होता है। चारे की फसल के गुण भी नष्ट हो जाते है। इन सभी कारणों से फसल की कीमत गिर जाती है।
5. **रोग एवं कीटों का आरक्षण**-खरपतवारों के पौधे, फसल के पौधों पर आक्रमण करने वाले विभिन्न कीट पतंगों व बीमारियों के जीवाणुओं को क्षरण देकर, फसलों को हानि पहुँचाते है। कुकुरबिट्स पर लगने वाली मेलन एफीड कीट, हिरनखुरी तथा चिकवीड पर शरण लेती है। गाजर एवं सेलरी पर लगने वपाली केरट रस्ट फ्लाई को जंगली गाजार पर शरण मिलती है। गेहू जौ व जई पर लगने वाली केरट रस्ट फ्लाई को जंगली गाजर पर शरण मिलती है। गेहूं, जौ व जई पर लगने वाली तने की रस्ट नामक बीमारी के रोगाणु जंगली जई व क्वैक घास पर शरण लेते है। गाजर पर लगने वाली कैरट ब्लाइट से रोगाणु जंगली गाजर पर शरण लेते है।
6. **कृषि यन्त्रों मशीनों एवं पशुओं की आयु पर प्रभाव**-जिन खेतों में खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है वहॉ पर उनकों नष्ट करने के लिये बार-बार जुताई व गुड़ाई करनी पड़ती है, जिसके कारण कृषि यन्त्र व मशीनों में घिसावट होती है।
7. **भूमि की उत्पादकता पर प्रभाव**-मृदा में खरपतवार अनेकों पोषक तत्वों का चूषित करके मृदा उत्पादकता को कम करते रहते है। इसके अतिरिक्त कुछ खरपतवार मृदा में अपनी जड़ों द्वारा विषैले पदार्थ छोड़ते रहते है। जो आगे बोई जाने वाली फसलों के लिये बहुत हानिकारक होते हैं। क्वेस घास की जड़ों से निकले हुये पदार्थ अनेको फसलों विशेष रूप् से मटर व गेहूं की फसलों के अंकुरण व वृद्वि पर कुप्रभाव छोड़ते है।
8. **कृषक की आय पर प्रभाव**-खरपतवार खेत में बढ़ने पर उनके नष्ट करने में खर्च हुई अतिरिक्त धनराशि व फसल की पैदावार बढ़ने में अतिरिक्त खाद तत्व व सिंचाई में व्यय अधिक धनराशि, कृषक की आय को कम कर देती है।
9. **नहर एवं सिंचाई की नालियों में पानी का ह्रास**-खरपतवार नहरों एवं सिंचाई की नालियों में उगाकर उनके बहने में रूकावट डालते है। साथ ही साथ इन की जड़ों के सहारे पानी रिसकर नष्ट होता रहता है। पानी का कुछ भाग स्वयं खरपतवार ग्रहण कर नष्ट करते है, इस प्रकार सिंचाई क्षमता घट जाती है।
10. **भूमि के मूल्य में कमी**-कृषि योग्य भूमियां जब बहुवर्षीय खरपतवारों से ढकी रहती है तो उनकी कीमत गिर जाती है।
11. **पशु उत्पादित पदार्थो पर प्रभाव**-कुछ खरपतवारों जैसे हुलहुल जब दुध वाले पशु द्वारा खाई जाती है, तो उसके दूध से एक विशेष प्रकार की अनुइच्छित गंध आती है। इसी प्रकार गोखरू जब भेड़ की ऊन में चिपट जाता है तो उनके गुणों में कमी जाती है धतुरा यदि अनजाने में पशु द्वारा खा लिया जाये तो पशु की मृत्यु तक हो सकती है।
12. **खरपतवार मनुष्यों के लिये हानिकारक**-पशुओं के स्वास्थ्य के अतिरिक्त मनुष्यों की त्वचा में खुजलीए चिड़चिड़ापन आदि रोग पैदा करते है। कभी-कभी खरपतवार के ग्रहण करने पर मनुष्यों की मृत्यु भी हो सकती है।

1.6 साराशं

फसलों की पैदावार में विशेष रूप से खरपतवार, कीट पतंगे पशु व पादप व्याधियॉ अधिक हानि पहुँचती है। अनुमान लगाया गया है कि, खरपतवारों द्वारा पैदावार में की गई कमी, अन्य उपयुक्त तीनों कारकों द्वारा पैदावार में की कमी की तुलना में अधिक होती है।

1.7 बहु चयनात्मक प्रश्न

उत्तर

1. खरपतवार में कितने प्रकार की सुषुप्ता अवस्था पाई जाती है
   (अ) तीन (ब) चार (स) एक (द) दो (अ)
2. हिरन खुरी भूमिगत बीजों की आयु वर्षो में है।
   (अ) 20 (ब) 40 (स) 30 (द) 50 (द)
3. खरपतवार अपने परपोषी फसल के पौधों के साथ बाह्रा आकारिकी में मिलते हैं और फसल के साथ-साथ बढ़ते रहते हैं। इन्हें कहते हैं।
   (अ) विशेष सूक्ष्म जलवायु के खरपतवार (ब) रोगय
   (स) अनुकारी या नकचली खरपतवार (द) खरपतवार (स)
4. यदि गेहूँ की एच. डी. 1553 की फसल में बिना बोये गेहूँ की यू.पी.262 जाति का पौधा उग जाये तो यह कहलायेगा।
   (अ) विशेष सूक्ष्म जलवायु के खरपतवार (ब) रोगय
   (स) अनुकारी या नकचली खरपतवार (द) खरपतवार (ब)
5. खरपतवार जो अनइच्छित कष्टप्रद व साधारणतया मनुष्यों के नियन्त्रण के बाहर है। इन्हें कहते हैं।
   (अ) अनिष्टकारी खरपतवार (ब) नकचली खरपतवार
   (स) रोगय (द) सभी (अ)

1.8 सर्दभ ग्रन्थ

1. अहलावत, आई. पी. एस., प्रकाश, ओम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलेंए रामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ
2. सिंह, आर.एल. एवं मेहरोत्रा, जे.एन., 2004, शस्य-विज्ञान कक्षा xI, माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेरः पेज 82-135.
3. Reddy, T.Y. and Reddi, G.H.S., 2000, Principles of Agronomy, Kalyani Publishers, New Delhi.
4. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

इकाई 2

खरपतवार का वर्गीकरण, फसल से जुड़े खरपतवार

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 महत्व एवं उपयोग

2.3 खरपतवार की परिभाषा

2.4 खरपतवार कहलाने के क्या कारण

2.5 खरपतवार होने के क्या लक्षण

2.6 खरपतवारों की विशेषताएँ

2.7 खरपतवारों का वर्गीकरण

2.8 फसलों के प्रमुख खरपतवार

2.9 खरीफ की फसलों में पाये जाने वाले मुख्य खरपतवारों की पहचान

2.10 रबी की फसलों में पाये जाने वाले मुख्य खरपतवारों की पहचान

2.11 सारांश

2.12 बहुचयनात्मक प्रश्न

2.13 संदर्भ ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

खरपतवार क्या है तथा खरपतवार कहलाने के क्या कारण है की जानकारी करना। खरपतवार होने के क्या लक्षण है एवं खरपतवारों की विशेषताएँ आदि की जानकारी करना। खरपतवारों का वर्गीकरण के आधार पर खरीफ एवं रबी के प्रमुख खरपतवारों के बारे में जानना ताकि प्रभावी तरीके से उनका प्रबन्धन किया जा सके।

2.1 प्रस्तावना

भारतीय कृषि में फसलों को खरपतवार, कीट, रोग, त्रृटि पूर्ण भण्डारण एवं चूहों व रोड़ेन्टस् आदि कारकों द्वारा भारी हानि पहुंचायी जा रही है। अनुमानतः हमारे देश में इन कारकों द्वारा करीब 6000 करोड़ रूपये का नुकसान प्रति वर्ष होता है। इसमें से सर्वाधिक 37 प्रतिशत हानि अकेले खरपतवारों द्वारा होती है, 29 प्रतिशत हानि कीड़ों के द्वारा, 22 प्रतिशत हानि बिमारियों के द्वारा तथा 12 प्रतिशत हानि भण्डारण गृह में चूहों व रोड़ेन्टस के द्वारा् होती है।

खरपतवार फसलों के पौधों के साथ भोजन, जल, स्थान व प्रकाश आदि के लिए संघर्ष करते है। इसके साथ-साथ ये फसलों के लिए हानिकारक रोग व कीट को शरण देकर क्षति पहुंचाते हैं। खरपतवारों के द्वारा मात्रात्मक हानि के साथ-साथ फसल उत्पादों की गुणवत्ता में भी कमी आ जाती है जिससे किसानों को उसके उत्पाद का सही मूल्य भी बाजार में नही मिल पाता।

खरपतवार फसल उत्पादन पर निम्न प्रकार से प्रतिकूल प्रभाव डालकर हानि पहुँचाते है जैसेफसल उत्पादन पर प्रभाव, फसल उत्पादों की गुणवत्ता में कमी, पशुधन उत्पादों की मात्रा व गुणवत्ता में कमी, मृदा नमी में कमी, भूमि के मूल्य में कमी, खरपतवार कीट व रोगों को शरण देते है, कृषि यंत्रों, मशीनों व पशुओं की क्षमता में ह्मस, सिचांई जल की हानि, खरपतवार मनुष्यों एवं पशु स्वास्थ्य के लिए घातक, किसान के जीवन स्तर प्रभाव एवं अन्य हानियाँ उदाहरणतः अकृषित् भूमि से खरपतवार कृषि क्षेत्रों में फैल कर खेतों में फसलों को हानि पहुँचाते है। फार्म हाऊस, खाई आदि में पनपने वाले खरपतवार सांप, बिच्छू आदि जहरीले जन्तुओं का आश्रय स्थल बन जाते है। गोखरू आदि के कांटे वाहन के टायरों में धुसकर पंक्चर कर देते है। पर्यटक स्थलों पर खरपतवार उगकर वहां का सौन्दर्य नष्ट करते है। औद्योगिक क्षेत्र में सूखे खरपतवारों में आग लगने का भय रहता है।

2.2 महत्व एवं उपयोग

खरपतवार हानि के साथ-साथ लाभ भी पहुंचाते है। यदि खरपतवारों को सही तरीके से प्रयोग करके उनसे हानि की जगह लाभ ले सकते है। खरपतवारों के द्वारा होने वाले विभिन्न लाभ जैसेः मृदा संरक्षण में सहायक होना, चारे के रूप में खरपतवारों का उपयोंग करना, खरपतवारों की औषधीय महत्तव, खरपतवारों का आर्थिक महत्व (कांस खरपतवार का उपयोग सर्दियों में मकानों पर छप्पर बनाने में, इसके मजबूत तने से मूड्डे व फर्नीचर आदि तथा लैमन घास की पत्तियों से निकले तेल का प्रयोग सौन्दय प्रसाधनों में काम आता है), मृदा सुधार हेतु, खरपतवारों का सजावत के रूप में प्रयोग, जैविक कीट-रोग नियंत्रण में, पौष्टिक शाक-सब्जीः- बथुआ, जगंली चैलाई तथा लेहसुआ इत्यादि, मोथा खरपतवार के ट्यूबर से अगरबत्ती में महक बढ़ाने के काम आता है एवं कासनी खरपतवार के बीजों को काॅफी के बीजों के साथ फीस कर कॉफी का स्वाद बढ़ाया जाता है।

2.3 खरपतवार की परिभाषा

सर्वप्रथम जुथ्रो टूल ने खरपतवार शब्द का प्रयोग किया था। खरपतवार पौधों की ऐसी जातियां है तो अवंाछित रूप से उस स्थान व समय पर उगती है, जहां वे उपयोगी नही होती। खरपतवार जब फसलों के बीच उगते है तो वे सूर्य के प्रकाश-ऊर्जा, मृदा नमी, फसलों के लिए पोषक तत्व एवं बढ़वार हेतु जगह के साथ-साथ विभिन्न कीट व रोगों को आश्रय देकर प्रतिस्पर्धा करते है जिसके परिणाम स्वरूप फसलों की उपज में भारी गिरावट आ जाती है। विभिन्न वैज्ञानिको ने खरपतवारों को अग्रकित रूप में परिभाषित किया है -

1. वैज्ञानिक जेथ्रो टुल के अनुसार खरपतवार वे अनिच्छित पौधे है, जो किसी स्थान पर बिना बोये उग जाते है तथा जिनकी उपस्थिति से किसान को लाभ की तुलना में हानि अधिक होती है। (A Weed is a plant growing where it is not desired - Jethru Tull)

2. डॉ बील के अनुसार ''यदि कोई पौधा उस स्थान में उगता है जहां उसे नही उगाना चाहिए तो उसे खरपतवार कहते है। (Weed is a plant grown out of place - Dr. Bill)
3. पीटर के अनुसार यह एक ऐसा पौधा है जो लाभ की अपेक्षा हानि की अधिक क्षमता रखता है।

2.4 खरपतवार कहलाने के क्या कारण

1. अवांछित पौधे है।
2. यह उस जगह उगते है जहां उनकी आवश्यकता नही होती है उदारहण एक पौधा अपनी जगह से बाहर है।
3. अधिकतर ....., बेकार, अवांछित और विषैले पौधे होते है।
4. कोई भी पौधा या पेड़ कवक को छोड़कर उद्देश्य या मनुष्यों की आवश्यकता के साथ प्रतिस्पर्धा करते है।

अतः खरपतवार को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि बिना चाहने एवं अवांछित पौधे जो जमीन, जल स्त्रोंत एवं मनुष्य के रखरखाव के साथ विशेषतौर से प्रतिस्पर्धा करते है।

2.5 खरपतवार होने के क्या लक्षण

हालांकि एक पौधा खरपतवार है या नही यह उन बातों पर निर्भर करता है कि-

1. पौधे की विशेषताएं एवं स्वभाव।
2. सापेक्ष स्थिति।
3. पौधे के उगने का समय।

इसलिए, सभी पौधे एक विशेष परिस्थिति में खरपतवार हो सकते है।

2.6 खरपतवारों की विशेषताएँ

खरपतवारों में फसल के पौधों की अपेक्षा उगने, बढ़ने, विस्तृत क्षेत्र में फैलाव की क्षमता आदि अधिक पाई जाती है। जिनका मुख्य कारण खरपतवारों में निम्नलिखित विशेषताओं का पाया जाना है।

बीज उत्पादन अधिक होना:- खरपतवारों में प्रति पौधा बीज संख्या अधिक होने से इनका प्रसार बहुत शीघ्रता से होता है। ऐसे में किसान के लिए इनका पूरी तरह उन्मूलन कर पाना अत्यन्त दुष्कर है। खरपतवारों में प्रति पौधा बीज संख्या तालिका-1 में दी गई है।

तालिका-1. प्रमुख खरपतवारों में प्रति पौधा बीज उत्पादन संख्या।

क्र. स.	खरपतवार का नाम	प्रति पौधा बीज संख्या (लगभग)
1	गाजर घास, सत्यानाशी	5,000
2	अमरबेल	16,000
3	बथुआ	72,000

4	मकोय	1,75,000
5	जंगली चैलाई	1,96,000

2. अधिक गहरी जड़े होना:- खरपतवारों की जड़े फसल के पौधों की अपेक्षा अधिक गहराई तक जाती है जैसे कांस, हिरणखुरी, जवांसा एवं छाजस की जड़े मृदा में 4-6 मीटर गहराई पर जाकर पोषक तत्व व नमी का अवशोषण करते है।
3. बीजों की अधिक जीवन क्षमता:- खरपतवार के बीजों की अंकुरण शक्ति फसल के बीजों की अपेक्षा अधिक होती है। इनकी जीवन क्षमता लम्बे समय तक मृदा में पड़े रहने के बावजूद बनी रहती है। जैसे - बथुआ, जंगली चैलई, हिरनखुरी के बीज 50 वर्ष तक, मोथा के बीज 20 वर्ष तक तथा जंगली सरसों के बीज 30 से 40 वर्ष तक भूमि में पडे रहने के बावजूद अंकुरित होने की क्षमता रखते है।
4. फसल व खरपतवार के बीज क्षमता:- कुछ खरपतवारों के बीज आकार, आकृति, रंग में फसल के बीजों से इतने अधिक मिलते है कि इन्हे अलग से पहचान पाना अत्यन्त कठिन होता है। सत्यनाशी खरपतवार के बीज सरसों से, जंगली जई के बीज जई से आकार व आकृति में अत्यधिक मिलते है।
5. बीजों पर सुरक्षा आवरण:- बहुत से खरपतवार जैसे सत्यानाशी, गोखरू आदि पर कांटे, सख्त बाल ऐसे आवरण पाये जाते है जिससे मनुष्य व पशु इनके नजदीक नही जाते, इस तरह वे अपनी सुरक्षा कर लेते है।
6. वानस्पतिक प्रजनन:- खरपतवारों को यदि बीज बनने से पहले नष्ट कर दे तो भी वे विभिन्न वानस्पतिक भागों द्वारा अपना प्रसारण कर लेते है। उदारणार्थ मोथा - ट्यूबर्स द्वारा, हिरणखुरी - रूट स्टॉक द्वारा।
7. प्रत्येक प्रकार की मृदा में वृद्धि करना:- खरपतवार विभिन्न प्रकार की मृदाओं अम्लीय, क्षारीय, लवणीय, जलमग्न या बंजर मदाओं में भी अपनी वृद्धि कर लेते है। विशेष रूप से बहुवर्षीय खरपतवार कांस, झड़बेरी आदि सभी प्रकार की भूमियों में वृद्धि करते रहते है। भारत में खतरनाक ढंग से फैल रहा खरपतवार गाजर घास (पार्थेनियम) अम्लीय, क्षारीय, कंकरीली सभी मृदाओं में तेजी से वृद्धि करता है।
8. मनुष्य के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव:- बहुत से खरपतवार अपने कड़वे स्वाद व एलर्जिक प्रभाव के कारण मनुष्य के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव डालते है। पार्थेनियम (गाजर घास) के सम्पर्क में आने पर मनुष्यों को एलर्जी, चर्म रोग, एक्जिमा, दमा आदि जानलेवा बिमारियां हो जाती है। इस खरपतवार में पार्थेनिन नामक विषैला प्रदार्थ पाया जाता है। कार्न काकल खरपतवार के यदि 0.5 प्रतिशत बीज गेहूँ के साथ पिस जाये जो आटा विषैला हो जाता है। बरू, दूब घास, बथुआ के परागकण मनुष्यों के श्वसन में बाधा उत्पन्न करते है, इनसे एलर्जी होती है।
9. शीघ्र प्रकीर्णन:- खरपतवारों के बीज फसलों के बीजों से इतने हल्के होते है कि वायु द्वारा शीघ्र एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित हो जाते है। जहां मक्का के प्रति

हजार बीजों का भार 280 ग्राम, मंूगफली का परीक्षण भार 500 ग्राम, वही जंगली सरसों के बीजों का परीक्षण भार 190 मिलीग्राम होता है। इसके अलावा खरपतवारों के बीजों पर पाये जाने वाले हुक, बाल, कांटे भी पशुओं द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानांतरित होकर प्रर्कीणन में सहायक होते है।

10. कीट रोग प्रतिरोधक क्षमता की अधिकता:- खरपतवार के पौधों में कीट - रोग आक्रमण सहने की क्षमता फसल के पौधों से अधिक पाई जाती है।
11. खरपतवार-फसल प्रतियोगिता:- खरपतवार के बीजों का अंकुरण व पौधों की बढ़वार फसल के पौधों की अपेक्षा शीघ्रता से होती है। ये फसल के पौधों से प्रकाश, नमी, पोषक तत्व आदि के लिए संघर्ष करते है। इसे फसल - खरपतवार प्रतियोगिता कहते है। ऐसे में वे फसलें जो शीघ्र अंकुरित होकर जड़े व वानस्पतिक वृद्धि कर सकें, जलवायु की प्रतिकूल दशा को सहन कर सकें, कम खाद - पानी में वृद्धि कर सकें, बोई जानी चाहिए।
12. प्रतिकूल जलवायु से अप्रभावित:- खरपतवार प्रतिकूल जलवायु दशाओं से प्रभावित रहते है। अतिवृष्टि व अनावृष्टि में जब फसलों को भारी हानि हो रही होती है, फसलें नष्ट हो जाती है। इस स्थिति में भी खरपतवार अपनी वृद्धि करते दिखाई देते है। अधिकांशतः बहुवर्षीय खरपतवार यथा- झड़बेरी, मोथा, कांस आदि।
13. खाद-पानी की न्यून आवश्यकता:- खरपतवार के पौधों को जल व खाद (पोषक तत्वो) की न्यून आवश्यकता रहती है। इसीलिए कम उर्वर, बंजर मृदाओं, शुष्क जलवायु वाले क्षेत्रों में भी अपनी वृद्धि कर लेते है। जैसे - पार्थनियम, मोथा, झड़बेरी आदि।
14. शीघ्र वृद्धि व शीघ्र परिपक्वता:- खरपतवार तेजी से बढ़ते है और शीघ्र परिपक्व हो जाते है। गेहूँसा (फैलेरिस माइनर) और जंगली चैलई के पौधे शीघ्र बढ़ कर 60 से 70 दिन में बीज उत्पादन करके अपना जीवन चक्रपूर्ण कर लेते है। इनके तेजी से बढ़ने के कारण फसलों की बढ़वार रूक जाती है।

2.7 खरपतवारों का वर्गीकरण

फसलों में खरपतवार नियंत्रण के लिए खरपतवारों का वर्गीकरण किया जाना जरूरी है। खरपतवारों का वर्गीकरण उनकी आयु, बीज पत्र, फसल-खरपतवार सम्बन्ध, पत्तियों की बनावट, मृदा व जलवायु के आधार पर किया जा सकता है।

1. **जीवन चक्र के आधार पर खरपतवारों का वर्गीकरण:-** जीवन चक्र के आधार पर खरपतवारों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

(अ) एक वर्षीय खरपतवार (Annual weeds):- ये खरपतवार एक वर्ष या उससे भी कम अवधि में अपना जीवन चक्र पूर्ण कर लेते है। इस वर्ग के खरपतवारों को पुनः दो उपवर्गो में विभाजित किया गया है।

क. खरीफ के खरपतवार:- इस वर्ग के खरपतवार वर्षा के आरम्भ में उगते है और अपना जीवन चक्र खरीफ की फसलों के साथ ही पूरा कर लेते है। जैसे- पत्थरचट्टा, जगंली चैलई, लेहसुवा आदि।

ख. रबी के खरपतवार:- इस वर्ग के खरपतवार रबी की फसलों के साथ सितम्बर या अक्टूबर माह में उगना प्रारम्भ कर देते है और अपना जीवन चक्र अप्रैल माह तक पूर्ण कर लेते है। जैसे - कृष्णनील, सत्यानाशी, प्याजी, जंगली जई, बथुआ, गेहूँसा आदि।

(ब) द्विवर्षीय खरपतवार (Biennial weeds):- इस वर्ग के खरपतवार अपना जीवन चक्र दो वर्षो में पूरा करते है। प्रथम वर्ष मे ये खरपतवार अपनी वानस्पतिक वृद्धि करते है, दूसरे वर्ष बीज उत्पादन करते है। जैसे - जंगली गाजर, जंगली गोभी।

(स) बहुवर्षीय खरपतवार (Perennial weeds):- इस वर्ग के खरपतवार कई वर्षो में अपना जीवन चक्र पूरा करते है। एक बार उग कर हर वर्ष वृद्धि करते रहते है। इनकी वृद्धि राइजोम, बल्ब, ट्यूबर्स आदि वानस्पतिक भागों द्वारा होती है। उपयुक्त जलवायु मे ये बीज उत्पादन भी करते है। इन्हे पुनः दो उपवर्गो में वर्गीकृत किया गया है।

क. काष्ठिल खरपतवार (Woody weeds)- इस उपवर्ग में बहुवर्षीय झाड़ियां आती है जैसे झड़मेरी।

ख. शाकीय खरपतवार (Herbacious weeds)- इस उपवर्ग में आने वाले खरपतवारों के तने व शाखायें मुलायम होते है। जैसे- मोथा, हिरणखुरी, अमरबेल।

2. **बीज पत्र के आधार पर वर्गीकरण:-** बीज पत्रों के आधार पर खरपतवारों के दो उपवर्ग है

(अ) एक बीजपत्री खरपतवार (Monocot weeds):- इन खरपतवारों के बीज एक पत्री होते है इसलिए इनके बीज दाल की भांति दो दालों में विभक्त नही होते। जैसे मोथा, कांस, दूब घास, प्याजी, गेहुँसा।

(ब) द्विबीजपत्री खरपतवार (Dicot weeds):- इस वर्ग के खरपतवारों के बीजों को दाल की भांति दो दालों में विभक्त कर सकते है। जैसे - बथुआ, हिरणखुरी, मकोय, सत्यानाशी, जंगली चैलाई आदि।

3. **खरपतवार-फसल सम्बन्ध के आधार पर वर्गीकरण (On the basis of weed-crop association):-** इस वर्गीकरण के अनुसार खरपतवारों को निम्न वर्गो में विभाजित किया गया है -

(अ) निरपेक्ष खरपतवार (Absolute weeds):- इस वर्ग के अन्तर्गत वे सभी खरपतवार आते है जो उपज को कम कर देते है। इसमें एक वर्षीय, द्विवर्षीय व बहुवर्षीय सभी प्रकार के खरपतवार सम्मिलित है जैसे - कुष्णनील, मोथ, हिरणखुरी, दूब घास, गाजर घास आदि।

(ब) सापेक्ष खरपतवार (Relative weeds):- इस वर्ग में फसलों के वे पौधे जिनकी किसान खेत में बुवाई नही करता है तथा वे स्वतः ही उग जाते है, सापेक्ष खरपतवार कहलाते हैं जैसे गेहूँ के खेत में चना, सरसों, मटर का पौधा उग जाये तो इसे सापेक्ष खरपतवार कहते हैं यह समस्या अशुद्ध बीज की बुवाई से उत्पन्न होती है।

(स) नकचली अथवा अनुकारी खरपतवार (Mimicry weeds)- ये खरपतवार अपनी बाह्य आकारिकी में फसल के पौधों से इतना अधिक मिलते जुलते है कि इन्हे फसल के पौधों

से अलग पहचान कर पाना भी कठिन होता है इसलिए इन्हे नकलची खरपतवार कहते है। जैसे - गेहूँ की फसल में गेहूँसा(गुल्ली डंडा)।

(द) विशेष सूक्ष्म जलवायु के खरपतवार (Special microclimatic weeds):- कुछ खरपतवारों को विशेष जलवायु परिस्थितियों की आवश्यकता वृद्धि व विकास के लिए होती है। जैसे कासनी खरपतवार ठण्डी व नम जलवायु में अपनी वृद्धि करता है। ऐसी जलवायु इसे रिजका या बरसीम के खेत में मिलती है। इस कारण कासनी खरपतवार के बीज रिजका या बरसीम के बीजों के साथ ही पकते है। फसल कटाई के समय कासनी के बीज फसल के बीजों में मिल जाते है।

(य) अवांछित खरपतवार (Rogue weeds):- जब फसल की अन्य जाति का पौधा बिना बोये खेत में उग जाता है तो उसे आवंछित खरपतवार कहते है जैसे- गेहूँ की सोनालिका किस्म में लोक-1 के पौधे बिना बोये उग जायें तो लोक-1 किस्म का पौधा अवांछित खरपतवार कहलाएगा। ऐसे अवांछित किस्म के पौधों को उखाड़ने की क्रिया रोगिंग कहलाती है। शुद्ध बीज उत्पादन हेतु रोगिंग आवश्यक है।

4. पत्तियों की बनावट के आधार पर वर्गीकरण:- इस आधार पर खरपतवारों को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

(अ) चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार (Broad leaved weeds):- इस श्रेणी के खरपतवारों की पत्तियाँ चैड़ी होती है। इसमें एकवर्षीय, द्विवर्षीय व बहुवर्षीय सभी चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार सम्मिलित है जैसें - बथुआ, कृष्णनील, हिरणखुरी, बायसुरी, मकोय, जंगली चैलई, अमरबेल, लेन्टाना कैमरा (जरायन), धतूरा, सत्यानाशी आदि।

(ब) संकरी पत्ती वाले खरपतवार (Narrow leaved weeds):- इस वर्ग के खरपतवारों की पत्तियां संकरी होती है। इसमें सभी संकरी पत्ती वाले एकवर्षीय, द्विवर्षीय व बहुवर्षीय खरपतवार सम्मिलित है जैसे - मोथा, दूब घास, कांस, प्याजी आदि।

5. **मृदा व जलवायु के आधार पर वर्गीकरण:-** इस श्रेणी में विशेष भूमि व जलवायु की स्थितियों मंे उगने वाले खरपतवार आते है। इन्हे तीन उपवर्गो में वर्गीकृत किया जाता है।

(अ) जलमग्न भूमियों के खरपतवार (Weeds of waterlogged soils):- ये खरपतवार ऐसे क्षेत्रों में पाये जाते है जहां पर अधिकतर समय पानी भरा रहता है। जैसे - नदियों, तालाबों, नहरों व निचले खेतों में जहां पानी भरा रहता है, पाये जाते है। ये खरपतवार पानी में डूबे रहते है या उनका कुछ भाग पानी की सतह पर निकला रहता है। उदारणार्थ - जलकुम्भी, जंगली धान आदि।

(ब) शुष्क क्षेत्र के खरपतवार (Dryland weeds):- ये खरपतवार जल की कमी वाले क्षेत्र में पाये जाते है। इन खरपतवारों की जड़े गहरी, पत्तियां कम व मोटी, तने पर कांटे पाये जाते है जिसकी वजह से ये कम पानी में भी आसानी से वृद्धि करते है। जैसे - झड़बेरी, नागफली, जवांसा, बायसुरी आदि।

(स) कृषि क्षेत्र के खरपतवार (Weeds of cultivated lands):- इस वर्ग में वे सभी खरपतवार सम्मिलित है जो फसलों के साथ उगकर उनकी उपज काफी कम कर देते है। जैसे - बथुआ, प्याजी, कृष्णनील, हिरणखुरी, जंगली चैलई आदि।

(द) अकृषित क्षेत्र के खरपतवार (Weeds of non cultivated lands):- इस वर्ग में वे खरपतवार सम्मिलित है जो सड़के, रेलमार्ग, गोदाम एवं औद्योगिक क्षेत्रों में उगते है जैसे - लेन्टाना केमरा, कांस, गाजर घास आदि।

6. प्रजनन विधियों के आधार पर खरपतवार का वर्गीकरण:-

(अ) बीज से उत्पन्न होने वाले खरपतवार:- इसमें वे सभी एक वर्षीय, द्विवर्षीय व बहुवर्षीय खरपतवार आते है, जिनका प्रजनन केवल बीजों द्वारा ही होता है। अगर इनको बीज बनने से पहले ही नष्ट कर दिया जाये तो ये पौधे वानस्पतिक भाग द्वारा वृद्धि नही कर सकते। उदाहरणार्थ - प्याजी, कृष्णनील, सत्यानाशी, जंगली गाजर आदि।

(ब) वानस्पतिक भाग से उत्पन्न होने वाले खरपतवार:- इस वर्ग के खरपतवार वानस्पतिक भागों द्वारा ही प्रजनन करते है। ये खरपतवार अपनी भूमिगत जड़ो, तनों, राइजोम, बल्ब, कन्द, पत्तियों द्वारा वृद्धि व जनन करते है। जैसे - हिरणखुरी जड़ो द्वारा, दूब घास सकर्स द्वारा, कांस राइजोम एवं मोथा राइजोम के द्वारा इत्यादि।

(स) बीज व वानस्पतिक भागों द्वारा पैदा होने वाले खरपतवार:- इस वर्ग के खरपतवार बीज व वानस्पतिक अंगो से अपनी उत्पत्ति करते है। अधिकतर बहुवर्षीय खरपतवार इसमें आते है। जैसे - कांस, मोथा, दूबघास आदि। इस वर्ग के खरपतवारों को नष्ट कर पाना अत्यन्त कठिन है। अगर इन्हें बीज बनने से रोक भी दिया जावे तो इनकी वृद्धि वानस्पतिक भागों द्वारा होती रहती है। बीज भी बहुत अधिक संख्या में बनते है।

7. स्थान विशेष पर बहुलता के आधार पर:-

(क) ओब्लीगेट खरपतवार (Obligate Weeds) :-इस प्रकार के खरपतवार केवल मनुष्यों एवं उनकी कृषि कार्यो के साथ ही उगते है। यह कभी-भी जंगली रुप में नही पाये जाते है जैसे बथुआ व कृष्णनील आदि।

(ख) फेकलटेटीव खरपतवार (Facultative Weeds):-इस प्रकार के खरपतवार दोनों रुप में कृषि कार्यो के साथ व जंगली रुप में उगते है जैसे सत्यानाशी व बड़ी दूधी आदि।

8. परपोषी पर निर्भरता के आधार पर:-

(क) सम्पूर्ण जड़ परपोषित खरपतवार (Total root parasite/holo root parasite Weeds):-इस प्रकार के खरपतवार अपना सम्पूर्ण भोजन पौधों की जड़ से लेते है जैसे ओरोबंकी/बांदा/आग्या।

(ख) सम्पूर्ण तना परपोषित खरपतवार (Total stem parasite/holo stem parasite Weeds):-इस प्रकार के खरपतवार अपना सम्पूर्ण भोजन पौधों के तनों से लेते है जैसे अमरबेल।

(ग) अर्द्ध जड़ परपोषित खरपतवार (Semi root parasite Weeds):-इस प्रकार के खरपतवार अपना सम्पूर्ण भोजन पौधों की जड़ के साथ-साथ तने से भी लेते है जैसे रुखड़ी/स्ट्राइगा।

(द) अर्द्ध तना परपोषित खरपतवार (Semi stem parasite Weeds):-इस प्रकार के खरपतवार अपना सम्पूर्ण भोजन पौधों के तने के साथ-साथ जड़ से भी लेते है जैसे लोरेन्थस/बडञ्वाइन।

2.8 फसलों के प्रमुख खरपतवार

(अ) खरीफ की फसलें-

1. धानः- सावां, कोंदो, मोथा, जंगली धान, बानरा, सफेद मुर्ग (सुरली), भंगरा, व कनकदा आदि।
2. मक्काः- गुम्बा, हजारदाना, हुलहुल़ चैलाई, दूब घास, मोथा, बरु, नूनिया आदि।
3. ज्वार एवं बाजराः- गुम्बा, हजारदाना, हुलहुल़ चैलाई, दूब घास, मोथा, बरु, नूनिया आदि।
4. सोयाबीन, मूंग व उड़दः- गुम्बा, हजारदाना, हुलहुल़ मकोय, जंगली जूट, चैलाई, सफेद मुर्ग (सुरली), दूब घास, मोथा, बरु, नूनिया आदि।

(ब) रबी की फसलें:-

1. गेंहू एवं जौ- बथुआ, कृष्णनील, चटरी-मटरी, गेगला, मुनमुना, हिरनखुरी, सोया, सैंजी, प्याजी, मंडूसी या गेंहूसा (फैलेरिस माइनर), कंटीली, जंगली जई, मौथा व दूबाघास आदि।
2. चना, मटर एवं मसूरः- बथुआ, कृष्णनील, चटरी-मटरी, गेगला, आलू, सरसों, हिरनखुरी, गजरी, सैंजी, प्याजी, कंटीली, मौथा व दूबाघास आदि।
3. बरसीमः- कांसनी, कृष्णनील, कंटीली, मौथा व दूबाघास आदि।
4. तम्बाकूः- ओरोबंकी (भुईफोड़), सैंजी, हिरनखुरी, मौथा व दूबाघास आदि।
5. गन्नाः- अधिकतर सभी खरीफ तथा रबी के उपरोक्त खरपतवार गन्ने की फसल में उगते है।

2.9 खरीफ की फसलों में पाये जाने वाले मुख्य खरपतवारों की पहचान

क्र. स.	खरपतवार का नाम	वानस्पतिक नाम	पहचान
1	लटजीरा/चिरचिटा	एकाइरंथस एस्पेरा	बहुवर्षीय, 1 मीटर ऊँचाई, तना कठोर, पत्तियां विपरीत क्रम में, फूल हरापन लिये हुए सफेद रंग के होते है।
2	जंगली चैलई	अमेरेंथस	चैड़ी पत्ती, पत्तियाँ 5 सेमी आकार की, फूल

		विरीडिस	हल्के पीले रंग के, बीज महीन काले चमकीले, प्रजनन बीज द्वारा।
3	कांटेदार चैलाई	अमेरेंथस स्पाइनोसस	चैड़ी पत्तियाँ: अधिकतर बंजर भूमियों में तना सीधा, कांटेदार, झाड़ीरूप में पत्तियां 10 रोगी आकार, प्रजनन बीज द्वारा।
4	दूधी (बड़ी दूधी व छोटी दूधी)	यूफोर्बिया हिरटा व यूफोर्बिया माइक्रोफिला	इनके तने को तोड़ने पर दूध जैसा स्त्राव रिसता है, छोटी दूधी की पत्तियां छोटी व पास-पास होना, बड़ी दूधी की पत्तियां इससे कुछ बड़ी होती है।
5	हजारदाना	फाइलेंथस निरूरी	एक वर्षीय, लगभग 30 सेमी ऊँचाई, शाखये तने के आधार से निकलना है जिन पर इमली जैसी पत्तियां आती है।
6	हुल्हुल	क्लिओम विस्कोसा	वार्षिक, सीधा बढ़ने वाला, पांचपत्ती पत्र एक जगह जुड़े होना, फूल पीले रंग के, बीज भूरापन लिये काले रंग के, चैड़ी पत्ती वाला खरपतवार।
7	बिसखपरा	बोरहेबिया डिफ्यूजा	एक वर्षीय, पत्थरचट्टा से मिलता जुलता, चैड़ी पत्ती, गुलाबी रंग के फूलों वाला, प्रजनन केवल बीज द्वारा।
8	मोथा	साइप्रस रोटुन्डस	बहुवर्षीय, संकरी पत्ती वाला, जड़ों में नट पाये जाते है। बीज व नट द्वारा।
9	गाजर घास	पार्थेनियम हिस्टेरोफोरस	एक वर्षीय, 1 से 1.5 मी. ऊँचाई, प्रत्येक फसल में, बंजर भूमियों में होने वाला इस समय का सर्वाधिक खतरनाक ढंग से फैल रहा खरपतवार है। छूने पर एलर्जी, खुजली व चर्मरोग का हो जाना। गाजर जैसी पत्तियां, सफेद रंग के फूल जिनमें पार्थेनिन नामक विषैला विष पाया जाता है।
10	दूब-घास	साइनोडोन डेक्टीलोन	बहुवर्षीय खरपतवार, संकरी पत्तियां खरीफ की सभी फसलों में पाया जाने वाला, गाठों से जड़े निकल कर तेजी से फैलता है।
11	कांस	सेकेरम स्पोन्टेनियम	बहुवर्षीय संकरी पत्तियां, सभी फसलों को हानि पहुंचाती है। इसकी जड़ों से 20 सेमी. गहराई तक जाल बन जाता है तथा ऊपर से तने निकलते है। प्रसारण बीज व जड़ों से होता है।

12	अमरबेल	कस्कुटा रिफ्लैक्सा	परजीवी बेल, झाड़ियों पर फैलता है। रिजका का पराश्रयी खरपतवार है। अमरबेल के तने पीले, रसदार, उपयुक्त, पराश्रयी मिलने पर इसकी लम्बाई 2 कि.मी. तक हो सकती है। प्रसारण बीज द्वारा व बेल द्वारा।
13	स्ट्राइगा	स्ट्राइगा स्पीसीज	वार्षिक, शाकीये, पराश्रयी, प्रसारण बीज द्वारा। बाजरा, ज्वार, मक्का व गन्ना आदि परपोषी पौधे है। इनकी जड़ों से निकलने वाले विशेष स्टीमुलेंट में स्टा^{a}इगा के बीज अंकुरित हो जाते है।

2.10 रबी की फसलों में पाये जाने वाले मुख्य खरपतवारों की पहचान

क्र. स.	**खरपतवार का नाम**	**वानस्पतिक नाम**	**पहचान**
1	कृष्णनील	एनागेलिस आरवेंसिस	चैड़ी पत्ती वाले, थोड़ा फैलने वाले शाकीय तने, छोटे चमकीले नीले फूल, प्रसारण बीज द्वारा।
2	सत्यानाशी	आरजीमोन मेक्सिकाना	चैड़ी पत्ती वाले, पौधें की ऊँचाई 60 से 90 सेमी. फूलों व फलों पर कांटे, तने से पीला रस निकलता है। बीज देखने में सरसों जैसा व प्रसारण बीज द्वारा।
3	प्याजी	एस्फोडिलस टेन्यूफोलियस	एक वर्षीय, संकरी, पतली, रेशेदार प्याज जैसी पत्तियां ।
4	बथुआ	चिनोपोडियम एल्बम	एक वर्षीय, चैड़ी पत्ती, फूल व फल जनवरी में, 2-3 से.मी. आकार की चिकनी पत्तियां, सब्जी बनाने में उपयोगी।
5	जंगली	जई एविना फतुआ	एक वर्षीय, औसतन 6000 बीज प्रति पौधा, गेहुँ, जौ, जई से मिलता जुलता नकचली खरपतवार।
6	खरबथुआ	चिनोपोडियम मुरेल	वार्षिक, पत्तियां अधिक चैड़ी, हरी, पुष्प हरे गुच्छों में लगते है। प्रसारण बीज द्वारा।
7	हिरणखुरी	कोन्वोल्वुलस आर्वसिस	पूरे वर्ष रहने वाला बहुवर्षीय पत्तियां हिरण के खुर के समान, बेल के रूप में, जड़े 20 फुट से भी अधिक गहरी होती है। प्रजनन बीज व जड़ द्वारा।
8	चटरी-मटरी	लेथाइरस अफाका	तना कमजोर, आधार से टैंड्रिल्स निकलते है, जिनके सहारे यह अन्य पौधों के तनों से

			लिपट्कर ऊपर चढ़ता है। फूल पीले रंग के, प्रसारण बीज द्वारा।
9	सफेद सैंजी	मैलिलोट्स एल्बा	एक वर्षीय, चैड़ी पत्ती, फूल सफेद रंग के, प्रजनन बीज द्वारा, चारे के लिए उपयोगी।
10	पीली सैंजी	मैलिलोट्स इंडिका	एक वर्षीय, चैड़ी पत्ती, फूल पीले रंग के, प्रजनन बीज द्वारा, चारे में उपयोगी।
11	गेहूँ का मामा/गुल्ली डंडा/गेहुँसा/मंडूसी	फैलेरिस माइनर	गेहूँ व जौ की फसल के पौधों से मिलता- जुलता नकलची खरपतवार है। इसके नीचे की गांठे हल्की लाल रंग की होती है। बालियां 3-6 से.मी. लम्बी, बीज काले व अण्डाकार तथा प्रसारण बीज द्वारा।
12	बैंगनी कंटेली	सोलेनम जेंथोकारपम	तने सख्त भूमि पर फैलकर चलने वाले, तनों पर हल्के पीले रंग के कांटे, पत्तियां 5 से 10 से.मी. लम्बी, पत्तियों पर भी कांटे, फूल बैंगनी रंग के, प्रजनन बीज द्वारा।
13	आग्या/बांदा/औरोबंकी	औरोबंकी एजिप्टियाना	तम्बाकू, टमाटर, सरसों में होने वाला जड़ों का सम्पूर्ण पराश्रयी भूरे रंग का खरपतवार है जिसकी ऊँचाई 30 सेमी, प्रसारण बीज द्वारा।
14	जंगली गोभी	लॉनिया एस्प्लेनिफोलिया	यह एक द्विवर्षीय खरपतवार है। तने लम्बे कमजोर, पत्तियां फैली हुई, पत्तियों के किनारें कटे-फटे हुए, प्रसारण बीज द्वारा।

2.11 सारांश

खरपतवारों की अच्छी तरह से पहचानकर जैसे पौधे की विशेषताएं एवं स्वभाव, सापेक्ष स्थिति, पौधे के उगने का समय, उनके जीवन चक्र, बीज पत्र, खरपतवार-फसल सम्बन्ध्, पत्तियों की बनावट, मृदा व जलवाय, प्रजनन विधियों, स्थान विशेष पर बहुलता, परपोषी पर निर्भरता एवं फसलों के साथ उगने के आधार पर करके उचित विधियां अपनाकर आर्थिक दृष्टि पर नियंत्राण कर सकते है।

2.12 बहुचयनात्मक प्रश्न

1. बथुआ के एक पौधे मंे बीजों की संख्या लगभग कितनी पाई जाती है ?
   (अ) 50,000 (ब) 1,00,000 (स) 72,000 (द) 90,000
2. निम्न मं से किस खरपतवार के बीज सरसों के बीजों से आकार व आकृति में मिलते जुलते है ?
   (अ) बथुआ (ब) मोथा (स) सत्यानाशी (द) मकोय

3. निम्न में से गेंहू की फसल का मुख्य खरपतवार है-

(अ) कृष्णनील (ब) गुल्ली इन्ड़ा (स) जंगली चैलाई (द) इनमें से कोई नही

4. सरसों के तेल में दुर्गंध किस खरपतवार के बीज मिले होने से होती है।

(अ) फैलेरिस (ब) सत्यानाशी (स) कंटेली (द) गोखरू माइनर

5. खरपतवारों के द्वारा औसतन कितना प्रतिशत नुकसान होता है।

(अ) 25 (ब) 50 (स) 15 (द) 37

बहुचयनात्मक प्रष्नों के उत्तर

1. (स) 2. (स) 3. (ब) 4. (ब) 5. (द)

2.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. Gupta, O.P., 1998, Modern Weed Management, Agro Botanical Publishers (India), pp. 61-66.
2. Gupta, O.P., 1993, Weed Management: Principles and Practices, Agro Botanical Publishers (India)
3. Reddy, T.Y. and Reddi, G.H.S., 2000, Principles of Agronomy, Kalyani Publishers, New Delhi.
4. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
5. Rao, V.S., 1994, Principles of Weed Science, Oxford & IBH Publishing Co. Pvt. Ltd, pp. 333-373.
6. Singh, Chhidda. 1999., Modern Techniques of Raising Field Crops, Oxford & IBH publishing company private limited, New Delhi.
7. Singh, S.S., 1993, Crop Management under Lirrigated and Rainfed Conditions, Kalyani Publishers, New Delhi.

इकाई 3

फसलों में खरपतवार नियंत्रण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देष्य

3.1 प्रस्तावना

3.2. खरीफ की फसलों में खरपतवार नियंत्रण

3.2.1 धान

3.2.2 ज्वार

3.2.3 बाजरा

3.2.4 छोटे या मोटे या लघु धान्य अन्न की फसलें

3.2.5 सोयाबीन

3.2.6 तूर अथवा अरहर

3.2.7 मूंग और उड़द

3.2.8 तिल या अलसी या रामतिल

3.2.9 कपास

3.2.10 जूट

3.2.11 चारे की फसलों में खरपतवार नियंत्रण

3.3 रबी की फसलों में खरपतवार नियंत्रण

3.3.1 गेहूं

3.3.2 जौ

3.3.3 चना

3.3.4 मसूर

3.3.5 मटर

3.3.6 तोरिया और सरसों

3.3.7 अलसी या तीसी

3.3.8 सूरजमूखी

3.3.9 जई

3.3.10 लुसर्न या रिजका

3.3.11 तम्बाकू

3.4 सारांश

3.5 अभ्यास प्रश्न

3.6 सदंर्भ सामग्री

3.0 उद्देष्य

इस इकाई को पढ़ने के पष्चात आप इस योग्य हो जाएगें कि

- फसलों के मुख्य खरपतवार जान पाएगे।
- खरपतवार नियंत्रण करने का सही समय
- खरपतवार नाषक का सही मात्रा एवम् डालने का सही समय

3.1 प्रस्तावना

फसलों की पैदावार में विषेष कीट पतंगें, पशु व पादप व्याधियां रूप से खरपतवार अधिक हानि पहुंचाती हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि खरपतवार द्वारा पैदावार में की गई कमी, अन्य उपर्युक्त तीनों कारकों द्वारा पैदावार में की गई कमी की तुलना में अधिक होती हैं। खरपतवार विभिन्न रूपों में हानिकारक होते हैं। खरपतवार को यदि सही समय पर नियंत्रित ना किया जाऐ तो ये फसल उत्पादन को काफी प्रभावित कर सकते हैं।

3.2 खरीफ की फसलों में खरपतवार नियंत्रण

3.2.1 धान

खरपतवार की समस्या प्रायः ऊंची भूमियों में अधिक होती है। धान की खेती जिन क्षेत्रों में ऊंची मृदाओं में करते हैं, वहां पर अवसर मिलने पर 20-25 दिन बाद एक निराई-गुड़ाई खुर्पी की सहायता से कर देते हैं। वैसे बेलों द्वारा चालित यंत्र हैरो, जापानी, हो आदि का प्रयोग भी कर सकते हैं। दूसरी निराई की आवश्यकता पड़ने पर रोपाई के 40-45 दिन बाद करते हैं।

लेहयुक्त धान की फसल (रोपित फसल) में खरपतवारों की विशेष समस्या नहीं होती। धान रोपण के समय जो खरपतवार खेत में उगे होते हैं। निचली मृदाओं में जहां पानी भरा रहता है, हाथ से खरपतवार उखाड़ते हैं तथा छोटे यंत्रों द्वारा जैसे जापानी राइस वीडर, हंसिया या खुर्पी की सहायता से खरपतवार निकालते हैं। जपानी राइस वीडर नियंत्रण रोपण के 25-30 दिन बाद होता है। नीची भूमियों में भूमि जलमग्न करके खरपतवार नियंत्रण रखते हैं।

धान में अंकुरण पूर्व खरपतवार नियंत्रण

खरपतवार नाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		
1 ऑक्जाडायर्जिल (राफ्ट, टॉप स्टार)	36	600	बोनी के बाद 0-3 दिन में	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा चुहका, नरजेवा) और कुछ चैड़ी पत्ती वाले (जैसे चुनचुनिया व

				मिर्ची बन पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 पाइराजोसल्फुरन ईथाइल (साथी 10 प्रतिशत डब्ल्यू. पी.)	10	80	बोनी के बाद 0-5 दिन के बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, मोथा, नरजवां आदि कुछ कुछ चैड़ी पत्ती वाले जैसे चुनचुनिया, जलकुम्भी लौंगघास कौआकैनी, तीनपतियां आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
3 ब्यूटाक्लोर (मैचिट, तीर, धानुक्लोर, डोनमिक्स)	400-600	800-1200	बोनी के बाद 6-7 दिन के बाद	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा, जंगलीकोदों, मोथा, नरजवां आदि कुछ कुछ चैड़ी पत्ती वाले जैसे भेंगरा आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
4 प्रीटिलाक्लोर (रिफिट, एल्कोर 50 प्रतिशत ई.सी.)	200-300	400-600	बोनी के बाद 0-3 दिन के अन्दर	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा, मोथा, छतरीवाला मोथा, बन्दरपुछिया और चैड़ी पत्ती वाले जैसे मिर्च बूटी, भेंगरा, जलकुम्भी आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
5 पेन्डिमिथिलिग (स्टॉम्प,पेंडिस्टार, क्रास आदि)	400	1300-1350	बोनी के बाद 6-7 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा, बन्दरपुछिया सीपी आदि और चैड़ी पत्ती वाले जैसे लुनक, छोटी दुधी, जंगली चैलाई, तिपतिया, आलुबन, लौंगघास आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
6 ऑक्जाडाइजोन (रोनस्टार)	200-300	800-1200	प्री और पोस्ट इमरजेंस	ये सकरी एवं चैड़ी पत्ती वाले अनेकों खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

अथवा				
7 ऑक्सीक्लूरफेन (गोल, जारगोन, ओक्सीगोल्ड 23.5 प्रतिशत ई.सी.)	60-100	240-400	बोनी के बाद 0-6 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, मोथा, नरजवां आदि और चैड़ी पत्ती वाले जैसे मिर्च बूटी, भेंगरा, आलुबन आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

धान में अंकुरण पश्चात् खरपतवार नियंत्रण

चैड़ी पत्तीवाली खरपतवार

खरपतवार नाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		
1इथॉक्सीसल्फुरॉन (सनराइज 15 डब्ल्यू.डी.जी.)	6.0	50 ग्राम	बोनी के बाद 0-3 दिन के अन्दर	ये सकरी पत्ती वाले जैसे नरजवां, , मौथा, बन्दरपुछिया, अगरबत्ती बन आदि और कुछ चैड़ी पत्ती वाले जैसे चुनचुनिया, मिर्ची बन, कौआकैनी जलकुम्भी, आलुबन, भैंगरा आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 क्लोरिमुरोन 10 प्रतिशत + मेटासल्फुरोन मिथाइल 10 (आलमिक्स)	16	8	बोनी के 15-20 दिनों बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले जैसे जलकुम्भी, आलुबन, तिपतिया, पीले फूल वाली बूटी, भेंगरा, कौआकैनी, बिलोदा, चार पत्ती आदि व संकरी पत्तीवाले जैसे छतरी, वाला मोथा, माक्था, नरजवां आदि पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
3 2,4 - डी.(ग्रीन वीड, वीडमार, नौकवीड) ताफासिड, अरबी ओक्स कोम्बी,	200-336 200-300	250-400 340-620	बोनी के 20-25 दिनों बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले जैसे मौंथा, जलकुम्भी, आलुबन, तिपतिया, पीले फूल वाली बूटी, भेंगरा, कौआकैनी, बिलोदा, चार पत्ती नरजवां, रक्सी,

रगरडन - 48 1 सोडियम साल्ट 80 प्रतिशत 2 एमाइन साल्ट 58 प्रतिशत 3 इथाइल इस्टर 36 प्रतिशत	180-300	528-880		बनमिर्ची, गोखरू, लौंग घास आदि आदि खरपतावारों को नियंत्रण करता है। दवाई डालने के पहले पानी निकाल ले और जहां जरूरत है वहां कुछ दिनों बाद पानी डाल दें।
सकरी पत्तीवाली खरपतवार				
1साइहेलोफॉप ब्युटाइल (क्लीचर, रैपअप)	28-36	300-400	बोनी के 15-20 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे सॉवा/स्वॉक, सोमना आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 फिनोकसाप्रोप-पी-इथाइल (विप सुपर, जूपिटर, प्यूमा सुपर)	24-28	320-400	बोनी के 20-25 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे सॉवा/स्वॉक, सोमना आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
सभी प्रकार के नींदा नियंत्रण				
1 बिसपायरिबेक सोडियम (नोमिनी गोल्ड) 10 प्रतिशत एस.सी.	10	100	बोनी के 20 दिन बाद	ये मोथा, नरजवां, बंदरपुछिया, जलकुम्भी, लौंग, घास, जंगली मिर्च, भेंगरा, सांवा बदौरी आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 साइहेलोफॉप ब्युटाइल (क्लीचर, रैपअप) + इथॉक्सीसल्फुरॉन (सनराइज 15 डब्ल्यू.डी.जी.)	28-36 + 6.0	400 + 50 ग्रा	बोनी के 15-20 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे सॉवा/स्वॉक, सोमना एवं सकरी पत्ती वाले जैसे नरजवां, मौथा, बन्दपुछिया, अगरबत्ती बन आदि और चैड़ी पतती वाले जैसे चुनचुनिया, मिर्ची बन, कौआकेनी, जलकुम्भी, आलुबन, भैंगरा, आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				

3 साइहेलोफॉप ब्युटाइल (क्लीचर, रैपअप) + क्लोरिमुरोन 10 प्रतिशत + मेटासल्फ्युरोन मिथाइल 10 (आलमिक्स)	28-36 + 1.6	400 + 8.0	बोनी के 15-20 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे सॉवा/स्वॉक, सोमना एवं चैड़ी पत्ती वाले जैसे जलकुम्भी, आलुबन, तिपतिया, पीले फूल वाली बूटी, भेंगरा, कौआकैनी बिलोंदा, चार पत्ती आदि व व सकरी पत्ती वाले जैसे छतरी, वाला मौथा, मौथा, नरजवां आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
4 साइहेलोफॉप ब्युटाइल (क्लीचर, रैपअप) + 2,4 - डी. (ग्रीन वीड, वीडमार, नौकवीड, ताफासिड, अरबी ओक्स, कोम्बी,रंगरडन-48) 1 सोडियम साल्ट 80 प्रतिशत 2 एमाइन साल्ट 58 प्रतिशत 3 इथाइल इस्टर 38प्रतिशत	28-36 + 1.6 200-336 200-300 180-300	400 + 8.0 250-400 340-620 528-880	बोनी के 15-20 दिन बाद बोनी के 25-30 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे सॉवा/स्वॉक, सोमना एवं ये चैड़ी पत्ती वाले जैसे मौंथा, जलकुम्भी, आलुबन, तिपतिया, पीले फूल वाली बूटी, भेंगरा, कौआकैनी, बिलोदा, चार पत्ती नरजवां, रक्सी, बनमिर्ची, गोखरू, लौंग घास आदि आदि खरपतावारों को नियंत्रण करता है। दवाई डालने के पहले पानी निकाल ले और जहां जरूरत है वहां कुछ दिनों बाद पानी डाल दें।
अथवा				
5 फिनोकसाप्रोप-पी-इथाइल (विप सुपर, जूपिटर, प्यूमा सुपर) + इथॉक्सीसल्फुरॉन (सनराइज 15 डब्ल्यू.डी.जी.)	24-28 + 6.0	320-400 + 50 ग्रा.	बोनी के 20-25 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे सॉवा/स्वॉक, सोमना आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है। एवं ये सकरी पत्ती वाले जैसे नरजवां, मौथा, बन्दपुछिया, अगरबत्ती बन आदि और चैड़ी पतती वाले जैसे चुनचुनिया, मिर्ची बन, कौआकेनी, जलकुम्भी, आलुबन, भैंगरा, आदि

				खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
6 फिनोकसाप्रोप-पी-इथाइल (विप सुपर, जूपिटर, प्यूमा सुपर) + क्लोरिमुरोन 10 प्रतिशत + मेेटासल्फुयूरोन मिथाइल 10 (आलमिक्स)	24-28 + 1.6	320-400 + 8	बोनी के 20-25 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे सॉवा/स्वॉक, सोमना आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है। एवं ये चैड़ी पत्ती वाले जैसे जलकुम्भी, आलुबन, तिपतिया, पीले फूल वाली बूटी, भेंगरा, कौआकैनी बिलोंदा, चार पत्ती आदि व व सकरी पत्ती वाले जैसे छतरी, वाला मौथा, मौथा, नरजवां आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
7 फिनोकसाप्रोप-पी-इथाइल (विप सुपर, जूपिटर, प्यूमा सुपर) + 2,4 - डी. (ग्रीन वीड, वीडमार, नौकवीड, ताफासिड, अरबी ओक्स, कोम्बी,रंगरडन-48) 1 सोडियम साल्ट 80 प्रतिशत 2 एमाइन साल्ट 58 प्रतिशत 3 इथाइल इस्टर 38प्रतिशत	24-28 + 200-336 200-300 180-300	320-400 + 250-400 340-620 528-880	बोनी के 20-25 दिन बाद + बोनी के 25-30 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे सॉवा/स्वॉक, सोमना आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है। एवं ये चैड़ी पत्ती वाले जैसे मौंथा, जलकुम्भी, आलुबन, तिपतिया, पीले फूल वाली बूटी, भेंगरा, कौआकैनी, बिलोदा, चार पत्ती नरजवां, रक्सी, बनमिर्ची, गोखरू, लौंग घास आदि आदि खरपतावारों को नियंत्रण करता है। दवाई डालने के पहले पानी निकाल ले और जहां जरूरत है वहां कुछ दिनों बाद पानी डाल दें।

3.2.2 ज्वार

खरपतवार का प्रकोप सदैव फसल की प्रारम्भिक अवस्था में ही होता है। वर्षा ऋतु में उगने वाले सभी खरपतवार इस फसल में भी उगते हैं। फसल की 2-3 निराई-गुडाई कर देनी चाहिए। गुड़ाई 4-5 सेमी सेअधिक गहरी न हो अन्यथा फसल की जड़ों को हानि पहुंचने का डर रहता है। छोटे क्षेत्र में निराई खुरपी से व बड़े क्षेत्र में यंत्र की सहायता से कर सकते हैं।

खरपतवार नाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		
1 एलक्लोर (लासो)	200-300	400-600	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती एवं सकरी पत्ती वाले खरपतवार को नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, बंदरपुछिया, मोथा, सीपी आदि और चैड़ी पत्ती वाले जैसे लुनक, छोटी दुधी, जंगली चैलाई, आलूबन, लौंगघास आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2,4 - डी. (ग्रीन वीड, महान वीडमार, आदि) 1 एमाइन साल्ट 58 प्रतिशत 2 इथाइल इस्टर 38प्रतिशत	720 400	200 176	बोनी के पश्चात् 30-40 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले जैसे मौंथा, जलकुम्भी, आलुबन, तिपतिया, पीले फूल वाली बूटी, भेंगरा, कौआकैनी, बिलोदा, चार पत्ती नरजवां, रक्सी, बनमिर्ची, गोखरू, लौंग घास आदि आदि खरपतावारों को नियंत्रण करता है। दवाई डालने के पहले पानी निकाल ले और जहां जरूरत है वहां कुछ दिनों बाद पानी डाल दें।

3.2.3 बाजरा

फसल की प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवारों का प्रकोप अधिक रहता हैै। अतः खेत में 1-2 निराई खुर्पी या कल्टीवेटर से 4-5 सेमी गहरी कर देनी चाहिए

खरपतवारनाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा	डालने का	रिमार्क

	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली.ग्रा)	समय	
1 एलक्लोर (अट्राटाफ धानुसाइन)	100-200	200-400	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये कई सकरी पत्ती एवं चैड़ी पत्ती के खरपतवार को नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, बंदरपुछिया, मोथा, सीपी आदि और चैड़ी पत्ती वाले जैसे लुनक, छोटी दुधी, जंगली चैलाई, आलूबन, लौंगघास आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2,4 - डी. (ग्रीन वीड, महान वीडमार, आदि) 1 एमाइन साल्ट 58 प्रतिशत 2 इथाइल इस्टर 38प्रतिशत 3 सोडियम साल्ट	1400 480-720 800-1040	2400 1400-210 1000-1300	बोनी के पश्चात् 30-40 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले जैसे मौंथा, जलकुम्भी, आलुबन, तिपतिया, पीले फूल वाली बूटी, भेंगरा, कौआकैनी, बिलोदा, चार पत्ती नरजवां, रक्सी, बनमिर्ची, गोखरू, लौंग घास आदि आदि खरपतावारों को नियंत्रण करता है। दवाई डालने के पहले पानी निकाल ले और जहां जरूरत है वहां कुछ दिनों बाद पानी डाल दें।

3.2.4 छोटे या मोटे या लघु धान्य अन्न की फसलें

निराई-गुड़ाई - बीज बोने के 15 दिन बाद ही खेत की पहली बार निराई-गुड़ाई की जाती है। पंक्तियों में फसलें बोने पर निराई-गुड़ाई हल या हैरों द्वारा की जाती है। कुल मिलाकर 2-3 निराई-गुड़ाई पर्याप्त होता है।

3.2.5 सोयाबीन

फसल कर प्रारम्भिक अवस्था में 30-40 दिन तक सोयाबीन के पौधे खरपतवार का मुकाबला नहीं कर पाते। अतः इस समय में निराई-गुड़ाई या रासायनिक विधि से खरपतवार का नियंत्रण बहुत आवश्यक है।बाद में फसल स्वयं खरपतवार को नियंत्रित कर सकती है।

खरपतवार नाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		
1 एलक्लोर (लासो)	600-800	1200-1600	बोनी के 0-3 दिन तक	ये सकरी एवं चैड़ी पत्ती के खरपतवार को नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन तक	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा,, बंदरपुछिया, मोथा, सीपी आदि और चैड़ी पत्ती वाले जैसे लुनक, छोटी दुधी, जंगली चैलाई, आलूबन, लौंगघास तीनपतियां आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
3 मैट्रीबुजिन (सेन्कर, लैक्सॉन, बैरियर)	140-210	200-300	बोनी के 0-3 दिन तक के बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले व सकरी पत्ती वाले खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
4 फेनोक्सोप्रोप (व्हीप-सुपर)	32-40	320-400	बोनी के 20-25 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा, दुब, कासी, बरू) खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
5 क्विजालोफॉस इथाइल (टरगा - सुपर)	16-20	320-400	बोनी के 20-25 दिन	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा, दुब, कासी, बरू) खरपतवारों पर

			बाद	नियंत्रण करता है।
अथवा				
6 इमाझेथापर (परस्युट, लगाम)	30	300	बोनी के 20-25 दिन बाद या खरपतवार के 2-3 पत्ती कि अवस्था पर	ये सकरी पत्ती वाले सांवा एवं चैड़ी पत्ती वाले गोखरू, लुनक छोटी एवं बड़ी दुधी, गाजरघास, चैलाई, जंगली जूट, लेसवा, कौआकेनी आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
7 क्लोरिमुरान (क्लोन, ट्रांच)	2.4-3.6	12-16	बोनी के 15-20 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले गोखरू, लुनक छोटी एवं बड़ी दुधी, गाजरघास, चैलाई, जंगली जूट, लेसवा, कौआकेनी आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

3.2.6 तूर अथवा अरहर

अरहर की अकेली बोई गई फसल में 1-2 निराई खुर्पी से कर सकते हैं। पहली निराई बुआई के 20-25 दिन के बाद करनी चाहिए। मिश्रित फसल ज्वार, मक्का आदि काटने पर अरहर की लाइनों के बीच 'हो' या देशी हल से जुताई करने पर फसल की उपज में वृद्धि होती है। मिश्रित खेती में खरपतवार का प्रकोप कम हो जाता है।

3.2.7 मूंग और उड़द

चारे व हरी खाद की फसल में निराई-गुड़ाई अथवा खरपतवार नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। दाने वाली फसल की निराई बुआई के 23-30 दिन बाद आवश्यक है। दूसरी निराई बुआई के 45 दिन बाद तक आवश्यकतानुसार करनी चाहिए।

मूंग, उड़द, अरहर

खरपतवारनाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		

1 एलक्लोर (लासो)	800-1000	1600-2000	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये सकरी एवं चैड़ी पत्ती के खरपतवार को नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, बंदरपुछिया, मोथा, सीपी आदि और चैड़ी पत्ती वाले जैसे लुनक, छोटी दुधी, जंगली चैलाई, आलूबन, लौंगघास आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
3 ऑक्जाडाइजोन (रोनस्टार)	100	400	बोनी के 0-3 दिनों बाद	ये चैड़ी एवं सकरी पत्ती वाले बहुत से खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
4 ऑक्सीक्लूरफेन (गोल, जारगोन)	40-50	160-200	बोनी के बाद 0-3 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, मोथा, नरजवां आदि और चैड़ी पत्ती वाले जैसे मिर्च बूटी, भेंगरा, आलुबन आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
5 क्युजेलोफोप (टरगा - सुपर)	16-20	320-400	बोनी के 15-20 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा, दुब, कासी, बरू) खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

3.2.8 तिल या अलसी या रामतिल

फसल बोने के 3-4 सप्ताह बाद निराई - गुड़ाई करके खरपतवार का नियंत्रण करते हैं। पौधों की ऊंचाई 7-8 सेमी होते ही (बोने के 15-20 दिन बाद) पौधों की छंटाई कर देते है।

अलसी/तिल/रामतिल

खरपतवारनाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		
1 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	नी के 0-3 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे छोटी दुधी, जंगली चैलाई, चिनीयारी, बथुआ, चनौरी, ढेतना, सेंजी, कृष्णनील आदि और सकरी पत्ती वाले खरपतवार सॉवा आदि पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 ऑक्जाडाइजॉन (रोनस्टार)	200	800	बोनी के 0-3 दिन तक	ये सकरी पत्ती वाले व कुछ चैड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करता है।

3.2.9 कपास

पौधों की ऊंचाई 8-10 सेमी होने पर पहली निराई-गुड़ाई करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर 1-2 निराई गुड़ाई फूल आने तक करते हैं। पंक्तियों के बीच अन्तरण अधिक रखने पर बैलों से चलने वाले यंत्रों द्वारा भी निकाई - गुड़ाई कर देते हैं। बुआई के 20-25 दिन बाद पौधों की छंटाई करके ऐच्छित अनतरण रख लिया जाता है।

खरपतवार नाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		

1 ब्यूटाक्लोर (मैचिट, तीर, धानुक्लोर, डोनमिक्स)	400-500	800-1200	बोनी के बाद 3-4 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, जंगलीकोदों, मोथा, नरजवां आदि कुछ कुछ चैड़ी पत्ती वाले जैसे भेंगरा आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 ऑक्जाडाइजोन (रोनस्टार)	200-300	400-600	बोनी के 0-3 दिन तक	ये सकरी व कुछ चैड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
3 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन तक	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, बंदरपुछिया, मोथा, सीपी आदि और चैड़ी पत्ती वाले जैसे लुनक, छोटी दुधी, जंगली चैलाई, आलूबन, लौंगघास तीनपतियां आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
4 ग्लुफोसिनेट (लिर्बटी, बस्ता)	180	400	अंकुरण पश्चात	जब कपास 15 से.मी. की ऊँचाई पर हो तब इसका प्रयोग नोजल में गार्ड लगाकर करें। ताकि दवाई कपास के पौधों पर ना पड़े। जब हवा नहीं चल रही हो तब इसका प्रयोग करें।
5 ग्लाइफोसेट (राउंड-अप ग्लाइसेल)				
5 ग्लाइफोसेट (राउंड-अप ग्लाइसेल)	400	1000	अंकुरण पश्चात	जब कपास 15 से.मी. की ऊँचाई पर हो तब इसका प्रयोग नोजल में गार्ड लगाकर करें। ताकि दवाई कपास के पौधों पर ना पड़े। जब हवा नहीं चल रही हो तब इसका प्रयोग करें।
6 जॉयरिथिओबेक	30		अंकुरण पश्चात	ये चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार पर नियंत्रण करता है।

सोडियम (थीम 10 ई.सी.)		00		

3.2.10 जूट

फसल बोने के बाद जब पोधे 8-10 सेमी के हो जाएं तो खेत में खुर्पी या बैलों द्वारा चलने वाले यंत्रों से निराई-गुड़ाई कर देनी चाहिए। छिटकवां विधि से केवल खुर्पी से ही निराई सम्भव है। आवश्यकतानुसार निकाई-गुड़ाई 2-3 बार करते हैं। पहली निकाई - गुड़ाई के समय ही पौधों की छंटाई भी की जा सकती है। दूसरी व तीसरी निकाई 15-15 दिन के अन्तर पर समयानुसार करते हैं।

खरपतवारनाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		
1 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, बंदरपुछिया, मोथा, सीपी आदि और चैड़ी पत्ती वाले जैसे लुनक, छोटी दुधी, जंगली चैलाई, आलूबन, लौंगघास आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 फिनोकसाप्रोप-पी-इथाइल (विप सुपर, जूपिटर, प्यूमा सुपर)	24-28	320-400	बोनी के 20-25 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे सॉवा/स्वॉक, सोमना आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता ळें
अथवा				
3 क्विजालोफॉस इथाइल (टरगा - सुपर)	16-20	320-400	बोनी के 20-25 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा, दुब, कासी, बरू) खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

3.2.11 चारे की फसलों में खरपतवार नियंत्रण

1 अधिकतर फसलों में खरपतवार नियंत्रण की आवश्यकता नहीं होती। अगर आवश्यता पड़े तो मक्का, ज्वार व मकचरी में बुआई पूर्व 1.5 किग्रा एटाजीन 1000 लीटर पानी में घोलकी प्रति हेक्टेयर छिड़काव भूमि में मिलाएं। दलहन व अन्य फसलों में बोने से पूर्व बेसालीन 1 किग्रा +1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव कर भूमि में भली भांति मिलाएं।

2 ज्वार, मक्का, बाजरा, सूडान घास चारे के रूप में उगाने के लिए 0.1 प्रतिशत का एट्राजीन (एट्राटाफ) का800 लीटर घोल बुआई के तुरन्त बाद (अंकुरण से पहले) नम सतह पर छिड़कें। अगर भूमि की सतह नम न हो तो हल्की सिंचाई करें।

3 लोबिया में खरपतवार नियंत्रण के लिए बुआई से पूर्व 0.1 प्रतिशत बेसालिन या 0.2 प्रतिशत नाइट्रोजन (टों ई. 25) या एलाक्लोर (लासो) बरसीम में एम.पी.बी. 0.1 प्रतिशत का घोल, जई में 0.5 प्रतिशत का 2, 4 - डी का घोल, 800-1000 लीटर प्रति हेक्टेयर छिडकें।

4 लुसर्न में अमरबेल के अंकुरण करने पर 0.5 प्रतिशत का सी.आई.पी. या कर्ब 0.1 प्रतिशत का घोल प्रभावित क्षेत्रों में छिड़कें। लुसर्न में डाइयूरान का 0.2 प्रतिशत घोल (अमर बेल को छोड़कर) अधिकतर वार्षिक खरपतवारों को नष्ट करता है। इसको छिड़ककर फसल की पहली कटाई तक खेत में पशु न चराएं।

3.3 रबी की फसलों में खरपतवार नियंत्रण

3.3.1 गेहूं

मृदा में वायु संचार, मृदा नमी के संरक्षण व खरपतवार नियंत्रण के उद्देश्य से निकाई गुडाई की जाती है। निराई गुड़ाई खुरपी या हैंड हो के द्वारा करते हैं। इससे मृदा भुरभुरी बनती है तथा ब्यांत अधिक होता है। पहली निराई पहली सिंचाई के बाद उपयुक्त मृदा अवस्था पर व दूसरी निराई-गुडाई दूसरी सिंचाई के बाद करते हैं। बाद की निराई गुड़ाई करने में ब्यांत के कटने का भय रहता है।

गेंहू में चैड़ी पत्ती वाले मुख्य खरपतवार - बथुआ, कृष्णनील, हिरनखुरी, सैंजी, चटरी मटरी; गेगला मुनमुना जंगली गाजर आदि व संकरी (तंग) पत्ती वाले प्रमुख खरपतवार गेहूंसा (मडूंसी या बलरीया गुल्ली डण्डा व जंगली जई आदि है।

खरपतवारनाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		
पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि)	1300-400	1000-1200	बोनी के 0-3 दिन	ये चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे छोटी दुधी, जंगली चैलाई, चिनीयारी, बथुआ, चनौरी,

पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	264.60	700	बाद	ढेतना, सेंजी, कृष्णनील आदि और सकरी पत्ती वाले खरपतवार सॉवा, गेहूं का मामा आदि पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 कारफेन्ट्रा जोन 40 डी.एफ. (एफिनीटी)	8	20	बोनी के 25-30 दिनों बाद	चैड़ी पत्ती वाले जैसे हिरणखुरी, कृष्णनील आदि खरपतवार पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
3 मेटसल्फुरोन मिथाइल (ऑलग्रिप, मेटसी मोटो)	1.6	8-12	बोनी के 25-30 दिनों बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे छोटी दुधी, जंगली चैलाई चिनीयारी, बथुआ, चनौरी, ढेकना,सेंजी, कृष्णनील आदि पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
4 क्लोडिनाफोप (टोपिक, झटाका)	241	60	बोनी के 25-30 दिनों बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
5 मैट्रीब्युजिन (सेन्कॉर, टाटा मैंट्री)	70-84	100-120	बोनी के 30-35 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे गेहूं का मामा व चुनिंदा चैड़ी पत्ती वाले जैसे खरपतवारों को नियंत्रण करता है।
अथवा				
6 फिनोक्साप्रोप - पी- (पूमा सुपर,व्हिप सुपर)	40-48	400-800	बोनी के 4-6 सप्ताह बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे गेहूं कामामा, जंगली जई, सांवा आदि पर नियंत्रण करता है। ये चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार को नियंत्रण करता है। इसे सुबह के समय (जब ओस होती है) प्रयोग ना करें/ये गेहूं और राई

				केअंतरवर्तीय खेती के लिये उपयुक्त है।
अथवा				
7 आइसोप्रोट्यूरोन	300-400	400-500 (75 डब्ल्यू.पी. 600-800 50 डब्ल्यू.पी.)	बोनी के 25-30 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले व सकरी पत्ती वाले खरपतवार को नियंत्रित करता है। इसे पहले पानी देने के बाद उपयोग करें।
अथवा				
8 सल्फोसल्फुरोन (लीडर,सफल, फतेह,एस.एफ. -10) बीटो	10	13.2	बोनी के 25-30 दिन तक	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे गेहूं सा) एवम् कुछ चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे जंगली पालक, बथुआ, सेंजी, कृष्णनील आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
9 पिनोक्साडेन 5 ई.सी. (ऐक्सिअल)	16-20	320-400	बोनी के 25-30 दिन तक	ये सकरी पत्ती वाले खरपतवार (जैसे गेहूं का मामा एवं जंगली जई पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
10 2,4 - डी. (ग्रीन वीड, वीडमार, नौकवीड, ताफासिड, अरबी ओक्स, कोम्बी,रंगरडन-48) 1 सोडियम साल्ट 80 प्रतिशत 2 एमाइन साल्ट 58 प्रतिशत 3 इथाइल इस्टर	200-336 200-300 180-300	250-400 340-620 528-880	बोनी के 25-30 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले जैसे मौंथा, कृष्णनील, जंगली पालक, ढेंकना, गाजरघास, महकवा, बथुआ, हिरनखुरी, चनौरी, सेंजी आदि खरपतावारों को नियंत्रण करता है।

38प्रतिशत				
अथवा				
8 सल्फोसल्फुरोन 75 प्रतिशत + मेटासल्फुरोन 5 प्रतिशत डब्ल्यू.जी (टोटल टोपेल बैकेट ट्विन)	12.8	16	बोनी केबाद	ये चैड़ी पत्ती वाले (जैसे बथुआ और संेजी) एवम् सकरी पत्ती वाले जैसे गेहूं का मामा पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
12 मीसोसल्फुरोन 3 प्रतिशत + आइडोसल्फुरोन मिथाइल सोडियम 0.6 प्रतिशत डब्ल्यू.डी.जी. (ऐटलांटिक)	4.8+0.96	160	बोनी के 25-30 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले व चैड़ी पत्ती वाले खरपतवारों पर नियंत्रण करता है। जैसे बथुआ, सेंजी, जंगली पालक)

3.3.2 जौ

खरपतवार की वृद्धि अगर अधिक दिखाई पड़े तो एक निराई कर सकते हैं। गेहूं की भांति रसायनों के द्वारा जौ की फसल में खरपतवार का नियंत्रण किया जा सकते हैं। गेंहूं की भांति रसायनों के द्वारा जौ की फसल में खरपतवार का नियंत्रण किया जा सकता है। 2,4 - डी की 0.50 किग्रा सक्रिय मात्रा 600-800 लीटर पानी में घोलकर, बोने के 30-35 दिन बाद, छिड़कने से चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार नष्ट किए जा सकते हैं। जंगली जई के नियंत्रण के लिए एवाडैक्स 1 किग्रा मात्रा बुआई पूर्व या डोसानैक्स 1.0 किग्रा बुआई के एक माह बाद 1000 ली. में घोलकर प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें।

3.3.3 चना

बोने के 30-35 दिन बाद पहली निराई गुड़ाई खरपतवार नियंत्रण के उद्देश्य से बहुत ही आवश्यक है। खरपतवारों का नियंत्रण रासायनिक विधि से भी किया जा सकता है। 1.2 किग्रा बेसालिन सक्रिय अवयव को 800 से 1000 लीटर पानी में घोलकर बोने से पहले खेत में छिड़कर, अच्छी प्रकार की नम मिट्टी में मिला देना चाहिए।

3.3.4 मसूर

खरपतवार नियंत्रण के लिए फसल बोने के 30-35 दिन के बीच एक दो निराई गुड़ाई की जाती है। छिटकवा विधि से बोई गई फसल में निराई खुर्पी से व पंक्तियों में बोई गई फसल में निराई गुड़ाई हो की सहायता से भी कर सकते है।

रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण करने के लिए फ्यूक्लोरेलिन (बेसालीन) 1 किग्रा. (सक्रिय अवयव) 800-1000 ली. पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से, बोआई से पहले खेत में छिड़ककर नम मिट्टी में अच्छी प्रकार से हैरो या कल्टीवेटर की सहायता से मिला लेनी चाहिए।

चना, मसूर

खरपतवारनाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		
1 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे छोटी दुधी, जंगली चैलाई, चिनीयारी, बथुआ, चनौरी, ढेतना, सेंजी, कृष्णनील आदि और सकरी पत्ती वाले खरपतवार सॉवा, गेहूं का मामा आदि पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 क्युजेलोफोप (टरगा - सुपर)	16-20	320-400	बोनी के 15-20 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा, दुब, कासी, बरू) खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

3.3.5 मटर

फसल बोने के 35-40 दिन तक फसल को खरपतवारों से बचाना आवश्यक है। आवश्यकतानुसार एक या दो निराई बोने के 30-35 दिन बाद करनी आवश्यक है। रासायनिक विधि से खरपतवार नियंत्रण करने के लिए 1 किग्रा फ्यूक्लोरलिन (बेसालीन) का 800-1000 ली. पानी में घोल बनाकर, फसल अंकुरण से पहले, एक हेक्टेयर में छिड़ककर नम मिट्टी में 4-5 सेमी गहरे तक हैरो या या कल्टीवेटर की सहायता से मिला देना चाहिए।

खरपतवारनाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा	डालने का	रिमार्क

	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)	समय	
1 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे छोटी दुधी, जंगली चैलाई, चिनीयारी, बथुआ, चनौरी, ढेतना, सेंजी, कृष्णनील आदि और सकरी पत्ती वाले खरपतवार सॉवा आदि पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 मैट्रीबुजिन (सेन्कर)	100	140	बोनी के 0-3बाद	ये बौनी के 15-20 दिन बादये चैड़ी पत्ती वाले व सकरी पत्ती वाले खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
3 ऑक्सीक्लूरफेन (गोल, जारगोन.)	40-50	160-200	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, मोथा, व चैड़ी पत्ती वाले जैसे भांगरा, खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
4 क्युजेलोफोप (टरगा - सुपर)	16-20	320-400	बोनी के 15-20 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा, दुब, कासी, बरू) खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

3.3.6 तोरिया और सरसों

निराई गुडाई एवं खरपतवार नियंत्रण - फसल की प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण आवश्यक है। शुद्ध फसल में 1-2 निराई गुड़ाई आवश्यकतानुसार करते हैं। मिश्रित फसल में मुख्य फसल के साथ-साथ इसकी निराई गुड़ाई हो जाती है। पहली निराई गुड़ाई हो जाती है। पहली

निराई फसल के पौधे 15-20 सेमी. की ऊँचाई होने पर करनी चाहिए। इसी समय पौधों की छंटाईकरके पौधे के आपस के बीच की दूरी 10-15 सेमी. कर देनी चाहिए।

खरपतवारनाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		
1 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे छोटी दुधी, जंगली चैलाई, चिनीयारी, बथुआ, चनौरी, ढेतना, सेंजी, कृष्णनील आदि और सकरी पत्ती वाले खरपतवार सॉवा आदि पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 आइसोप्रोटयुरोन (आइसोगार्ड)	300-400	400-500 (75 डब्ल्यू.पी.) 600-800 (50 डब्ल्यू.पी.)	बोनी के पहले या अंकुरण के तुरन्त बाद	ये सकरी पत्ती के खरपतवार (गेहु सा) को नियंत्रित करता है।
अथवा				
3 ऑक्जाडाइजॉन (रोनस्टार)	200	800	बोनी के पहले या अंकुरण के तुरन्त बाद	ये सकरी पत्ती वाले व कुछ चैड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करता है।
अथवा				
4 क्युजेलोफॉप (टरगा - सुपर)	16-20	320-400	बोनी के 15-20 दिन बा	दये सकरी पत्ती वाले (जैसे सॉवा, दुब, कासी, बरू) खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

3.3.7 अलसी या तीसी

बोने के 30-35 दिन बाद पहली निराई गुड़ाई की जाती है। इसी समय पंक्तियों में पौधों की छंटाई करके पौधों के बीच का फासला 5-7 सेमी. कर देते हैं। फसल को खरपतवार से मुक्त करने के लिए आवश्यकतानुसार 20-25 दिन बाद दूसरी निराई खुर्पी की सहायता से कर सकते हैं।

खरपतवारनाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा		डालने का समय	रिमार्क
	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)		
1 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार जैसे छोटी दुधी, जंगली चैलाई, चिनीयारी, बथुआ, चनौरी, ढेतना, सेंजी, कृष्णनील आदि और सकरी पत्ती वाले खरपतवार सॉवा आदि पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 ऑक्जाडाइजॉन (रोनस्टार)	200	800	बोनी के 0-3 दिन तक	ये सकरी पत्ती वाले व कुछ चैड़ी पत्ती वाले खरपतवारों को नियंत्रित करता है।

3.3.8 सूरजमूखी

बोआई के 10-12 दिन बाद घने उगे हुए पौधों को उखाड़ देना चाहिए ताकि कतार में पौधे के बीच की दूरी 20 सेमी रह जाए। खरपतवारों की रोकथाम करना भी जरूरी है। खरीफ की फसल में दो बार और रबी तथा बसन्त ऋतु की फसल मेंएक बार निराई गुड़ाई जरूर कर देनी चाहिए। निकाले गए पौधे खाली स्थानों पर रोपे जा सकते हैं। पहले दो महीनों में 1-2 बार निराई गुड़ाई आवश्यक है।

खरपतवारनाशक	प्रति एकड़ डालने की मात्रा	डालने का	रिमार्क

	सक्रिय तत्व (ग्राम)	संरचना (मि.ली. ग्रा)	समय	
1 एलक्लोर (लासो)	400-600	800-1200	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये सकरी एवं चैड़ी पत्ती के खरपतवार को नियंत्रण करता है।
अथवा				
2 पेन्डिमेथालिन 30 ई.सी. (स्टॉप, क्रॉस, पेंडिस्टार आदि) पेन्डिमेथालिन 37.8 सी.एस. (स्टॉम्प, एक्स्ट्रा)	300-400 264.60	1000-1200 700	बोनी के 0-3 दिन बाद	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, बंदरपुछिया, मोथा, सीपी आदि और चैड़ी पत्ती वाले जैसे लुनक, छोटी दुधी, जंगली चैलाई, आलूबन, लौंगघास आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
3 ब्यूटाक्लोर (मैचिट, तीर, धानुक्लोर, डोनमिक्स)	400-500	800-1000	बोनी के बाद 0-3 दिन तक	ये सकरी पत्ती वाले जैसे सॉवा, जंगलीकोदों, मोथा, नरजवां आदि कुछ कुछ चैड़ी पत्ती वाले जैसे भेंगरा आदि खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
4 ऑक्जाडाइजॉन (रोनस्टार)	200-400	800-1600	बोनी के 0-3 दिनों बाद	ये सकरी एवं चैड़ी पत्ती के खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।
अथवा				
5 ऑक्सीक्लूरफेन (गोल)	100	400	बोनी के बाद 0-3 दिन तक	ये सकरी पत्ती एवं चैड़ी पत्ती के खरपतवारों पर नियंत्रण करता है।

3.3.9 जई

जई की चारे वाली फसल में निराई गुड़ाई की आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि फसल की वृद्धि अधिक होने के कारण खरपतवार फसल में वृद्धि नहीं कर पाते। अगर कुछ खरपतवार फसल में उग आते हैं तो फसल में 2, 4-डी रसायन के अमाइन लवण की 0.5 किग्रा मात्रा प्रति हेक्टेयर छिड़ककर चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार नष्ट कर सकते हैं।

3.3.10 लुसर्न या रिजका

साधारण लुसर्न की एकवर्षीय फसल में खरपतवार की समस्या उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि फसल छिटकवां विधि से पर्याप्त घनी बोई जाती है अतः खरपतवार वृद्धि नहीं कर पाते हैं तथा बार-बार फसल की कटाई करने के कारण खरपतवार भी कटकर नष्ट हो जाते हैं।

बहुवर्षीय फसल में निराई गुडाई करना आवश्यक होता है तथा इन निराई गुड़ाईयों का मुख्य उद्देश्य फसल की खरपतवार नष्ट करना है। बहुवर्षीय फसल में मेंड अधिक कड़ी हो जाती है। अतःजड़ों की अच्छी वृद्धि मृदा में वायु के अच्छे आवागमन आदि उद्देश्य के लिए मेंडों के बीच निराई गुड़ाई करते रहते हैं। निराई गुड़ाई की संख्या खरपतवारों के आक्रमण की सघनता पर निर्भर रहती है। जब फसल को खरपतवार दिखाई दें निराई गुड़ाई की क्रिया करते रहना चाहिए। यदि फसल में अमर बेल का प्रकोप हो जाए तो प्रभावित पौधों को काटकर जला देना चाहिए।

क्रेब नामक दवाई की एक किग्रा मात्रा 1000 लीटर पानी में घोलकर, बुआई के बाद अमर बेल से प्रभावित क्षेत्रों में छिड़के या सी.आई.पी.सी. 5 किग्रा 1000 ली. पानी में धोलकर अमर बेल के अंकुरण के बाद छिड़कें। नम भूमि होना भी आवश्यक है।

3.3.11 तम्बाकू

रोपाई के बाद पहले 30-40 दिनों तक फसल को खरपतवारों से मुक्त रखने के लिए निराई गुड़ाई करते हैं। पहली निराई गुड़ाई रोपाई के 10-15 दिन बाद की जाती है। निराई गुड़ाई खुर्पी या हैंड हो से करते हैं। निराई गुड़ाई रोपाई के 10-15 दिन बाद की जाती है। निराई गुड़ाई में मृदा नमी के संरक्षण व मृदा वायु संचार बढ़ता है। कुल मिलाकर 2-3 निराई गुड़ाई करते हैं।

तम्बाकू की फसल में ओरोबेन्की (टोकरा या बिलैया) परजीवी पौधा, खरपतवार के रूप में पाया जाता है। इस खरपतवार का रंग सफेद,हल्का पीला या हल्का बैंगनी होता है जिन क्षेत्रों में कई वर्षों तक लगातार तम्बाकू उगाया जाता है, उन क्षेत्रों में यह खरपतवार अधिक फैलता है। इसके नियंत्रण के लिए बीज बनाने से पहले ही इसे खेत में उखाड़ देना चाहिए।पोधों को इकट्ठा करके जला देना चाहिए। 3-4 वर्षों तक खेत में तम्बाकू न लगाएं व मिथाइल ब्रोमाइड से खेत की रोपाई से पहले उपचारित करके एवं खेत की गर्मियों में गहरी जुताई करें।

डाईफिनेमिड या पी.ए.वी. (टिल्लाम) - 0.4 किग्रा रोपाई से पूर्व, 1000 ली. पानी में मिलाकर हेक्टेयर छिड़कें तथा भूमि में कल्टीवेटर की सहायता से भली भांति मिला दें। इन दवाइयों से एकवर्षीय घास कुल के अधिकतर व चैड़ी पत्ती वाले कुछ खरपतवार नष्ट हो जाएंगे।

3.4 सारांश

खरीफ की फसलों में मुख्यतः सॉवा, मोथा, बडी दुधी, छोटी दुधी चुनचुनिया, भेंगरा, जंगली चैलाई, गोखरू आदि जैसे खरपतवार पाऐ जाते है। जिनको समय रहते विभिन्न विधियों द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है। रबी की फसल में पाऐ जाने वाले मुख्य मुख्य खरतवार हैं बथुआ कृष्णनील गेहूं का गामा, सेंजी आदि है। किसान की दृष्टि से खरपतवार दो प्रकार के होते है, सकरी पत्ती वाले खरपतवार एवं चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार नाशक सिर्फ चैड़ी पत्ती वाले खरपतवार को नियंत्रित करते है और कुछ सिर्फ सकरी पत्ती वाले खरपतवार नाशक भी आने लगे है जो कि दोनों, सकरी भी आने लगे है जो कि दोनों सकरी एवम् चैडी पत्तियों वाले खरपतवार की रोकथाम के लिए प्रयोग करते समय इसकी सही मात्रा एवं प्रयोग करने की सही तकनीक का ज्ञान होना अति आवश्यक है।

3.5 अभ्यास प्रश्न

1 धान में खरपतवार नियंत्रण कैसे किया जाता है।

2 गेहूँ में कौन कौन से खरपतवार पाऐ जाते हैं? उनकी रोकथाम के लिए प्रयोग में लाऐ जाने वाले खरपतवार नाशक एवं उनकी सही मात्रा समझाइये।

3 निम्न में से कौनसा संकरी पत्ती वाला खरपतवार है?

अ चैलाई ब छोटी दुधी

स सांवा द चुनचुनिया

4 निम्न में से कौनसी खरपतवार गेहूं मुख्य खरपतवार हैं?

अ सांवा ब गेहूं का मामा

स भंगरा द हिरणखुरी

5 निम्न में से कौनसा खरपतवार नाशक सकरी एवम् चैड़ी पत्तियों वाले दोनों को नियंत्रित करना हैं?

(अ) पेन्डिमेथालिन (ब) इमेजाथाइपर

(स) दोनों (द) इनमें से कोई नहीं

3.6 सदंर्भ सामग्री

1 सिंह, ए. पी., चौधरी तापस, त्रिपाठी, विवेक, लाखपाले, आर., गुप्ता श्वेता, प्रभा, र्निम¨द्य, 2010, खरपतवार नियंत्रण र्निदेशिका, सस्य विज्ञान विभाग, इं. गां. कृ. वि., रायपुर.

2 Gupta, O.P., 1989 Modern weed management, agro Botanical Publishers (India), pp61-66.

3 Gupta, O.P,. 1993, weed management: Principals and Practices, Agro Botanical Publishers (India)

4 Ready, T.Y. and redid, G.H.S, 2000, Principles of Agronomy, kalyani Publishers, New Delhi,

5 शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

6 Rao, V.s., 1994, principles of Weed Science, Oxford & IBH Publishing Co. Pvt. Ltd, PP.333-373

7 Singh, Chhidda. 1999, Modern Techniques of Raising Field Crops, Oxford & IBH publishing company provbate limited, New Delhi.

8 Singh, S.S, 1993, Crop Management under Irrigated and rainfed Conditions, Kalyani Publishers, New Delhi.

इकाई 4

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देष्य

4.1 खरपतवार की परिभाषा

4.2 खरपतवारों की विशेषतायें

4.3 खरपतवारो से हानियां

4.4 कैसे नुकसान पहुँचाते हैं खरपतवार

4.5 खरपतवारों का नियंत्रण कब करें

4.6 खरपतवार नियंत्रण की विधियां

4.7 एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

4.8 खरपतवारनाशक की मात्रा ज्ञात करना

4.9 खरपतवारनाषकों के प्रयोग संबधी सावधानियां

4.10 साराश

4.11 बोध प्रश्न

4.12 सन्दर्भ साहित्य

4.0 उद्देष्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान पायेंगे कि

- खरपतवार के बारे में
- खरपतवार से हाने वाले नुकसान के बारे में
- खरपतवार नियंत्रण की विधियों के बारे में
- खरपतवार उन्मूलन की सावधानियों के बारे में

4.1 प्रस्तावना

खरपतवार अफसलीय पौधों की वे प्रजातियाॅं हैं जो अवांछित रूप से फसलों के साथ अत्यधिक मात्रा में उगकर मुख्य फसल को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से हानि पहुॅंचाकर उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं। अतः अधिक उत्पादन हेतु फसल को खरपतवारों से मुक्त रखना अति आवश्यक है। खरपतवार पौधों की ऐसी प्रजातियां है जो अवांछित रूप से उगती है। जो फसल के लिए हानिकारक होती है। यह इतनी प्रचुर मात्रा में उगते है जो आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण दूसरे पौधों को दबाकर विभिन्न प्रकार से हानि पहुंचाते है।खरपतवार वह अनैच्छिक पौधें है जो किसी स्थान पर बिना बोये उग आ जाते हैं और जिनकी उपस्थिति से कृषक को लाभ की तुलना में हानि होती है। अतः फसल उत्पादन हेतु फसल को खरपतवारों से मुक्त रखना अति

आवश्यक है। ताकि देश की बढ़ती हुई आबादी के भरण पोषण की आवश्यकता व चुनौती को पूरा किया जा सके। कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के लिये उन्नतशील किस्मों उचित खाद व सिंचाई के अतिरिक्त खरपतवार प्रबंधन भी अति आवश्यक है अन्यथा फसलोत्पादन के लिये अपनाई जाने वाली उन्नत तकनिकी का पूरा लाभ नहीं मिलेगा।

4.2 खरपतवारों की प्रमुख विशेषतायें:

1. खरपतवार फसल बुवाई के बाद उगते है तथा तेजी से बढ़कर फसल पकने से पहले जीवनकाल पूर्ण कर बीज बना लेते है।
2. खरपतवारों में भारी मात्रा में बीज उत्पन्न करने की क्षमता होती है।
3. खरपतवारों के बीजों की जमाव क्षमता कई वर्षो तक बनी रहती है।
4. खरपतवार भूमि एवं जलवायु की प्रतिकूल दशाओं में रोग एवं कीट संक्रमण से प्रति फसलों की अपेक्षा अधिक सहनशील होते है।
5. खरपतवारों के बीज एवं पौधें प्रायः सहचर फसलों के समरूप होते हैं जिससे उन्हें फसलों के पौधों के बीच से पहचान कर अलग करने में कठिनाई होती है।

4.3 खरपतवारों से हानियां:

यह सत्य है कि खरपतवारों की उपस्थित फसल को उपज को कम करने में सहायक है। किसान जो अपनी पूर्ण शक्ति व साधन फसल की अधिकतम उपज प्राप्त करने के लिये लगाता है, ये अनैच्छिक पौधें इस उद्देश्य को पूरा नहीं होने देते हैं। खरपतवार फसल से पोषक तत्व, नमी, प्रकाश, स्थान व वायु आदि के लिये प्रतिस्पर्धा करके फसल की वृद्धि उपज एवं गुणों में कमी कर देते है। खरपतवारो से हुई हानि किसी अन्य कारणों जैसे कीड़े, मकोड़े, रोग व्याधि आदि से हुई हानि की अपेक्षा अधिक होती है। एक अनुमान के आधार पर हमारे देश में विभिन्न व्याधियों के प्रतिवर्ष करोडों रूपये की हानि होती है जिसका लगभग एक तिहाई भाग खरपतवारों द्वारा होता है। आमतौर पर विभिन्न फसलों की पैदावार में खरपतवारों द्वारा 5 से 85 प्रतिशत तक की कमी हो जाती है। विभिन्न शोध परिणामों से यह स्पष्ट हो चुका है कि अनियंत्रित खरपतवारों के कारण प्रति पौधे दानों, दानों का भार व आकार, शाखाएं एवं उपज कम हो जाती है लेकिन कभी-कभी यह कमी शत प्रतिशत भी हो जाती है। खरपतवार शुष्क पदार्थ एवं उपज प्रति पौधे में नकरात्मक संबन्ध पाया गया है। खरपतवार फसलों की उपज पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं और यह स्थान, प्र¬जाति, समय, खरपतवारों की सघनता, शस्य-जलवायवीय स्थितियों एवं प्रबन्ध के स्तर आदि कारकों पर निर्भर करती है।

खरपतवार फसलों के लिये भूमि में निहित पोषक तत्व एवं नमी का एक बड़ा हिस्सा शोषित कर लेते हैं तथा साथ ही साथ फसल को आवश्यक प्रकाश, वायु व नमी से भी वंचित रखते हैं। फल स्वरूप पौधों की विकास की गति धीमी पड़ जाती है और उत्पादन का स्तर गिर जाता है। खरपतवारों से परोक्ष रूप से भी बहुत सी हानियां होती है। जैसे फसल के बीजों में

गुणवत्ता में कमी, फसल में रोग कीटों को शरण देना, दुधारू पशुओं से प्राप्त होने वाले खाद्य पदार्थो की गुणवŸाा में कमी होना, फसल उत्पादन लागत मूल्यों में वृद्धि आदि। अतः खरपतवारों को फसल का सबसे बड़ा शत्रु समझा जाये तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उन्नत किस्म के बीज, उपयुक्त उर्वरक, सिंचाई एवं फसल सुरक्षा के उपाय जैसे आधुनिक तरीकों को अपनाकर भी कृषक फसलों की भरपूर पैदावार नहीं ले पाते हैं जिसका मुख्य कारण है - खरपतवारों का सही समय पर एवं उचित विधि द्वारा नियंत्रण नहीं कर पाना। खरपतवार बहुत तेजी से वृद्धि करते हैं जो फसल के साथ पानी, वायु, प्रकाष एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतिस्पद्र्धा करते हैं। इतना ही नहीं, विभिन्न खरपतवार कई प्रकार के कीड़ों एवं बीमारियों को आश्रय देकर उनको फसल में बढ़ावा देते हैं। अन्त में फसलों की कटाई में भी बाधा पहुँचाने के साथ ही साथ फसल की वृद्धि, उपज एवं उनकी गुणवत्ता में भी कमी कर देते हैं जिससे आर्थिक नुकसान होता है। अतः विभिन्न विधियों द्वारा खरपतवारों को नियंत्रण कर खरीफ फसलों की अधिक उपज एवं लाभ लिया जा सकता है।

4.4 कैसे नुकसान पहुँचाते हैं खरपतवार

- ज्यादातर खरीफ की फसलों के बुवाई, मानसून आने के पश्चात ही की जाती है। खरपतवार फसलों से पूर्व ही उग आते हैं जो भूमि में मौजूद पोषक तत्वों एवं पानी को तेजी से अवशोषित करते हैं और अपनी वृद्धि करते हैं जिसके कारण फसलों को समुचित पोषक तत्व और जल प्राप्त नहीं हो पाता है, फलस्वरूप शुरूआत में ही फसल की वृद्धि एवं अन्ततः उपज में भारी कमी हो जाती है।
- खरपतवारों की वानस्पतिक वृद्धि बहुत तेजी से होती है और शीघ्र फैलाव के कारण काफी स्थान घेर लेते हैं जिससे फसल के पौधों को फैलने का स्थान कम मिल पाता है फलतः फसल को समुचित वायु एवं प्रकाश नहीं मिल पाता है।
- कई खरपतवार कीड़ों एवं बीमारियों को शरण देकर फसल में इनको बढावा देते हैं।
- अधिक खरपतवारों के कारण फसलों को आसानी से काटा भी नहीं जा सकता है जिससे अधिक समय एवं धन का व्यय होता है।
- अन्त में, खरपतवारों के बीज फसल के बीजों के साथ मिलकर उनकी गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव डालते हैं जिससे उपज की कम कीमत मिलती है एवं अनचाहा आर्थिक नुकसान होता है।

4.5 खरपतवारों का नियंत्रण कब करें

प्रायः यह देखा गया है कि कीडे मकोडे रोग व्याधि लगने पर उनके निदान के लिये तुरंत ध्यान दिया जाता है। लेकिन खरपतवारों की ओर ध्यान नहीं देता है और इनकों जब तक बढ़ने देता है जब तक कि हाथ से पकडकर उखाडने योग्य न हो जायें। कहीं-कहीं तो किसान खरपतवारों कों पशुओं के चारे के रूप में उपयोग करते हैं और खरपतवारेंा को फसल नुकसान कर चुके होते हैं। फसलों की प्रारंभिक अवस्था खरपतवारों के प्रति अधिक संवेदनशील होती है। जिस अवस्था में यह प्रतिस्पर्धा सर्वाधिक होती है उसे ''क्रान्तिक अवस्था'' कहते हैं। यदि इस अवस्था पर

खरपतवारों का नियंत्रण नहीं किया या तो उसकी क्षति पूर्ति बाद में नहीं की जा सकती है। प्रमुख फसलों में खरपतवार के कारण उपज में कमी तथा क्रान्तिक अवस्था सारणी-1 में दी गई है।

सारणी - 1 विभिन्न फसलों में फसल खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रान्तिक अवस्था एवं उनसे फसलों की पैदावार में कमी

फसलें	क्रान्तिक अवस्था	उपज में कमी प्रतिशत
खाद्यान्न फसलें		
धान (सीधी बोनी)	15-45	47-86
धान (रोपाई)	20-40	15-38
मक्का	30-45	40-60
ज्वार	30-45	06-40
बाजरा	30-45	15-56
गेहूँ	30-45	26-38
जौ	15-45	10-30
दलहन फसलें		
अरहर	15-60	20-40
मूंग	15-30	30-50
उरद	15-30	30-50
लोबिया	15-30	30-50
चना	30-60	20-30
मटर	30-45	20-30
मसूर	30-60	20-30
तिलहन फसलें		
सोयाबीन	15-45	40-60
मूँगफली	40-60	40-50
सूरजमुखी	30-45	33-50
अरंडी	30-45	30-50
तिल	15-45	17-41
रामतिल	15-45	35-60
सारसों	15-40	15-30
अलसी	20-45	30-40
कुसुम	15-45	35-60
नगदी फसलें		
गन्ना	15-60	20-30
आलू	20-40	30-60
कपास	15-60	40-50
जूट	30-45	50-80

4.6 खरपतवार नियंत्रण की विधियां

खरपतवारों की रोकथाम में ध्यान देने योग्य बात यह है कि खरपतवारों का सही समय पर नियंत्रण किया जाये। खरपतवारों की रोकथाम निम्नलिखित तरीकों से की जा सकती है।

1. निरोधक विधियां
2. यांत्रिक विधियां
3. कृषिगत विधियां
4. जैविक विधियां
5. रासायनिक विधियां

प्रायः यह देखा गया है कि कीट-व्याधियों के लगने पर उनके नियंत्रण पर तुरन्त ध्यान दिया जाता है, क्योंकि इनका नुकसान परोक्षरूप से देखा जा सकता है, परन्तु खरपवारों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है और इनको जब तक बढ़ने दिया जाता है जब तक कि हाथ से पकड़कर उखाड़ने योग्य नहीं हो जाते हैं। उस समय तक खरपतवार फसल को नुकसान कर चुके होते हैं। फसलों की प्रारम्भिक अवस्था खरपतवारों के प्रति अधिक संवेदनशील होती है उसे ''क्रान्तिक अवस्था'' कहते हैं। यदि इस अवस्था पर खरपतवारें का नियंत्रण नहीं किया जाता है तो उसकी क्षतिपूर्ति बाद में नहीं की जा सकती है। खरीफ फसलों में खरपतवार के कारण उपज में कमी तथा क्रान्तिक अवस्था तालिका-.2 में दी गई है। खरपतवारों के नियंत्रण में ध्यान देने योग्य मुख्य बात यह है कि खरपतवारों का सही समय पर नियत्रंण किया जाये।

4.7 एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

विभिन्न विधियों के संयुक्त प्रयोग द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण करना एवं उनके द्वारा होने वाली हानि को आर्थिक स्तर से नीचे रखना एकीकृत खरपतवार प्रबंधन कहलाता है। एकीकृत या समन्वित खरपतवार प्रबन्धन में खरपतवारों व परिस्थितियों को देखते हुये किसी एक या एक से अधिक विधियों द्वारा खरपतवार नियंत्रण किया जाता है। खरपतवार नियंत्रण में यांत्रिक, रासायनिक, जैविक सभी उपलब्ध विधियों की हानि- लाभ सीमाएं है । किसी एक विधी द्वारा पूर्णतः खरपतवार नियंत्रण संभव तही हो पाता है । एकीकृत खरपतवार प्रबंधन का मुख्य उददेश्य है कि सभी विधियों का सामजस्य कर काम में लेना चाहिए ताकि फसलों को होने वाली हानि को कम करने के साथ-साथ, पर्यावरण को भी क्षति नही पहुचे ।

4.8 एकीकृत खरपतवार नियंत्रण क्यों

खरपतवारों व परिस्थितियों को देखते हुये किसी एक विधि द्वारा इच्छित फसलोंत्पादन प्राप्त करना कठिन है। अतः इससे छुटकारा पाने के लिये एकीकृत खरपतवार प्रबंधन विधि पर विशेष ध्यान देना पडेगा। एकीकृत खरपतवार प्रबंधन में रसायनों की अपेक्षा विभिन्न यांत्रिक, जैविक, कृषिगत, विधियों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। सबसे अधिक ''उपचार से बचाव अधिक अच्छा'' वाले सिद्धांत पर ध्यान दिया जाता है। खरपतवार नियंत्रण में रसायनों के प्रति बढ़ते प्रयोग से वातावरण, मृदा एवं जल प्रदूषण, पशुओ विषाक्ता, मृदा में सूक्ष्म जीवों में की हानि आदि के कराण चिंता का विषय हो गया है।

समन्वित खरपतवार प्रबंधन में निरोधी उपाय, कर्षण क्रियायें, यांत्रिक व रासायनिक सभी के द्वारा खरपतवार नियंत्रण किये जाते है। अतः यह समकालिक प्रबंध आर्थिक दृष्टिकोण से

दीर्घवधि में लाभदायक सिद्ध हुआ है। क्योंकि इससे पर्यावरण प्रदूषण का भय कम होता है। रसायनिक विधि में जब रसायन उपयोग किये जाते हैं। तो उनके अवशेष भूमि में काफी समय तक बने रहे हैं। इस विधि से रसायनिक विधि पर निर्भरता में कमी आयेगी जिसे दूसरी विधियों की सहायता से पूरा किया जायेगा।

आधुनिक दौर में खरपतवार नियंत्रण हेतु सुझाई गई विभिन्न विधियों की उपलब्ध संसाधनों के आधार पर एकीकृत तथा न्यायसंगत प्रयोग करके खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण करते हुये फसल की उत्पादकता बढ़ाना कारकों को ध्यान में रखते हुये फसलों में एकीकृत खरपतवार प्रबंधन वर्तमान में महत्वपूर्ण एवं आवश्यक हो गया है।

किसान उन्नत किस्म के बीज, उपयुक्त उर्वरक, नियमित सिंचाई तथा पौध सुरक्षा विभिन्न उपायों जैसे उत्पादन साधनों को वैज्ञानिक विधि को अपनाकर भीे अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के अपने लक्ष्य में अब भी पूर्णतया सफल नहीं हो पाया है। इसका एक मात्र कारण यह है कि वे उन्नतशील साधनों को अपनाने के साथ-साथ खरपतवारों के नियंत्रण पर पूर्ण रूप से ध्यान नहीं देते है यदि किसान को अपनी फसल से भरपूर उपज प्राप्त करनी हो तो उन्हें अपनी फसल शत्रंु खरपतवारों पर नियंत्रण पाने के महत्व को समझकर उनको नष्ट करना ही होगा।

एकीकृत खरपतवार प्रबंधन

निरोधी उपाय	**यांत्रिक विधियां**	**कृषिगत विधियां**	**रसायनिक विधियां**	**जैविक विधियां**
• शुद्ध बीज का उपयोग	• भू परिष्करण	• गर्मी की जुताई	• बुवाई से पहले	• किट
• खरपतवार रहित दाना चारा देना	• हाथ द्वारा उखाड़ना	• फसल का चयन	• अंकुरण से पूर्व	• मछलियां
• पची हुई गोबर की खाद का उपयोग	• हाथ द्वारा गुड़ाई निदाई	• उपयुक्त फसल चक्र	• अंकुरण पश्चात खड़ी फसल में	• घोंघे
• साफ कृष यंत्रो का उपयोग	• हाथ से होइंग	• बीज की मात्रा व दूरी		• रोगाणु
• जानवरों के आवागमन पर रोक	• जलाना	• बोनी की विधि		• एलीलोपैथी
• साफ पौध का प्रयोग	• पानी भरना	• बोनी की विधि		
• सिंचाई, नालियों की सफाई	• मृदा सौरीकारण	• समय पर कर्षण		
		• स्वच्छ बीज		

		शैय्या		
		• उपयुक्त उर्वरक प्रबंधन		
		• उपयुक्त सिंचाई प्रबंधन		
		• भूमि का आच्छादन		
		• मल्चिंग या पलवार		
		• अंतर्वर्ती खेती		

खरपतवार प्रबंधन

निरोधक विधि:-

इस विधि में वे क्रियायें शामिल की गई है जिनके द्वारा खेत में खरपतवारों को फैलने से रोका जा सकता है। जो इस प्रकार है:-

1. साफ तथा खरपतवार रहित बीजों की उपयोग किया जाये।
2. जानवरों कोे हरे चारे के रूप में खरपतवारों को बीज रहित चारा खिलाना चाहिये।
3. गोबर की खाद या कम्पोस्ट की अच्छी तरह से सड़ा कर ही प्रयोग करें, जिससे पड़े खरपतवार में बीजों की अंकुरण क्षमता समाप्त हो जाये।
4. प्रक्षेत्र मशीनों, कृषि यंत्रों तथा पशु के द्वारा खरपतवारों के बीज खेत में न जाने दें। अर्थात् यंत्रों का प्रयोग आवश्यक साफ-सफाई के बाद ही करना चाहिये।
5. जहां खरपतवारों की अधिकता हो वहां पर पशुओं का आवागमान रोक देना चाहिये।
6. रोपाई वाली फसलों में पौध शाला में ही खरपतवार अलग कर देना चाहिये।
7. सिंचाई नालियों, नहरों, मेड़ों पर, सडक पर तथा खाली पडी भूमि पर खरपतवार न उगने दें।
8. जिन खेतों में खरपतवार अधिक उगते हो उन खेतों की मिट्टी दूसरें खेतों में न डालें।
9. बीज बनने से पहले खरपतवारों को नष्ट कर दें।
10. थ्रेसिंग के समय खरपतवारों के बीज हवा के साथ दूर तक उडते है इन्हें इकट्ठा नष्ट कर दें।
11. किसी भी क्षेत्र में किसी नये पौधे को किसी क्षेत्र में लगाने से पहले उसके बारे में पूर्णरूप से जान लें जिससे वह उस स्थान की समस्या न बन जाये।

यांत्रिक विधियां:-

यह विधि खरपतवारों की रोकथाम की सबसे पुरानी प्रचलित सरल व प्रभावी विधि है। फसलों की प्रारंभिक अवस्था में खरपतवारों से अधिक प्रतिस्पर्धा होती है अतः विभिन्न फसलों की

क्रान्तिक अवस्था पर फसलों की खरपतवार मुक्त कर दिया जाये तो उत्पादन में अधिक लाभ होता है इस विधि में खरपतवारों की रोकथाम हेतु विभिन्न यंत्रों व मशीनों का प्रयोग किया जाता है। यांत्रिक विधि के अन्तर्गत निम्न क्रियाऐं अपनायी जाती है।

1. भू परिष्काण:-

भू परिष्करण में वह सभी कर्षण क्रियाऐं शामिल होती हैं जो कि फसल के विकास व वृद्धि के लिये आवश्यक है। यह विधि खरपतवारों की रोकथाम में बहुत ही सहायक है। खेतों की समय समय पर कर्षण कार्य, जुताई, गुडाई करने से खरपतवार उखड़ टूटकर नष्ट हो जाते हैं। इस विधि के द्वारा वार्षिक तथा बहुवर्षीय खरपतवारों को नष्ट किये जा सकते है। अतः खरपतवारों पर प्रभावी रोकथाम हेतु समय-समय पर जुताई व अन्य भूपरिष्करण करते रहना चाहिये। समय समय पर जुताई करने से खरपतवारों के बीजों का अंकुरण प्रभावित होता है क्योंकि कुछ बीज अधिक गहराई पर चले जाने पर अंकुरण के पश्चात् मर जाते हैं तथा कुछ बीज सूखी मिट्टी में बाहर आ जाते हैं जिससे पर्याप्त नमी न मिलने पर अंकुरण नहीं होता है।

2. हाथ द्वारा उखाडना:-

इस विधि का प्रयोग गृह उद्यान, गृह वाटिका, लान व रोपणी में किया जा सकता हैं बगीचा व सब्जी के छोटे खेतों में भी प्रयोग किया जा सकता है। इस विधि में खरपतवारों के पौधों को एक-एक कर भूमि से उखाड़ा जाता है। पौधे उखाड़ते समय भूमि में पर्याप्त नमी होना चाहिये ताकि पौधे जड़ सहित उखड़ सके। खरपतवारों के फूल व बीज बनने से पूर्व ही उखाड़ना चाहिये ताकि उसके बीज बनकर भूमि पर न गिरे जिससे अगले वर्ष खरपतवारों का प्रकोप कम हो जायेगा।

3. हाथ द्वारा निराई-गुडाई:-

यह खरपतवार नियंत्रण की सर्वोŸाम विधि है। फसलों की आरंभिक अवस्था बुवाई के 15-35 दिन के मध्य का समय खरपतवारों से प्रतियोगता की दृष्टि से क्रांतिक समय है। परिणामस्वरूप, आरंभिक अवस्था में ही फसलों को खरपतवारों से मुक्त करना फसल के लिये लाभदायक होता है। बुवाई के 15-35 दिन के बाद फसल की क्रांतिक अवस्था के अनुसार खुरपी द्वारा निदाई कर खरपतवार निकालना चाहिये। इस विधि से न केवल खरपतवार नष्ट होगें बल्कि मृदा में भी वायुसंचार में भी वृद्धि होगी। इस विधि में कतारों में बोई गई फसलों के सभी प्रकार के खरपतवार सफलतापूर्वक नष्ट किये जा सकते हैं।

4. हाथ द्वारा होइंग:-

इस विधि से बड़े-बड़े आकार के खेतों के खरपतवार नष्ट किये जा सकते हैं। हाथ द्वारा चलने वाले गुड़ाई यंत्रों से खरपतवारों को काफी सीमा तक नियंत्रित किया जा सकता है। यह विधि कतारों में बोई गई फसल अधिक कारगर रहती है। फसल बोने के 15-35 दिन के मध्य दो कतारों के मध्य हैंण्ड व्ही हो, डोरा व ट्वीन व्हील चलाना चाहिये।

5. मोअर द्वारा:-

इस विधि का उपयोग मैदानों बंजर भूमि, चारागाह, सड़क, रेल, नहर के किनारों की भूमियों में किया जाता है। इस विधि में मोअर मशीन के द्वारा खरपतवारों के ऊपर भरग बार-बार

काटे जाते हैं। जिसके फलस्वरूप खरपतवारों में प्ररकाश संश्लेषण की क्रिया नहीं होती है और पौधे समाप्त हो जाते है।

6. जलाना:-

इस विधि में जिन खेतों में गर्मियों में खेत खाली रहते हैं और अन्य भूमियों पर खड़े खरपतवारों को आग लगाकर नष्ट किया जा सकता है। अन्दर स्थित जड़ का प्रोटोप्लाज्म भी उच्च तापक्रम के कारण नष्ट हो जाता है जिससे भूमि के अन्दर पौधें का स्थित भाग दुबारा नये पौधे को जन्म नहीं दे पाता। बंजर भूमि, खेल के मैदान, चारागाहों, सड़कों, रेलवे लाईन, नहरों के किनारों के खरपतवार नष्ट करने हेतु इस विधि का उपयोग किया जाता है। इस विधि द्वारा भूमि की सतह पर उपस्थित खरपतवारों के वानस्पतिक भाग व बीज जल कर नष्ट हो जाते हैं। खड़ी फसल में इस विधि का उपयोग कमी नहीं करना चाहिये तथा समीप के वृक्ष को आग से बचाना चाहिये।

7. पानी भरना:-

इस विधि में गर्मी के मौसम में खेत की मेड़बंदी कर पानी भर दिया जाता है तथा खरपतवारों को पूर्णतया डुबोया जाता है जिससे पौधों को प्रकाश हवा न मिलने से श्वसन तथा भोेजन बनाने की प्रक्रिया बाधित हो जाती है और पौधे मर जाते हैं। इस विधि का उपयोग छोटे क्षेत्रों में किया जा सकता है। इसमें यह सावधानी भी रखी जाती है कि खरपतवारों के पौधे पानी में पूर्ण रूप से बहुत समय तक डूबे रहे।

8. मृदा सौरीकरण:-

खेत में एक ही फसल को लगातार लेते रहने के कारण विशेष खरपतवारों की संख्या में लगातार वृद्धि हेाती रहती है। खरपतवारों की रोकथाम हेतु रसायनिकों का उपयोग बढ़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप आजकल गैर रसायनों के प्रयोग पर बल दिया जा रहा है। ऐसी ही एक गैर रसायनिक नियंत्रण विधि है। भूमि का सौरीकरण जो गर्म जलवायु शुष्क व अर्धशुष्क में ज्यादा प्रभावशाली हो सकती है।

गर्मी के दिनों में जब तापमान 40-50 डिग्री सेन्टीग्रेड तक पहुंच जाता हैं परन्तु खरपतवारों के बीज कठोर होने के कारण सुरक्षित रह जाते हैं। अतः इस विधि से पतली पारदर्शी प्लास्टिक (पोली इथाईलीन) की परत (50 माइक्रोन) बिछाकर 10-20 दिनों के लिये भूमि का तापमान 15-20 डिग्री सेन्टीग्रेड बढ़ जाता है तथा बढे हुये तापक्रम से खरपतवार नष्ट हो जाते है। इस विधि का प्रयोग गर्मी के दिनांे में (अप्रैल-जून) में करना चाहिये। खेत को जोतकर समतल करने के बाद सिंचाई करनी चाहिये। एक या दो दिन बाद पारदर्शी पालिइथाईलिन परत (50 माइक्रान) से हवा की दिशा में ढक देना चाहिये परत चढ़ने की अवधि गर्मी की प्रचण्डता को देखते हुये 10-20 दिन तक का ही रहती है।

शस्य विधियां:-

1. खेतों की ग्रीष्मकालीन जुताई -

रबी फसलों की कटाई पश्चात्, सर्वप्रथम मिट्टी पलटने वाले हल से, गर्मियों में खेतों की गहरी जुताई कर खुला छोड दे। गर्मियों में अधिक गर्मी से मृदा के तापमान में वृद्धि होती है जिससे कई खरपतवार जलकर नष्ट हो जाते हैं तथा उनके बीजों की अंकुरण क्षमता नष्ट हो जाती है

और खरीफ में नहीं उगते हैं। साथ ही कुछ खरपतवारों जैसे दूब घास, मोथा आदि की जड़ें व वानस्पतिक भाग उखड कर नष्ट हो जाते हैं। इसके साथ ही गर्मियों की गहरी जुताई से कई कीट, उनके अण्डे, प्यूपा तथा बीमारियाँ में भी कमी हो जाती है। अतः जहाँ तक संभव हो, गर्मियों में खेतों की गहरी जुताई अवश्य करें।यह विधि काॅस व मोथा के नियंत्रण हेतु अधिक प्रभावी पाई गई है।

2. फसल का चयन:-

जिन खेतों में खरपतवारों का प्रकोप अधिक हो उन खेतों में प्रतियोगी फसलें जेसे सनई, अरहर, चरी, बरसीम, ज्वार, बाजरा, लोबिया, रिजका लूर्सन व जौ आदि उगाने से खरपतवार फसल से प्रतियोगिता नहीं कर पाते हैं। प्रतियोगी फसल खरपतवारों को प्रकाश, वायु, जल व पोषक तत्वों का उपलब्ध होना असंभव कर देती है जिसके कारण कुछ समय पश्चात् खरपतवारों की वृद्धि रूक जाती है। वह फसल से प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाते हैं। उक्त फसलों में उगे हुये एक वर्षीय खरपतवार इनकी कटाई के साथ कटकर नष्ट हो जाते हैं।

3. स्वच्छ बीज शैय्या:-

बोने के पूर्व खेत की अच्छी तैयार करना चाहिये फिर खेत की अच्छी तरह से जुताई करके खेत की दो-तीन दिन के लिये खुला छोड़ देना चाहिये। ताकि उसमें उगे खरपतवार नष्ट हो जाते हैं। यदि कृषक के पास सिंचाई उपलब्ध हो फसल बोने से पहले सिंचाई कर खरपतवारों को उग आने दे फिर खेत की अच्छी तरह से जुताई कर खरपतवार नष्ट करके अच्छे बीज शेय्या तैयार करना चाहिये। खरीफ फसलें करने के तुरन्त बाद जुताई कर खेत को 2-3 दिनों तक खुला छोड़ दंे उसके बाद पलेवा देने के बाद अच्छी स्तर आने पर अच्छी तरह से जुताई करनी चाहिये ताकि स्वच्छ खेत की तैयार हो सके।

4. समय पर कर्षण क्रियाऐं:-

उपयुक्त समय पर जुताई करने से भी खरपतवारों को नियंत्रित किया जा सकता है। जैसे फसल कटने के बाद तुरंत जुताई करना चाहिये जैसे फसल क्टने के बाद गहरी जुताई कर देना चाहिये, और हर बार वर्षा होने के बाद खेत की जुताई करते रहना चाहिये। इस विधि से काफी हद तक खरपतवारों की रोकथाम की जा सकती है।

5. बोनी की विधि:-

बोनी हंमेशा कतारों में करना चाहिये ताकि दो कतारों के बीच में निदाई गुड़ाई व अन्य कर्षण क्रियाऐं करने में आसानी रहे और खरपतवारों का प्रभावी ढंग से नियंत्रण किया जा सके। उपयुक्त विधि से बोनी करने पर पौध संख्या पर्याप्त रहती है तथा पौधे प्रारम्भ से ही ठीक से वृद्धि करने लगते है और उनमें खरपतवारों से प्रतिस्पर्धा करने की क्षमता बढ़ती है। गेहूँ में आड़ी तिरछी विधि (22.5 ग 22.5 से.मी.) के करने पर खरपतवारों का प्रभाव कम होता है।

6. **बोनी की तिथि:-**

फसल को ऐसे समय बोया जाता है कि जब वे खरपतवारों के निकलने से पहले ही खेत को ढक लेती है या खरपतवारों को एक बार पहले उगने देते हैं फिर जुताई कर नष्ट करने के बाद फसल बुवाई थोड़ी देर करते हैं। अतः परिस्थिति के अनुसार उपयुक्त समय पर बोनी के

समय में हेरफेर खरपतवारों से होन वाले नुकसान से बचा जा सकता है। इस से खरपतवार प्रतिस्पर्धा नहीं कर पायेंगे तथा फसल सरलता से बढ़कर बाद में उगने वाले खरपतवार को हानिकारक रूप में नहीं होने देगी।

7. उपयुक्त बीज दर व दूरी:-

बीज दर व दूरी का खरपतवारों की वृद्धि पर बहुत असर पड़ता है कतारों की दूरी कम होने पर फसल उतनी ही छायादार रहेगी जिसके कारण प्रकाश, वायु भूमि पर नहीं पहुंचेगा और खरपतवारों को जब प्रकाश नहीं मिलेगा तो वह वृद्धि नहीं कर पायेंगें। इस प्रकार यदि बीज की मात्रा बढ़ा दी जाये तो पौधों की आपस की दूरी कम हो जायेगी इस प्रकार खरपतवारों की प्रकाश व वायु नहीं मिल पायेगी जिससे खरपतवारों की वृद्धि कम होगी। जैसे मक्का में पौध संख्या 60,000 से 90,000 हैक्टेयर करने पर कतारों की दूरी कम कर देते है। ऐसी परिस्थिति में खरपतवारों की वृद्धि कम हो जाती है। गेहूँ की कतारों की दूरी 15.0 से.मी. तथा धान में 10 ग 10 से.मी. दूरी करने से खरपतवारों की वृद्धि पर विपरीत असर पड़ता है। गेहूँ में बीज की मात्रा 125 किग्रा हैक्टेयर करने पर खरपतवारों के प्रभाव को कम किया जा सकता है।

8. उपयुक्त फसल चक्र:-

उपयुक्त फसल चक्र अपनाना खरपतवार नियंत्रण की आधारभूत विधि है। फसल चक्र में फसलों को अदल बदल कर लेने से खरपतवारों की वृद्धि व जनन पर विपरीत प्रभाव पडता है। फसल चक्र में दलहन फसलें जैसे मूंग, उड़द, अरहर, मटर आदि शामिल करने से खरपतवारों पर प्रभाव तो कम होगा साथ ही भू क्षरण भी बचेगा और मृदा उर्वरकता बढैगी।

एक ही फसल को बार बार खेत में लेने से उस फसल के खरपतवारों का प्रकोप बढ़ जाता है उदाहरणार्थ एक ही खेत में बार-बार गेहूँ की फसल लेने से बथुआ व गेहूँ का मामा का प्रकोप बढ़ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप कुछ समय बाद इनकी संख्या इतनी बढ़ जाती है कि उस खेत में गेहूँ की फसल लेना आर्थिक दृष्टि से लाभकारी नहीं रहता है। अतः ऐसे खेत में विपरीत स्वभाव वाली फसल उगाने से वह खरपतवार कम होते है। उदाहरणार्थ - जिस खेत में फेलिरस माइनर तथा जंगली जई अधिक हो उस खेत में बरसीन या सरसों लगाने से लाभ होता है। इसी प्रकार रामतिल व अलसी फसलों को बराबर एक ही खेत में लेने से परजीवी अमरबेल का प्रकोप होता है अतः फसलों को अदल बदल कर बोने पर इसका निदान किया जा सकता है।

9. अंर्तवर्ती खेती:-

अतः खेती में हुये शोध परिणाम यह दर्शाते है कि एकल फसल की तुलना में अंतवर्ती खेती में खरपतवारों का प्रकोप कम होता हैं। खरीफ मौसम में खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है और जिन फसलों की दूरी 60 से 90 से.मी. होती है मुख्य फसल पर खरपतवार हावी हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में शीध्र बढ़कर खेत को ढक लेने वाली फसल जैसे मूंग, उड़द, लोबिया, मूंगफली व सोयाबीन फसलों को अन्तवर्ती फसल के रूप में बेाकार खरपतवारों की रोकथाम की जा सकती है।

10. उपयुक्त उर्वरक प्रबंधन:-

खरपतवार फसल में दिये गये पोषक तत्वों के लिये प्रतिस्पर्धा करते हैं। यदि उर्वरक उचित समय व विधि से नहीं दिये जाते हैं तो उर्वरक का अधिकतम हिस्सा खरपतवार ग्रहण कर लेते हैं और इस स्थिति में अधिक वृद्धि कर फसल को हानि पहुंचाते हैं अतः उर्वरक छिड़कवा पद्धति की अपेक्षा कूंड में बीज के नीचे देना चाहिये। यदि उपयुक्त विधि से दिया गया हो तो फसल के पौधे प्रारम्भिक लाभ उठा सकते हैं। क्योंकि खाद के कारण पौधों में वानस्पतिक वृद्धि अधिक होने लगती है तथा बाद में उगने वाले खरपतवार दब जाते हैं।

11. उपयुक्त सिंचाई व्यवस्था:-

उपयुक्त सिंचाई व्यवस्था खरपतवारों की रोकथाम में सहायक हो सकती है। यदि खरपतवारों को पर्याप्त नमी मिलती है तो यह वृद्धि कर फसल से अधिक प्रतियोगिता करते हैं। कई खरपतवार पानी भरे खेत में पनप नहीं पाते हैं। जैसे धान के खेत में पूरे मौसम में 5 से.मी. पानी भर कर रखे तो ऐसी परिस्थिति में खरपतवार नहीं उगेगें। सिंचाई विधियां भी खरपतवारों की सघनता को प्रभावित करती है। टपक सिंचाई विधि से बगीचा में सिंचाई करने पर थाला विधि की अपेक्षा खरपतवारों की रोकथाम ज्यादा अच्छी हो सकती है। क्योंकि टपक सिंचाई से पानी पौधे की जड़ के पास दिया जाता है और बाकी का खेत सूखा रहता है इस तरह से खरपतवार बिना नमी के पनप नहीं जाते हैं।

12. **भूमि अच्छादन:**-

जहां खरपतवारों की अधिक समस्या हो उन क्षेत्रों शीघ्र बढ़ने वाली अच्छादन करने वाली फसल लेना चाहिये जैसे लोबिया, मूंग व उड़द आदि शीघ्र बढ़ने वाली व चैड़े पŸाी से खेत के उपर आवरण बना देती है जिससे खरपतवारों को वायु व प्रकाश पर्याप्त मात्रा नहीं मिलता है और उनकी वृद्धि रूक जाती है।

13. आग द्वारा खरपतवार नश्ट करने का तरीका -

खेतों के चारों ओर व खेतों में उगे अधिक बहुवर्शीय खरपतवारों को अकृशित या बेकारपडती भूमी पर कटाई कर एकत्रित कर उनमें आग लगा देने से उनके प्रसारण में कमी हो जायेगी यह कार्य विषेश सावधानीपूर्वक करें।

14. मल्चिंग या पलवार:-

फसलों की कतारों के बीच खाली स्थान पर भूसा, धान का पुआल, प्लास्टिक की चादरें तथा उखाड़ गये कचरा से ढ़क देना चाहिये। इस प्रकार खरपतवारों को वायु व प्रकाश नहीं मिलता है जिससे वह मर जाते है। शुष्क खेती वाले क्षेत्रों के लिये सर्वोŸाम विधि है क्योंकि इस विधि से खरपतवारों की वृद्धि पर विपरीत असर ही नहीं पड़ता वरन् उपलब्ध नमी का संरक्षण होता है। यह विधि कतारों में बोई गई फसलों में आसानी से अपनाई जा सकती है।

शस्य क्रियायें एवं निराई-गुड़ाई -

यह खरपतवार नियंत्रण की सर्वोत्तम विधि है परन्तु समय एवं व्यय अधिक होता है। इसके विभिन्न पहलु इस प्रकार हैं -

- अनुकूल मौसम परिस्थितियों के होने पर सिफारिषानुसार खरीफ फसलों की शीघ्र कतारों में उचित दूरी पर बुवाई करें ताकि फसलें उचित नमी में शीघ्रता से उग आएं एवं खरपतवार नियंत्रण में सुविधा रहे।

- जहाँ तक संभव हो सके फसलों को शुरू की क्रान्तिक प्रतिस्पर्धा अवस्थाओं में खरपतवारों से मुक्त रखा जाना चाहिए।
- खुरपी, हो, कल्टीवेटर या अन्य कृषि यंत्रों के द्वारा सिफारिसानुसार निराई-गुड़ाई अवश्य करें। इससे खरपतवार नियंत्रण के साथ-साथ मृदा में वायु संचार बढ़ने से फसलों की वृद्धि एवं उपज में बढ़ोतरी होती है साथ ही नमी संरक्षण भी होता है।
- यदि फसलों की बुवाई कतारों में सिफरिसानुसार की गई हो तो, कतारों के मध्य 10-15 सेमी. के फाल (ब्लेड) वाले कल्टीवेटर या कुल्फा/डोरा को बैलों/ट्रैक्टर द्वारा सीधा चलाकर भी खरपतवारों की सघनता में कमी की जा सकती है परन्तु इसमें यह सावधानी रखनी चाहिए फसलों के पौधों की जड़ें न कटें व उखड़ने न पांए।

जैविक विधियां:-

इस विधि का उद्देश्य खरपतवारों की पौधें की संख्या को कीट पतंगों एवं व्याधियों द्वारा इतना घटा दिया जाता है कि उनका प्रभाव मुख्य फसल पर नगण्य हो जाता है। इस विधि का प्रयोग अभी प्रायोगिक तौर पर ही हुआ है। इस विधि का कृषक प्रक्षेत्र पर उतारना बाकी है जबकि दुनिया के कई देशों में इस विधि का प्रचलन आम हो गया है। इस विधि में खरपतवारों को विभिन्न कीटों व घोंघें, मछलियों व रोगाणुओं द्वारा नष्ट किया जाता हैं -

1. लेन्टाना कैमारा को क्रोसीडोसमा लेन्टाना तथा एग्रोमाइना लेन्टानी नामक कीटों से नष्ट किया जा सकता है नागफली को फेक्टोब्लास्टीत फेक्टोरम नामक कीट से नष्ट किया जा सकता है।
2. जलीय खरपतवार इलोडिया स्पी व जलकुम्भी को मरीसा कोन्च्यूराइटिस नामक घोंघे खाकर नष्ट कर देती है।
3. चाइनीज ग्रास कार्प व सिल्वर कार्प नामक मछलियां कई जलीय खरपतवारों को खाकर नष्ट कर देती है।
4. कई रोगाणु जनकों का उपयोग कर खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नष्ट किया जा सकता है। कैलीगो (कलेफ्टोट्रीकम ग्लिओपोररीडस) नामक और डिवाइन (फाइटोफ्थोरा पल्मीफ्लोरा) नाम माइकोहरवीसाइड व्यवसायिक रूप से बाजार में आ चुके हैं। जो कई फसलों के खरपतवारों को प्रभावी ढंग से नियंत्रित करते हैं।
5. मनेन्टी (ट्राइचीहस स्पी.) नामक जलीय पशु अनेक खरपतवारों को खाकर नियंत्रित कर देना है। हाइड्रेलिया नामक मक्खी हाइड्रिला को नष्ट करती है।
6. सूत्रकृमि द्वारा सोलेनम इलेग्निफोलयम भी नियंत्रित किया जा सकता है।
7. जलकुंभी - (आइकोर्निया क्रैसीपेस) को दो वीविलों निकोटिआना आइकोनिसें तथा निकोकेटिना बूकी द्वारा नष्ट कर नियंत्रित किया जा सकता है। इन विविलो के पोढ़ 5 हजार/है. की दर से जलकुभी से ग्रसित जलाशय में छोड़ते हैं। इसके अलावा जलीय माइटीस (ओ. टेवेबेन्टिस) जलकुम्भी तना में 20,0000 सुरंग प्रति पौधा बनाकर पूरी तरह से नष्ट कर देते हैं।
8. गाजरघास (पार्थिनियम हीस्टोफोरस) को जाइगोग्रामा वाइक्लोराटा के लारवा और प्रौढ़ पार्थेनियम की पत्तियों को खाते है। वर्षा के मौसम इस कीट के 5000 प्रोढ़/है. की दर

से छोड दिये जाते हैं। और उसके बाद यह बीटल लगे हुये क्षेत्र अपने आप फैल्कर गाजर घास के पंक्तियों पूर्ण रूप से खाकर नष्ट करते हैं।

9. कांस को घनी सनई लगाकर नष्ट किया जा सकता है।
10. एलिलोपैथी:- जब किसी पौधे द्वारा परोक्ष रूप से वातावरण में विसर्जित अथवा उत्सर्जित अन्य पौधें को प्रभावित करता है तो इस क्रिया को एलिलोपैथी कहा जाता है। अनेक पौधे मृदा अथवा अन्य संवर्धन माध्यमों में जड़ो द्वारा अनेक रसायनों का उत्सर्जन अथवा स्त्राव करते हैं। भूमि में पौधों के अवशेषों के सड़ने गलने से भी अनेक कार्बनिक रसायनों उत्पन्न होते हैं। ये पदार्थ उसी पौधे, अन्य विभिन्न प्रकार के पौधे से वर्धन को उनकी जड़ों के विकास को प्रभावित कर करते हैं। लगभग सभी पौधे एलीलोपैथिक यौगिक पाये जाते है। जो मुख्यतः पंक्तियों तनों व जड़ों में पाये जाते है। उदाहरण के तौर पर कृषक भाई गेहूँ का भूसा खलिहान पड़ा छोड़ देते है। जब वह वर्षा जल से सड़ जाता है भूसे से पानी बह कर आस पाास भर जाता है तब जहां-तहां पर भूसे का रस भरा रहता है। वहां एक भी खरपतवार नहीं उगता है और यदि उग भी आये तो वह वृद्धि करने की स्थिति में नहीं होता है।

(2) रासायनिक खरपतवार नाशकों द्वारा खरपतवार नियंत्रण

यदि यांत्रिक एवं शस्य क्रियाओं द्वारा, प्रतिकूल मौसम परिस्थितियों जैसे लगातार वर्षा होने या समय पर मजदूरों के न मिलने के कारण अधिक क्षेत्र में हाथों से श्रमिकों द्वारा खरपतवार निकालना संभव न हो तो, ऐसी स्थिति में खरपतवारों का रासायनिक नियंत्रण काफी कारगर साबित होता है। खरपतवारनाशकों द्वारा खरपतवारों के नियंत्रण में लागत कम आती है, समय की बचत होती है तथा अधिक क्षेत्र में आसानी से नियंत्रण संभव हो जाता है। खरपतवारनाशक, खरपतवारों को उगते ही शीघ्र नष्ट कर देते हैं जिससे उनकी पुनः वृद्धि नहीं होती है, फूल व बीज नहीं बनते हैं तथा उनका प्रसारण नहीं हो पाता है जिससे अगले वर्ष फसलों में खरपतवारों का प्रकोप काफी हद तक कम हो जाता है। खरपतवारनाशी रसायनों को प्रयोग करते समय ध्यान रखना चाहिए कि सिफारिसानुसार उपयुक्त खरपतवारनाशी को उचित मात्रा में सही ढंग एवं उपयुक्त समय पर प्रयोग करें अन्यथा गलत तरीके के प्रयोग से हानि एवं फसलों को नुकसान हो सकता है।

विभिन्न फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु अलग-अलग खरपतवारनाशक सिफारिश किये गये हैं जिनको मुख्यतया तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है तथा जिनकी मात्रा व उपयोग तालिका-2 में दर्शायी गई है।

(अ)बुवाई पूर्व प्रयुक्त खरपतवारनाशक (पी.पी.आई.)

इस प्रकार के खरपतवारनाशक बुवाई से पूर्व या खेत की अंतिम तैयारी के समय छिड़काव कर भूमी में मिला दिया जाते हैं जो कि खरपतवारों के बीजों को उगने से या उगते ही नष्ट कर रेाक देते हैं या कुछ उग भी जाते हैं तो शीघ्र नष्ट हो जाते हैं। इनका प्रयोग स्प्रेयर, पावर स्प्रेयर एवं ट्रेक्टर माउन्टेड स्प्रेयर से भी किया जा सकता है। ध्यान रहे कि ये ज्यादातर उड़नशील प्रकृति के होते हैं अतः इन्हें छिड़काव के साथ ही या तुरन्त पश्चात् भूमी में जुताई द्वारा अच्छी तरह मिलाना अति आवश्यक है अन्यथा इनका प्रभाव कम हो जाता है।

(ब) **अंकुरण पूर्व एवं बुवाई के तुरन्त पश्चात् प्रयुक्त खरपतवारनाशक (पी.ई.)**

यह खरपतवारनाशी बुवाई के तुरन्त पश्चात् (24-36 घण्टे तक) एवं अंकुरण से पूर्व प्रयोग में लिए जाते हैं। चूंकि खरपतवार फसल से पहले उग आते हैं। अतः यह उगते हुए या उगे हुए खरपतवारों को नष्ट कर देते हैं तथा अन्य को उगने से रोकते हैं। इन खरपतवारनाशकों के प्रयोग के समय यदि भूमी में थोड़ी नमी हो तो इनकी क्रियाशीलता बढ़ जाती है। यह चयनित प्रकार के होते हैं अतः फसल को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं।

(स) **अंकुरण पश्चात् खड़ी फसल में प्रयुक्त खरपतवारनाशक (पी.ओ.ई.)**

इस प्रकार के खरपतवारनाशक, फसल उगने के पश्चात् या खड़ी फसल में छिड़के जाते हैं। यह चुनिंदा प्रकर के होते हैं जो खरपतवारों को विभिन्न रासायनिक क्रियाओं द्वारा नष्ट करते हैं तथा फसल को नुकसान नहीं पहुँचाते हैं। कई बार लगातार, बुवाई की प्राथमिकता होने से या लगातार बारिश होने या किन्ही अन्य कारणों से बुवाई पूर्व (पी.पी.आई.) या अंकुरण पूर्व (पी.ई.), खरपतवारनाशकों का प्रयोग नहीं किया जा सके, तो बुवाई पश्चात् (पी.ओ.ई.) खरपतवारनाशक खड़ी फसलों में प्रयोग कर सकते हैं। चूंकि यह खरपतवारनाशक खड़ी फसल में प्रयुक्त होते हैं अतः इनके प्रयेाग में कुछ विशेष सावधानियाँ रखनी चाहिए जैसे विशिष्ट खरपतवारों के लिए सिफारिसानुसार उचित खरपतवारनाशक की सही मात्रा व सही समय पर, सही विधि द्वारा छिड़काव करें अन्यथा फसल पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है।

खड़ी फसल में प्रयुक्त किये जाने वाले (अंकुरण पश्चात् वाले) खरपतवारनाशक चुनिंदा प्रकार के होते है, जो खरपतवारों को भिन्न-भिन्न रासायनिक क्रियाओं द्वारा नष्ट करते है तथा फसल को नुकसान नहीं पहुँचाते है। चूँकि यह खरपतवानाशक सोयाबीन की खड़ी फसल में प्रयोग किये जाते है। अतः इनके प्रयोग में कुछ विशेष सावधानियाँ रखनी चाहिए। जैंसे विशिष्ठ खरपतवारों के लिए विशिष्ठ खरपतवानाशक की सही मात्रा, सही समय व सही विधि द्वारा छिड़काव करें अन्यथा फसल पर कभी-कभी प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है।

सरफेक्टेंट का प्रयोग अवश्य करें: खरीफ के मौसम में, खरपतवारों के नियंत्रण हेतु खरपतवानाशकों का छिड़काव करते-करते या 2-3 घण्टे बाद बारिस भी आ जाती है और छिड़काव किये गये खरपतवानाशक की काफी मात्रा पत्तियों से छिटक कर नीचे गिर जाती है और आशातीत परिणाम नहीं मिलते है। खरीफ में इन सभी से बचने के लिए दवाई चिपकाने व फैलाने वाला पदार्थ “ सरफेक्टंट 0.5 प्रतिशत यानि करीब 500 मिलीलीटर प्रति हैक्टेयर के हिसाब से खरपतवारों के साथ मिलाकर स्प्रे करने से खरपतवारनाशक, खरपतवारों की सम्पूर्ण पत्तियों पर फैलकर चिपक जाते है जिससे यदि 2-3 घण्टे बाद बारिस आ भी जाती है तो दवाई का नुकसान काफी कम होता है। अतः सोयाबीन में खरपतवारनाशकों के साथ “ सरफेक्टेंट'' मिलाकर छिड़काव करने से खरपतवारों का अच्छा नियंत्रण हो पाता है। स्प्रेयर की टंकी में पहले खरपतवानाशक मिलाये तथा बाद में सरफेक्टेंट को डाल कर स्प्रे करें।

खरपतवारनाशक की मात्रा ज्ञात करना -

कई बार कृषकों के सामने खरपतवारनाशकों की सही प्रयुक्त मात्रा ज्ञात करने में परेशानी होती है अतः स्वयं किसान भी सूत्र द्वारा सही मात्रा ज्ञात कर सकते हैं। इसके लिये

खरपतवारनाशक के डिब्बे पर उसकी सान्द्रता (प्रतिशत) ई.सी., डब्ल्यू.पी., जी.एस.पी., डब्ल्यू.एस.पी., एल. या एस.एल. के रूप में लिखी रहती है।

कहरपतवार नाशक की मात्रा= $\frac{\text{खरपतवार नाशक के प्रयुक्त किये जाने वाले सक्रिय तत्व}}{(\text{active ingredient a.i.कि.ग्रा.})/\text{कीमात्राखरपतवारकीसांद्रता}(\%)}$X 100

प्रति हैक्टर (कि.ग्रा. या लीटर)

उदाहरण- सोयाबीन में घास कुल के खरपतवारों के नियत्रंण हेतु क्विजालोफोप (टरगा सुपर 5 ई.सी.) नामक खरपतवारनाशक की 0.05 किग्रा. सक्रिय तत्व प्रति हैक्टर की दर से कितनी मात्रा की जरूरत पड़ेगी।

$=\frac{0.05}{5}$x100=1 किग्रा. या लीटर टरगा सुपर प्रति हैक्टर

तालिका-2: खरीफ फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु सिफारिष की गई विधि एवं खरपतवारनाषक तथा उनका विवरण।

फसल	खरपतवार तकनीकी नाम	रसायनिक प्रकार	प्रयुक्त सक्रिय तत्व	प्रयुक्त मात्रा/है.	प्रयोग प्रकार
धान					
नर्सरी (रोपणी)	वेनथियोकार्य	तरल 50 ई.सी.	1 किग्रा./है.	2 किग्रा./है.	रोपाई के 1-2 दिन में
धान खड़ी फसल (रोपाई विधि)	वेनथियोकार्य	तरल 50 ई.सी.	1.5 किग्रा./है.	3 किग्रा./है.	रोपाई के 3-5 दिन में
	ब्यूटाक्लोर	दानेदार 5 जी	1.5 किग्रा./है.	25 किग्रा./है.	रोपाई के 3-5 दिन में
	सइनमेथेलीन +2,4 डी ईथाइल ईस्टरतरल	तरल 50 ई.सी.	3.375 किग्रा./है.		रोपाई के 7-10 दिन बाद
	एनीलोफॉस+ईथोक्सी सल्फफ्यूरानतरल	तरल (24 EC+24.1 SC)	0.312+0.012 किग्रा./है.	1.3 ली. + 50 ग्रा./है.	रोपाई के 7-10 दिन बाद
खड़ी फसल सीधी बुवाई	बेनाथियोंकार्बतरल	तरल 50 ई.सी.	1.5 किग्रा./है.	3 लीटर/है.	बुवाई के 3-4 दिन बाद
	पेन्डीमेथालीनतरल	30 ई.सी.	1 किग्रा./है.	3.33 लीटर/है.	बुवाई के 3-6 दिन बाद

	एनीलाफास +2,4डी ईथाइर्लस्टर	तरल 24 ई.सी. + तरल 32 ई.सी.	400 ग्राम/है +530 ग्राम/है.	1.66 ली.+1.1.66 ली.	रोपाई के 3-4 दिन बाद
मक्का	एट्राजिन	50 डब्ल्यू. पी.	500 ग्राम/है.	1 किग्रा./है.	अंकुरण पूर्व (पी.ई.)
ज्वार	एट्राजिन	50 डब्ल्यू. पी.	500 ग्राम/है.	1 किग्रा./है.	अंकुरण पूर्व (पी.ई.)
बाजरा	एट्राजिन	50 डब्ल्यू. पी.	500 ग्राम/है.	1 किग्रा./है.	अंकुरण पूर्व (पी.ई.)
मूंग/उड़द	एलाक्लोर	तरल 50 ई.सी.	2 किग्रा./है.	4 लीटर/है.	अंकुरण पूर्व (पी.ई.)
अरहर	एलाक्लोर	तरल 50 ई.सी.	2 किग्रा./है.	4 लीटर/है.	अंकुरण पूर्व (पी.ई.)
ग्वार	फ्लूक्लोंरालिन	तरल 48 ई.सी.	750 ग्राम/है.	1.6 लीटर/है.	बुवाई पूर्व (पी.पी.ई.)

तालिका-3: रबी फसलों में खरपतवार नियंत्रण हेतु सिफारिश खरपतवारनाषक तथा उनका प्रयोग

फसल	निराई. गुड़ाई	खरपतवार
गेहूँ	30-35 दिनों	2,4-D 500.750 ग्राम /है. बुवाई के 30-35 दिन बाद छिडकाव करें चैडी पत्ती के खरपतवारो हेतु Metsufuron methyl 20 ग्राम /है. बुवाई के 30-35 दिन बाद 0.5% सरफेक्टेन्ट के साथ मिलाकर छिडकाव करें Isoproturon / Metaxuron का 1.25 कि.ग्रा. /है. बुवाई के 30-35 दिन बाद छिडकाव करें Sulfosulfuron 25 ग्राम /है. बुवाई के 30-35 दिन बाद 0.5% सरफेक्टेन्ट के साथ मिलाकर छिडकाव करें
चना	25-35 दिनों	Fluchloralin 0.5 कि.ग्रा./है. बुवाई पूर्व (पी.पी.ई.) छिडकाव करें
सरसों	20-25 दिनों	Fluchloralin 1.0 कि.ग्रा./है. बुवाई पूर्व (पी.पी.ई.) छिडकाव करें
अलसी	20-25	Fluchloralin 0.75 कि.ग्रा./है. बुवाई पूर्व (पी.पी.ई.) छिडकाव करें

	दिनों	
सूरजमुखी	30-45 दिनों	Alachlor 1.5 कि.ग्रा./है. अंकुरण पूर्व (पी.ई.) छिडकाव करें
राजमा	30-35 दिनों	Pendimethalin 1.0 कि.ग्रा./है. अंकुरण पूर्व (पी.ई.) छिडकाव करें
गन्ना	30-40 दिनों	Atrazine 1.25 कि.ग्रा./है. अंकुरण पूर्व (पी.ई.) बुवाई के 3-4 दिन बाद छिडकाव करें एवं बाद में 2,4-D 1.0 कि.ग्रा./है. का 60 दिनों पर छिडकाव करें फसल अवशेषों की पलवार (trash mulching) करें

4.9 खरपतवारनाषकों के प्रयोग संबधी सावधानियाँ-

1. रसायन छिडकने वाले किट/मास्क का प्रयोग करें।
2. फ्लेटफेन/फ्लेट जेट नोजल लगाकर छिडकाव करें।
3. उचित समय पर सही मात्रा का प्रयोग करें।
4. छिड़काव हेतु निर्धारित रसायन मात्रा का पानी में घोल बनाकर स्प्रे करें।
5. वायु के विपरीत दिषा में छिड़काव न करें ताकि रसायन षरीर पर न गिरे।
6. छिड़काव के समय बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू या अन्य चीज न खायें व खाली पेट स्प्रे न करें।
7. छिड़काव पूरे खेत में समान रूप से करें।
8. छिड़काव पष्चात् स्प्रे को अच्छी तरह साफ करके रखें।
9. रसायन के डिब्बों को तोड़कर, भूमी में गहरा गाढ़ देवें।
10. यदि हो सके तो, छिड़काव रसायन की खरीद रसीद, अन्य जानकारियां जैस ेनाम आदि कागज या डायरी में नोट कर लेवें।
11. पूर्णरूप से खाली पेट स्प्रे न करें एवं हो सके तो एक साथी जरूर साथ ले जावें।
12. रसायनों को न सूघें, न चखें और न ही स्पर्ष करें अन्यथा त्वचा पर विपरीत असर पड़ सकता है।
13. नींदानाष्कों को लकड़ी की सहायता से घोलें और स्प्रे करने वाले के षरीर पर किसी प्रकार का घाव आदि न हो।
14. छिड़काव पषचात् शरीर व कपड़ों को साबुन से अच्छी तरह साफ करें।
15. खरपतवार नाषक छिड़कते समय या बाद में किसी प्रकार का षरीर पर प्रतिकूल प्रभाव हो तो तुरन्त पास के अस्पताल में डाक्टर को दिखायें।

एकीकृत खरपतवार प्रबंन्धन के उदाहरण

- कर्षण क्रियाएं (Cultural practices) + यांत्रिक तरीके (Mechanical methods)
- कर्षण व शस्य क्रियाएं (Cultural practices) + रासायनिक नियंत्रण (Chemical control)

- कर्षण व शस्य क्रियाएं (Cultural practices) + जैविक तरीके (Biological tools)
- शस्य क्रियाएं + एक निराई गुडाई
- वुवाई पुर्व खरपतवार नाशक + एक निराई गुडाई
- अकुरण पूर्व खरपतवार नाशक + एक निराई गुडाई
- खडी फसल में खरपतवार नाशक + एक गुडाई आवश्यकतानुसार

4.10 सारांश:

किसी परिस्थती विशेष में प्रत्येक विधि का अपना खास महत्व होता है। उपर्युक्त तरीकों का सही प्रयोग किया जावे ताकि संक्रमण आर्थिक हानि सतर से नीचे बना रहे, इसे ही एकीकृत खरपतवार प्रबंन्धन कहते है । इसमें विभिन्न प्रकार की खरपतवार नियंत्रण की विधियों का संयुक्त रुप से प्रयोग किया जाता है क्योकि कोई भी एक ऐसी विधी सम्पूर्ण नही है, जो कि खरपतवारों को पूर्ण रुप से नियंत्रित करने में सछम हो। अत: सुनियोजित क्रम में इस प्रकार इस्तेमाल किया जाए कि पर्यावरण को नुकसान नही पहुचे एवं अधिकतम उपज प्राप्त हो सके ।

4.11 बोध प्रश्न

1. खरपतवार की परिभाषा एवं इनके द्वारा फसलों को नुकसान केसै पहुचाया जाता है ?
2. एकीकृत खरपतवार प्रबंन्धन से क्या अभिप्राय है ?
3. एकीकृत खरपतवार प्रबंन्धन में कौन-कौनसी विधियां प्रयोग में ली जा सकती है ? विस्तृत विवेचना कीजिए ?

4.12 सन्दर्भ साहित्य

1. Crafts, A.S., Modern Weed Control, The University of California Press, U.S.A.
2. Hosmani, M.M., Integrated Weed Management in Field Crops, LB Publishers and Distributers, Banglore.
3. Gupta, O.P., 1998, Modern Weed Management, Agrobios Publishers, Bikaner.
4. Prakash, Om, Weed Control, Rama Publishing House, Meerut.
5. 5.Mandal, R.C., Weed, Weedcides and Weed Control Principles and Practices, Agrobios Publishers, Bikaner.
6. Aldrich, R.J. and Kremer, R.J., Principles of Weed Management, Panima Publishing Corporation, New Delhi
7. Subramanian, S., Ali, M.A. and Kumar, R.J., All about Weed Control, Kalyani Publishiers, New Delhi
8. Rao, V.S., 1994, Principles of Weed Science, Oxford & IBH Publishig Co. Pvt. Ltd.

इकाई 5

खरपतवर नाशक के छिड़काव में इस्तेमाल उपकरण

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 छिड़काव यंत्रों का चुनाव

5.3 छिड़काव यंत्रों (स्प्रेयर) के प्रकार

5.4 स्प्रेयर के मुख्य भाग

5.5 छिडकाव हेतु नोजल के प्रकार

5.6 छिड़काव यंत्रों के उपयोग में सावधानियाँ

5.7 सांराश

5.8 बहुचयनात्मक प्रश्न

5.9 सन्दर्भ

5.0 उद्देश्य :

बढ़ती हुई जनसंख्या की जरूरतों को पूरा करने के लिये विभिन्न खाद्यान्न फसलों की अधिक उपज देने वाली किस्में लगाना प्रत्येक किसान की प्रथम आवश्यकता हो गई है। परन्तु इसके साथ ही विभिन्न प्रकार के खरपतवारों द्वारा फसलों को होने वाले नुकसान में वृद्धि हुई है। एक अनुमान के अनुसार पूरे देश में खरपतवारों द्वारा लगभग 15 प्रतिशत उपज नष्ट हो जाती है। इनसे बचाव के लिए काश्तकार को अनेक खरपतवार नाशको का प्रयोग फसलो में करना पड़ता है क्योंकि खरपतवार पौधों के पोषक तत्वों का उपयोग करते है जिसके कारण खाद, पानी तथा अन्य तत्व फसलों को पूरी मात्रा में नहीं मिल पाते हैं। अतः दवाओं को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए उचित तरीके तथा उचित उपकरणों का प्रयोग किया जाना आवष्यक है।

5.1 प्रस्तावना

खरपतवारनाशी आधुनिक कृषि विज्ञान की परम आवश्यकता है। खरपतवार नाशियों से खरपतवार नियंत्रण करना मजदूरों द्वारा, यंत्रों द्वारा, शारीरिक शक्ति से अधिक मित्व्यायी है। वे एक प्रकार के जहर हैं। इनके प्रयोग में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। जिस प्रकार यह खरपतवारो व अन्य जीवों के लिए घातक है उसी प्रकार मानव शरीर पर भी इनका कुप्रभाव पड़ता है। इस प्रकार ये रसायन जो कृषि के लिए वरदान सिद्ध हो रहे हैं, असावधानी और अज्ञानतापूर्वक प्रयोग करने पर प्राणघातक भी सिद्ध हो सकते हैं। खरपतवार नाशकों के छिड़काव में कतिपय सावधानियों की आवश्यकता होती है। उचित प्रकार का छिड़काव यंत्र काम में लेने से इनका प्रयोग अधिक प्रभावी व सुगमता से किया जा सकता है। जिससे खरपतवारनाशी रसायनों की कम मात्रा भी अधिक प्रभावी होती है। छिड़काव यंत्र के उचित प्रयोग एवं सावधानी के अभाव में मनुष्य के

स्वास्थ्य पर इसका प्रतिकूल असर पड़ता है। अत: फसलों में खरपतवारनाशीयों के छिड़काव के लिए उपयोगी यंत्रों का चयन, रखरखाव तथा सावधानियाँ अत्यंत आवश्यक है।

5.2 छिड़काव यंत्रों का चुनाव

फसलों में खरपतवारनाशी के छिड़काव के लिए उपयोगी यंत्रों का चयन करना अत्यंत आवश्यक है। छिड़काव यंत्र (स्प्रेयर) उपयोगिता तथा बनावट के आधार पर कई प्रकार के होते हैं। छिड़काव हेतु अनेक प्रकार के उपकरण बाजार में आ जाने के कारण यह आवश्यक हो जाता है कि कृषि उपकरणों के चुनाव, उपयोग व रखरखाव के बारे में कृषक भाईयों को समुचित ज्ञान हों। फसल के ऊपर तरल रूप में खरपतवारनाशीयों का छिड़काव करने के लिए अनेक उपकरणो का प्रयोग किया जाता है। इस लेख में कृषकों को स्प्रेयर से सम्बन्धित महत्वपूर्ण जानकारी दी जा रही है। यदि इन दवाओं का प्रयोग बड़े क्षेत्र में करना है तो पेट्रोल इंजन चालित 0.5 से 1.0 आश्वशक्ति का नैपसैक पावर स्प्रेयर उपयुक्त रहेगा। छोटे क्षेत्र के लिए फूट स्प्रेयर/बिना इंजन का नैपसैक स्प्रेयर उपयुक्त होता है।

5.3 छिड़काव यंत्रों (स्प्रेयर) के प्रकार

खरपतवारनाशी का प्रयोग मुख्यत तरल अवस्था में किया जाता है। तथा इनका छिड़काव स्प्रेयर यानी छिड़काव यंत्र से किया जाता है। खरपतवारनाशी को पानी में घोल कर स्प्रेयर की सहायता से छोटी-छोटी बूंदों के घोल रूप में छिड़काव किया जाता है। अलग-अलग फसलों के लिये भिन्न-भिन्न स्प्रेयरों का उपयोग किया जाता है। छिड़काव यंत्र (स्प्रेयर) उपयोगिता तथा बनावट के आधार पर कई प्रकार के होते हैं हमारे देष में मुख्यत नेपसेक स्प्रेयर, फुट स्प्रेयर, मोटराइज्ड नेपसेक स्प्रेयर, ट्रैक्टर चलित बूम स्प्रेयर, रौकर स्प्रेयर एवं हस्त चालित कम्प्रैशन स्प्रेयर अधिक प्रचलित है।

1. नेपसेक स्प्रेयर

यह एक हस्त चलित खरपतवारनाशी छिड़काव यंत्र हैं इस स्प्रेयर का उपयोग कम ऊँचाई वाली फसलों में किया जाता है। इस यंत्र के प्रमुख भाग निम्न है - टंकी, पंप, हैंडल, कट ऑफ वाल्व, स्प्रे लांस, नोजल व बेल्ट। इसकी टंकी की क्षमता 15 से 18 लीटर की होती है। कट ऑफ वाल्व की सहायता से छिड़काव कार्य को बन्द व चालू किया जाता है। खरपतवारनाशी भरने के बाद टंकी का ढक्कन हमेशा बंद रखें। इस यंत्र को एक व्यक्ति आसानी से पीठ पर रख कर छिड़काव कर सकता है। इसमें एक पम्प चलाकर वायुदाब उत्पन्न करते हैं और नौजल से छोटी-छोटी बूंदों के रूप में छिड़काव का द्रव्य निकलने लगता है। व्यक्ति एक हाथ से स्प्रे बूम तथा दूसरे से पम्प का लीवर चलाते हुए आसानी से छिड़काव कर सकता है। काश्तकारों के पास अधिकांश यही स्प्रेयर होता है। इस स्प्रेयर का प्रयोग किसी भी फसल में किया जा सकता है। यह मुख्यत छोटे पेड़ों, झाड़ियों और खेत में उगाई गई खाद्यान्न फसलों के लिए उपयोगी है।

2. **फुट स्प्रेयर:-** यह स्प्रेयर बैरल (पाईप) के आकार का पीतल का बना होता है। इसमें छिड़काव से पहले एक बर्तन में दवा का घोल बना लिया जाता है। यह एक पैडल चलित यंत्र है जिसे चलाने के लिये कम से कम दो व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। स्प्रेयर को चलाने के लिये एक आदमी पम्प का पैडल लगाता है। तथा दूसरा व्यक्ति लम्बी पाईप स्प्रे लांस की सहायता

से पोधों पर दवा का छिड़काव करता है। छिड़काव के दौरान यन्त्र को आवश्यकतानुसार जगह-जगह उठाकर रखा भी जा सकता है। बूम में डन्डा लगाकर छिड़काव की ऊँचाई बढ़ा भी सकते हैं।

3. **रौकर स्प्रेयर:-** इस यंत्र का निर्माण फुट स्प्रेयर के सिद्धान्त पर हि किया गया है, फुट स्प्रेयर को पैर से चलाया जाता है, जबकि इसे हाथ सें चलाया जाता है। इसमें फुट पैडल के स्थान पर हेन्ड लीवर होता है। इसकी टंकी उल्टे घड़े के आकार की होती है। यह फुट स्प्रेयर की अपेक्षा अधिक प्रेशर उत्पन्न करता है तथा चलाने में आसान होता है। इसकी कीमत फुट स्प्रेयर से अधिक होती है। इसमें 15 से 20 लीटर तक घोल आता है। इसका प्रयोग अधिक ऊँचाई वाले वृक्षों व सामान्य फसलों में किया जाता है।
4. **मोटराइज्ड नैपसैक स्प्रेयर:-** यह एक पीठ पर बांध कर चलने वाला स्प्रेयर है जो कि उस पर लगे एक छोटे से पेट्रोल या केरोसीन से चलने वाले इंजिन की सहायता से चलता है। इस स्प्रेयर से बहुत ही बारीक बूंदे बनती है तथा हवा के वेग के कारण ये बूंदे खरपतवारो के सभी भागो तक पहुंच कर उन्हें खत्म कर देती है। इस स्प्रेयर का उपयोग अधिक घने खरपतवारो में सफलता पूर्वक छिड़काव करने के लिये होता है।
5. **ट्रेक्टर चलित बूम स्प्रेयर:** यह एक ट्रेक्टर से चलने वाला स्प्रेयर है जिसमें एक फ्रेम पर 18 से 20 नौजल लगे होते हैं यह ट्रैक्टर के पीछे थ्री पॉइंट लिंक की सहायता से लगा होता है। तथा इसको चलाने के लिये ट्रैक्टर की पीटओं से मिलने वाली घूर्णी शक्ति को काम में लेते हैं। खरपतवार नाषक के स्टोरेज के लिये एक 200 से 250 लीटर क्षमता वाली टंकी होती है। इस प्रकार के स्प्रेयर का उपयोग मुख्यत कम समय में अद्यिक क्षेत्रफल में स्प्रेयर करने में किया जाता है। आर्थिक दृष्टि से यह स्प्रेयर बडे खेतों में खरपतवारनाशी छिड़काव के लिये सही रहता है।
6. **हस्त चलित कम्प्रैरशन स्प्रेयर:-** इसकी टंकी सिलिन्डर के आकार में लोहे या पीतल से बनी होती है। इसके ऊपर वाले भाग में पम्प, प्रेशर गेज तथा सेफ्टी वाल्व लगा होता है। पम्प की सहायता से हवा का दबाव उत्पन्न किया जाता है। इसकी क्षमता 20 लीटर की होती है। इसका पाइप काफी लम्बा होता है। एक व्यक्ति आसानी से छिड़काव कर सकता है।

फुट स्प्रेयर

नेपसेक स्प्रेयर

5.4 स्प्रेयर के मुख्य भाग

स्प्रेयर का प्रयोग करने से पहले इसके मुख्य भागो कि जानकारी होना आवश्यक है। सामान्यतः सभी कास्तकारों के पास कोई न कोई छिड़काव यन्त्र (स्प्रेयर) होता है, जिसमें निम्न भाग होते हैं:-

1. **टंकी:-** स्प्रेयर की टंकी का प्रयोग दवा का घोल रखने के लिए किया जाता है। दवा का घोल सामान्यतः किसी बर्तन में बनाकर स्प्रेयर की टंकी में छलनी द्वारा छानकर भरना चाहिए। ऐसा न करने से नौजल बन्द हो जाता है, जो एक सामान्य समस्या है।
2. **पम्पः-** पम्प द्वारा स्प्रेयर में प्रेशर बनाया जाता है।
3. **हौज पाईप:-** हौज पाईप बूम को टंकी से जोड़ता है।
4. **बूम या लैंस:-** बूम हौज पाईप को कट ऑफ वाल्फ से जोड़ता है। बूम को हाथ से पकड़कर छिड़काव किया जाता है।
5. **कट ऑफ वाल्व:-** छिड़काव को रोकने या चालू करने के लिए कट ऑफ वाल्व का प्रयोग किया जाता है। इससे नौजल जुड़ा रहता है।
6. **छलनी:-** दवा का घोल छलनी द्वारा छानकर स्प्रेयर की टंकी में भरा जाता है।
7. **नौजल:-** नौजल ही स्प्रेयर का मुख्य भाग है, जो सामान्यतः अधिक खराब होता है। द्रव्य (घोल) रूपी दवा को नौजल छोटी-छोटी बूँदों में बदलता है, जिसे आटोमाइज करना कहते हैं। नौजल कई प्रकार के होते हैं किन्तु खरपतवारनाशी छिड़काव हेतू फ्लैट फैन नोजल या कट नोजल का प्रयोग छिड़काव करने के लिए करते हैं। फ्लैट फेन नौजल छत पर लगने वाले पंखे की तरह अंडाकार रूप में समान रूप से फसल के ऊपर स्प्रे करता है। नौजल एक निश्चित कोण दिशा में छिड़काव करता है। कट नोजल का प्रयोग मुख्यत बुआई से पुर्व व फसल उगने से पहले खरपतवारनाशीयों के छिड़काव करने में किया जाता है।

5.5 छिडकाव हेतु नोजल के प्रकार -

1. फ्लैट फेन नोजल-खरपतवारनाशी के छिडकाव हेतु ।
2. कट या फ्लड फेन नोजल -खरपतवारनाशी के छिडकाव हेतु ।
3. होलो नेक फेन नोजल -कीटनाशक दवाईयों के छिडकाव हेतु ।

5.6 छिड़काव यंत्रों के उपयोग में सावधानियाँ:

प्रायः समाचार पत्रों व रेड़ियो में पढ़ने व सुनने में आता है कि रासायनिक दवावों के प्रयोग करते समय व्यक्ति की मृत्यु हो गई। यदि छिड़काव करते समय तथा बाद में उचित सावधानियाँ बरती जाए तो जान-माल की हानि नहीं होगी। खरपतवारनाशी छिड़काव यंत्रों के उपयोग के दौरान सावधानियों को निम्न वर्गों में बांटा जा सकता है।

प्रयोग से पूर्व सावधानियाँ:

- खरपतवारनाशी के उपयोग से पहले उस पर लिखी अंकित अवधि की जांच करें। अवधिपार खरपतवारनाशीं का उपयोग कभी भी न करें क्योंकि इनका असर कम हो जाता है एवं फसल के खरपतवार मरने की सम्भावना भी कम हो जाती है।
- खरपतवारनाशी के डिब्बे पर लिखें निर्देशों को ध्यानपूर्वक पढ़ें व समझें। किसानों की जानकारी के लिए डिब्बे पर बने पैरलेलोग्राम (ऊपर एवं नीचे बने हुए त्रिभुज) से जहर की तीव्रता पता चलता हैं। ऊपर के त्रिभुज में जहर की तीव्रता को शब्दों द्वारा व्यक्त किया जाता है। जबकि निचले त्रिभुज में चार निम्न तरह के रंग भरे होते हैं लाल रंग अत्याधिक, पीला रंग अधिक, नीला रंग मध्यम एवं हरा रंग कम जहरीला होने की सूचना देता है।
- हमेशा निर्देशित मात्रा का ही उपयोग करें। अधिक मात्रा में उपयोग करने से वह फसल को नुकसान पहुंचा सकता है।
- खरपतवारनाशीयों को हमेशा बच्चों, पशुओं की पंहुच से दूर रखें।
- खरपतवारनाशी रसायनों को खाने-पीने की वस्तुओं तथा मरीजों की दवाईयों से दूर रखें। कई बार दोनों पास रखे होने पर पता नहीं चलता तथा भूलवश बड़ा नुकसान हो सकता है।

प्रयोग के दौरान सावधानियाँ:

- बीमार, छोटे बच्चे व अधिक बुजुर्ग व्यक्ति से खरपतवारनाशी का छिड़काव कदापि न करवाएं।
- खरपतवारनाशी मिलाते समय शरीर के किसी कटे भाग में स्पर्श नहीं होना चाहिये।
- खरपतवारनाशी हमेशा खुली जगह पर ही मिलना चाहिये।
- छिड़काव हेतु निर्धारित रसायन मात्रा का पानी में घोल बनाकर स्प्रे करें।
- घोल सदैव साफ बर्तन में बनाएं।
- टंकी में उचित दबाव बनाने लिए उसे तीन चैथाई भाग तक ही भरें।
- छिडकाव पूरे खेत में समान रूप से करें।
- खरपतवारनाशी का छिड़काव करते समय सर पर टोपी, आंखों पर चश्में, मुंह पर मास्क, हाथों में दस्ताने (प्लास्टिक या रबर के), पैरों में बूट, फुल आस्तीन की शर्ट व पैंट, ऐप्रेन पहनना चाहिये।
- पूरी दवाई डालने के बाद भी खाली कन्टेनर को कम से कम तीन बार पानी डालकर स्प्रेयर की टंकी में मिलाना चाहिए।

- दवाई के खाली कन्टेनर को घर वापस न लायें। खाली डिब्बे को खेत में सुरक्षित गहराई पर गाड़ देना चाहिए।
- छिड़काव के दौरान किसी प्रकार का धूम्रपान, तम्बाकू, गुटखा आदि का उपयोग न करें।
- स्प्रे करते वक्त ध्यान रखें कि दवाई के छींटे आस-पास की फसलों या जीव जन्तुओं पर ना जाए।
- कार्य समाप्त होने के बाद साबुन से अच्छे से स्नान करने के बाद ही किसी पदार्थ का सेवन करें तथा पहने गये कपड़ों को साबुन से धो कर सुखा दें।
- छिड़काव करते समय यदि नौजल में कोई कचरा फंस जाए तो उसे मुह से फूंक मारकर कदापि साफ न करें, कोई पिन या बारीक सुई से ही साफ करें।
- छिड़काव करते समय कभी भी पसीने को शर्ट की बांह या दस्ताने से न पौंछे।
- छिड़काव के समय किसी प्रकार की घबराहट, बैचेनी, उल्टी, चक्कर आना, खुजली चलने आदि शिकायत होने पर तुरन्त चिकित्सक से सम्पर्क करें। उसे हवादार और छांया में लिटाकर उसके मुँह पर बंधा कपड़ा हटा दें। डॉक्टर के आने पर उसे खरपतवार दवाई का लेबल व साहित्य पूरा दिखाएं।

प्रयोग के बाद की सावधानियाँ:

- स्प्रेयर की सफाई सुरक्षा किट पहन कर ही करें।
- स्प्रेयर को किसी पानी की नहर, तालाब में साफ न करें।
- सुरक्षा किट की भी सफाई करें तथा ध्यान रहे कि कोई अन्य व्यक्ति उनके हाथ न लगाए।
- छिड़काव के बाद जिस खेत में छिड़काव किया है उसमें बोर्ड लगा देना चाहिए कि रसायन का प्रयोग हुआ है।

एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते हुए सावधानियाँ:

- एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय खरपतवार नाशक दवाई का डिब्बा कस कर बन्द होना चाहिए।
- इन दवाईयों को कभी भी खाने के सामान के साथ लेकर न चलें।
- स्टोर से खेत में जाते वक्त दवाई के डिब्बे कन्धे या पीठ पर लाद कर नहीं ले जाएं।
- खरपतवार नाशक दवाई एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण के समय अगर कपड़ों या शरीर पर गिर जाए तो तुरन्त उसे पानी से साफ करें।

भण्डारण करते समय सावधानियाँ:

- थोक मात्रा में दवाई नहीं खरीदें। केवल उतनी ही दवाई लें जितनी उस मौसम में उपयोग हो सके। कभी भी आवश्यकता से अधिक रसायन लेकर नहीं रखना चाहिए।
- खरपतवार नाशक दवाईयों को बीज, खाने के सामान, पशुओं के खाने, पशुओं की दवाईयों व बच्चों की पहुंच से दूर रखें।
- बिना लेबल की दवाईयों का भण्डारण न करें, उन्हें सुरक्षित नष्ट कर दें।
- इन दवाईयों को खुले हवादार कमरे में रखें परन्तु पानी, आग व सूर्य की रोशनी से बचाकर रखें।

- बची हुई दवाई अपने ही डिब्बे में वापिस डालें।
- रसायनों को इनके डिब्बे में रखना चाहिए। कभी भी टॉनिक आदि की शीशियों में नहीं रखना चाहिए। क्योंकि भूल से कोई उसे टॉनिक समझकर पी सकता है।
- मकान में विशेषकर जिस कमरे में काई सोता हो रसायनों को कभी भी नहीं रखना चाहिए। क्योंकि विषैली गन्ध स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है।

अन्य सावधानियाँ:

- खरपतवार नाशक स्प्रे की हुई फल व सब्जियाँ तोड़ने से पहले जाचं लें कि क्या इन्तजार की अवधि पूरी हो गई है।
- फसल चक्र का व खरपतवार नाशक दवाई के चक्र का अनुसरण करें।
- अच्छी फसल उगाने के लिए काफी मात्रा में गोबर की खाद व रासायनिक खाद का प्रयोग करें ताकि फसल पर दवाई के प्रभाव को कम किया जा सके।
- यदि हो सके तो छिडकाव रसायन की खरीद रसीद, अन्य जानकारियां जैसे नाम आदि कागज या डायरी में नोट कर लेवें।
- छिड़काव करने वाले व्यक्ति की समय-समय पर डॉक्टरी जांच करवाते रहना चाहिए।
- रसायनों का छिडकाव कभी भी बीमार या कमजोर आदमी, बच्चों से, दूध पिलाती हुई व गर्भवती महिलाओं से नहीं करवाना चाहिए।

खरपतवारनाशी का चयन करते समय सावधानियाँ: किसान को खरपतवारनाशी का चयन करने से पहले निम्नलिखित बातों का ध्यान करना चाहिए।

- खरपतवार का प्रकार।
- फसल के जख्म।
- खरपतवार नाशियों की कीमत।
- मौसम का प्रभाव।
- खरपतवार नाशक दवाई खरीदने से पहले अवश्य जान लें किः-

✓ किस खरपतवार को नियन्त्रण करना है।
✓ क्या यह दवाई मिश्रित खरपतवार संख्या के लिए उपयोगी हो सकती है।
✓ क्या यह दवाई ज्यादा खरपतवार को मार सकती है।
✓ इस दवाई का असर कब तक जमीन में रहेगा।
✓ इस दवाई का खरपतवार संख्या-नुकसान का कितना रिश्ता है।
✓ क्या आप दवाई विश्वसनीय लाइसेन्सधारी दुकान से खरीद रहे हैं।
✓ क्या आपने समाप्ति तिथि पढ़ ली है।
✓ क्या आप दवाई असली पैकिंग में खरीद रहे हैं।
✓ कहीं दवाई का डिब्बा पुराना जंग लगा तो नहीं।

रसायन द्वारा खरपतवार नियंत्रण में जरूरी बातें:

- फसल व खरपतवार के प्रकार के आधार पर ही खरपतवानाशियों का चयन करें।
- खरपतवारनाशियों का छिड़काव करते समय सक्रिय तत्व की मात्रा व खरपतवार नियंत्रण की क्रांतिक अवस्था का ध्यान रखें।

- खरपतवारनाशी रसायन की संस्तुत मात्रा को 400-500 लीटर पानी में प्रति हैक्टर की दर से मिलाकर फ्लैटफेन नोजल से छिड़काव करें।
- हमेशा खरपतवारनाशी रसायन के लिए संस्तुत एण्टीडोट का परचा सम्भाल कर रखें।
- उर्वरक निराई-गुड़ाई के बाद देवें, खेत में पर्याप्त नहीं रखें।
- खरपतवारनाशी रसायनों के छिड़काव में फसल चक्र का ध्यान रखें।
- खरपतवारनाशी व पौध संरक्षण रसायनों के उपयोग में अलग-अलग स्प्रेयर का प्रयोग करें।
- कभी भी उर्वरकों व अन्य रसायनों को खरपतवारनाशियों में नहीं मिलाएं।
- खरपतवारनाशी के द्वारा खरपतवारों का नियंत्रण करते समय लाभः लागत अनुपात की गणना करके ही उपयोग करें।

यंत्रो की देखभाल तथा रख-रखाव: सामान्यतः किसान द्वारा देखभाल तथा रख-रखाव में कमी होने के कारण व अज्ञानता वश स्प्रेयर जल्दी खराब हो जाते हैं। ठीक करवाने से धन व समय तथा फसल, सभी का नुकसान काश्तकार को उठाना पड़ता है। यदि काश्तकार निम्न बिन्दुओं का ध्यान समय-समय पर करें तो आर्थिक हानि से बच सकते हैं।

- किसी भी यंत्र को उपयोग में लाने से पूर्व यह देखें कि उनके कल पुर्जों के सभी जोड़ ठीक से कसे हों।
- आपस में रगड़ कर चलने वाले सभी पूर्जों को निर्धारित मात्रा में तेल या ग्रीस दिया जाना चाहिए।
- यंत्रों में लगने वाले पट्टे, बेल्ट, कमानी आदि के कसाव की हर रोज जांच करना चाहिए एवं आवश्यक हो तो समायोजन कर लें, यदि समायोजन की सीमा समाप्त हो गई हो तो पुर्जों को बदलना चाहिए।
- दवा का घोल सदैव साफ पानी में बनाना चाहिए।
- टंकी में दवा का घोल डालतें समय छलनी या महीन सूती कपड़े का प्रयोग करना चाहिए।
- स्प्रेयर को प्रयोग में लाने से पूर्व पम्प, हौज पाइप, बूम, कट ऑफ वाल्व तथा नौजल की टूट-फूट की जाँच कर लेनी चाहिए तथा एक बार सादा पानी डालकर चलाकर देख लेना चाहिए।
- छिड़काव करने से पूर्व नौजल को साफ तथा ढीला कर लेना चाहिए।
- नोन स्लैक्टीव खरपतवार नाशक दवाईयों के लिए अलग से स्प्रेर पम्प इस्तेमाल करें।
- 2.0 प्रतिशत अमोनिया के घोल को टैंक में भरकर रातभर रखें और सुबह इस घोल को धीरे-धीरे हैन्डल चलाते हुए नोजल से बाहर फैंके।
- कृषि यंत्रों को उपयोग करने के बाद छायादार स्थान पर रखना चाहिए।
- छिड़काव पूरा हो जाने के पश्चात कभी भी स्प्रेयर में दवा का घोल नहीं छोड़ना चाहिए।
- स्प्रेयर को यदि लम्बी अवधि के लिए भण्डार में रखना है तो जोड़ों में थोड़ा सा ग्रीस अवश्य लगाना चाहिए।

स्प्रेड्रीफ्ट से बचाव (खरपतवारनाशी स्प्रे का हवा में बहना): खरपतवारनाशी स्प्रे की बूँदे जब निर्धारित लक्ष्य (फसल) से हवा के बहाव के साथ दूर सटे खेतों या फसलों पर पड़ती है तो

खरपतवार नाशी का उपयोग करते समय सावधानी बरतें। यह फसलों एवं जानवरों को भी जख्मी करती है। स्प्रेर ड्रीफ्ट का दूर बहना निम्नलिखित बातों पर निर्भर करता है। अतः इनका अवष्य ध्यान रखे -

- द्रव की बूदों का आकार जितना छोटा होगा उतनी ही हवा की गति के साथ बूंदों का बहाव दूर तक होगा।
- छोटी नोजल का आकार और ज्यादा दबाव ज्यादा छोटी बूंदे पैदा करता है जो आस-पास की फसलों को ज्यादा नुकसान पहुँचाती है।
- तेज हवा में स्प्रे करने से खरपतवारनाशी द्रव की बूंदों का बहाव तेज हो जाता है। जो दूसरे खेतों की फसलों को नुकसान पहुंचाती है।
- स्पे्र करते समय मौसम बिल्कुल शान्त होना चाहिए। सुबह व शाम का समय स्प्रे करने के लिए अति उत्तम होता है।
- स्प्रे टैंक की ऊँचाई अगर ज्यादा होगी तो स्प्रे बहाव भी दूर तक जायेगा।

5.7 सांराश :

वर्तमान कृषि में विभिन्न प्रकार के खरपतवारों द्वारा फसलों को होने वाले नुकसान में वृद्धि हुई है। खरपतवारों द्वारा लगभग 15 प्रतिशत उपज नष्ट हो जाती है। इनसे बचाव के लिए काश्तकार को अनेक खरपतवार नाशको का प्रयोग फसलो में करना पड़ता है । इसलिए खरपतवारनाशी आधुनिक कृषि विज्ञान की परम आवश्यकता हो गई है। वे एक प्रकार के जहर हैं। इनके प्रयोग में विशेष सावधानी रखनी चाहिए। असावधानी और अज्ञानतापूर्वक प्रयोग करने पर प्राणघातक भी सिद्ध हो सकते हैं। उचित प्रकार का छिड़काव यंत्र काम में लेने से इनका प्रयोग अधिक प्रभावी व सुगमता से किया जा सकता है। जिससे खरपतवारनाशी रसायनों की कम मात्रा भी अधिक प्रभावी होती है। अत: फसलों में खरपतवारनाशीयों के छिड़काव के लिए उपयोगी यंत्रों का चयन, रखरखाव तथा सावधानियाँ अत्यंत आवश्यक है।

5.8 बहुचयनात्मक प्रश्न:

1. निम्न में से खरपतवारनाशी है -

(अ) मैलाथियान (ब) एण्डोसल्फान (स) पेराथिआन (द) पेन्डीमेथालीन {द}

2. फसल में उगे खरपतवारो के नियंत्रण में छिडकाव करते है -

(अ) फफूंदनाशी (ब) शाकनाशी (स) पीडकनाशी (द) उपरोक्त सभी {ब}

3. खरपतवारनाशी छिडकाव हेतू स्प्रेयर है -

(अ) नेपसेक स्प्रेरयर (ब) फुट स्प्रेयर (स) बूम स्प्रेयर (द) उपरोक्त सभी {द}

4. खरपतवारनाशी स्प्रेरयर में नोजल लगाया जाता है -

(अ) फ्लैट फेन नोजल (ब) कट नोजल (स) होलो कोन नोजल (द) अ एवं ब दोनो {द}

5. खरपतवारनाशी स्प्रे की बूँदो का हवा में बहाव के साथ दूर सटे खेतों या फसलों पर पड़ना कहलाता है -

(अ) स्प्रे (ब) स्प्रेयर (स) स्प्रेड्रीफ्ट द) उपरोक्त सभी {स}

5.9 सन्दर्भ :

1. मीणा, एस. एस एवं महता, ऐ. के. 2011, कीटनाशक रसायनों के छिड़काव यंत्र एवं उपयोग में सावधानियाँ, राजस्थान खेती प्रताप (10): 31-33.
2. Gupta, O.P., 2002, Modern Weeds Management, Agrobios (India) publishing company limited, Jodhpur.
3. चोपडा, एन. के., चोपडा, एन. के. एवं अटवाल, एस. एस., 2012, खरपतवार नाशी का उपयोग करते समय बरतें सावधानियाँ, विश्व कृषि संचार (12): 15-16.
4. गुप्ता, पंकज, 2011, स्प्रेयर का चुनाव, रखरखाव तथा सावधानियां, विश्व कृषि संचार (03): 54-63.

इकाई 6

फसलों के मुख्य कीट और उनका नियंत्रण

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देष्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 खरीफ फसलों में कीट नियंत्रण

- 6.2.1 धान
- 6.2.2 ज्वार
- 6.2.3 बाजरा
- 6.2.4 छोटे या मोटे या लघु धान्य अन्न की फसलें
- 6.2.5 सोयाबीन
- 6.2.6 तुर या अरहर
- 6.2.7 मूंग
- 6.2.8 उर्द या उड़द
- 6.2.9 लोबिया या चावल
- 6.2.10 अण्डी, अरण्डी या रेंड
- 6.2.11 तिल या अलसी या रामतिल
- 6.2.12 कपास
- 6.2.13 जूट
- 6.2.14 पटुआ या सनई
- 6.2.15 चारे की फसल में कीट - पंतगों के नियंत्रण

6.3 रबी फसलों में कीट नियंत्रण

- 6.3.1 गेहूं
- 6.3.2 जौ
- 6.3.3 चना
- 6.3.4 मटर
- 6.3.5 मसूर
- 6.3.6 तोरिया और सरसों
- 6.3.8 अलसी
- 6.3.9 सूरजमुखी
- 6.3.10 कुसुम
- 6.3.11 बरसीम

6.3.12 लुसर्न या रिजका
6.3.13 तम्बाकू
6.4 सारांश
6.5 बोध प्रश्न
6.6 सदंर्भ सामग्री

6.0 उद्देष्य

इस इकाई को पढ़ने के पष्चात आप इस योग्य हो जाएगें कि -

- फसलों के मुख्य कीट
- कीटों को नियंत्रित करने की विधियां
- कीटनाषक की मात्रा

6.1 प्रस्तावना

आधुनिक खेती में, फसलों की उन्नत जातियाँ, सिंचाई की उचित व्यवस्था तथा खाद एवं उर्वरकों के समुचित प्रबन्ध के साथ - साथ फसलों की कीट पतंगों से रक्षा करना आवश्यक है। कीट पतंगे फसलों में औसत 5-10 प्रतिशत तक उत्पादन को कम कर देते है। इन कीट पतंगों की रोकथाम समय पर अति आवश्यक है । कीट नाशकों की सही मात्रा का ज्ञान होना आवश्यक हैं।

6.2 खरीफ फसलों में कीट नियंत्रण

6.2.1 धान

तालिका -धान के प्रमुख हानिकार कीट एवं उनकी रोकथाम का संक्षिप्त वर्णन

कीड़ा	कीड़े का आक्रमण	कीटनाशक	मात्रा प्रति हेक्टेयर, प्रति बुरकाव या छिड़काव	सहनशील रोधक किस्में
1 भाव की जड़ सूंडी	कीड़े की गिंडार उबले हुए चावल के समान होती है। महीन जड़ों को खाकर नुकसान पहुंचाती है और पौधे पीले पड़ जाते है।	(अ) पूर्णापवार - एल्ड्रिन - 30 ई.सी. या गमा बी.एच. सी. 20 ई.सी. या 10प्रतिशत बिरलेन ग्रेन्यूलस (ब) उपचार - एल्ड्रिन - 30	2-5 लीटर 2-5 लीटर 10 किग्रा 7-5 लीटर 2-5 लीटर 20 किग्रा	

		ई.सी. या गमा बी.एच. सी. 30 ई.सी. या 10 प्रतिशत बिरलेन ग्रेन्यूलस		
2 तना छेदक (i) धारीदार (ii) गुलाबी (iii) पीला (iv) सफेद	कीड़े की गिंडार ही नुकसान पहुंचाती है। फसल की प्रारम्भिक अवस्था में इनके प्रकोप से पौधों का मुख्य तना सूख जाता है। इसे कमंक ीमंतज कहते है तथा कने की अवस्था पर बालियां सुखकर सफेद (White head) दिखाई देने लगती है।	5 प्रतिशत बिरलेन ग्रेन्यूलस 5 प्रतिशत डाइजिनान ग्रेन्यूलस या 5 प्रतिशत लिण्डेन ग्रेन्यूलस या एल्ड्रिन इण्डोसल्फान 35 ई.सी. या फॉस्फेमिडान 100 ई.सी.	20 किग्रा 20 किग्रा 7-50 लीटर 750-1000 मिली 550-500 मिली	रतना, साकेत 4 IR 36
3 खरीब के टिड्ढे	निम्फ और प्रौढ़ दोनों को नुकसान पहुंचाते है। पत्तियां किनारे पर कटी हुई मिलती है।	10 प्रतिशत बी.एच.सी. चूर्ण या मैलाथियन 50 ई.सी.	30 किग्रा 2-5 लीटर	
4 दलीय गिडार	कीड़े और गिंडार सामूहिक रूप से पौधों की पत्तियों को रात में खाकर हानि पहुंचाती है।	10 प्रतिशत बी.एच. चूर्ण या इण्डोसल्फान 35 ई.सी. या	30 किग्रा 2-5 लीटर	
5 हिस्सा	इनका प्रौढ़ एक छोटा व काला भृग है। कीड़े की गिंडार एवं प्रौढ़ दोनों की नुकसान करते है।	फॉस्फेमिडान 50 ई.सी. या इण्डोसल्फान 35 ई.सी. या कारबाराइल 50	30 किग्रा 1-5 लीटर	

		डब्ल्यू. पी.		
6 मधुआ (फुटके)	पौधे की पत्तियों से निम्फ और प्रौढ़ दोनों रस चूस लेते हैं जिससे पौधों की पत्तियां पीली पड़ जाती है।	5 प्रतिशत थमेट ग्रेन्यूलसया 5 प्रतिशत इण्डोसल्फान 35 ई.सी. या	1-50 किग्रा 8-10 एवं 12 किग्रा 8-10 एवं 12 किग्रा	
7 धान का गंधी	प्रौढ़ एवं निम्फ दोनों दूधिया बालियों और पत्तियों से रस चूस लेती है, दाना नहीं पड़ता और सफेद रंग का खोखला दिखाई देता है।	5 प्रतिशत बी.एच. चूर्ण या 10 प्रशित हेप्टाक्लोर चूर्ण	1-5 लीटर 35 किग्रा 15-20 किग्रा	
8 जैसिड	पत्तियों का रस चूसते है पौधा पीला पड़ जाता है।	एल्ड्रिन 30 ई.सी.	2-5 लीटर	

6.2.2 ज्वार

ज्वार की फसल की कीट पतंगो से अत्यधिक क्षति होने की सम्भावना रहती है। अच्छी उपज प्राप्त करने के लिए आरम्भ से ही इनकी रोकथाम करना आवश्यक है। ज्वार को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़ों और उनकी रोकथाम का विवरण नीचे दिया गया है -

1. **तना छेदक -** इसकी गिडारें अथवा सूंडियां छोटे पौधों की गोफ को काट देती है, जिससे गोफ सूख जाती है। इसका प्रभाव बुवाई के एक महीने बाद से आरम्भ होकर भुट्टे आने के समय तक होता है। पौधों की बढ़वार के साथ ही ये तने में सुरंग सी बना लेती हैं और अन्दर ही अन्दर तने के मुलायम हिस्सों को खाती है। तना बेधक के नियंत्रण के लिए फसल के जमने के 10-15 दिन तने के मुलायम हिस्सों को खाती है। तना बेधक के नियंत्रण के लिए फसल के जमने के 10-15 दिन बाद 1.5 लीटर थायोडान (ई.सी.) या 2 किग्रा सेविन घुलनशील चूर्ण को 800 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करना चाहिए। इसके 20 दिन बाद पौधों की गोफ लिण्डेन 1 प्रतिशत या थायोडान या सेविन की दानेदार कीटनाशी दवाई डालनी चाहिए।
2. **तना मक्खी -** यह कीड़ा भी ज्वार पौध अवस्था से ही हानि पहुंचाता है। इसकी गिडारें उगते हुए पौधों की गोफ को काट डालती हैं जिससे शुरू की अवस्था में पौधा सूख जाने के बाद भी कल्ले निकलते हैं पर उनसे भट्टे देर में आते हैं और उनका आकार भी छोटा होता है। इसकी रोकथाम के लिए 10 प्रतिशत थिमेअ या फोरेट कणिकाएँ बुवाई से पूर्व या बुवाई के समय कूंडों में 15 किग्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से डालनी चाहिये। यह रसायन पौधों की जड़ों द्वारा अवशोषित होकर पौधों में पहुंचता है और ऐसे पौधों को खाने के बाद गिडारें मर जाती

हैं तथा मक्खी के बचाव के लिए बीज जमने के 4-5 दिन बाद 1 लीटर मक्टासिस्टाक्स को 500-600 लीटर पानी में मिलाकर एक हेक्टेयर में छिड़कना चाहिए।

3. **मिज -** यह कीड़ा ज्वार में भुट्टा निकलने के समय तक नुकसान पहुंचाता है। इसकी रोकथाम के लिए 10-15 किग्रा प्रति हेक्टेयर के हिसाब से कार्बोरिल 10 प्रतिशत का बुरकाव करना प्रभावकारी सिद्ध हुआ है।

कीट पतंगों की रोकथाम के लिए अंकुरण के एक माहबाद मैलाथियान को छोड़कर किसी भी आरगैनो फॉस्फेट यौगिकों का उपयोग नहीं करना चाहिए। फसल कटने के एक माह पहले किसी भी क्लोरीनेट, हाइड्रोकार्बन जैसे बी.एच.सी., क्लोरोडान, हैक्टाक्लोर व एल्ड्रिन आदि का उपयोग नहीं करना चाहिए।

6.2.3 बाजरा

साधारणतया बाजरे की फसल में कीट पतंगों से अधिक क्षति नहीं पहुंचती। अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिए कीटों की रोकथाम करना आवश्यक है। निम्नलिखित कीट से बाजरे की फसल को हानि पहुंच सक्ती है -

1. **दीमक -** जिस चोत में दीमक लगने का भय हो, उसमें बुवाई के समय 5 प्रतिशत एल्ड्रिन या बी.एच.सी. अथवा 5 प्रतिशत हैप्टाक्लोर 20-25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुआई के समय कूंडों में डालना चाहिए।
2. **तने की मक्खी -** इनकी गिडारें अथवा सूंडियां पौधों की बढ़वार को प्रारम्भिक अवस्था में काट देती है, जिससे पौधा सूख जाता है। इसकी रोकथाम के लिए बुआई के समय 15 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से फोरेट (थिमेट) चूर्ण डालना चाहिए। फोरेट के स्थान पर 25 किग्रा 3 प्रतिशत फ्यूराडान दानेदार को एक हंेक्टेयर खेत में मिलाओं। 1.25 लीटर थायोडान को 800 लीटर में घोलकर प्रति हेक्टेयर प्रभावित फसल पर छिड़कना चाहिए।
3. **तना बेधक -** प्रारम्भ में आक्रमण पत्तियों पर व बाद में गिडार तने को खाती है। इसकी रोकथाम के लिए 0.15प्रतिशत थायोडान का 600-800 लीटर घोल प्रति हेक्टेयर के हिसाब से पौधों पर छिड़काव लाभदायक होता है। 4 प्रतिशत सेविन को 15 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से पौधों की गोफ में डालनाचाहिए।
4. **मिज -** इसका आक्रमण फसल में बालियां आते समय होता है। इसकी रोकथाम के लिए कार्बोरिल 50 प्रतिशत का घुलनशील चूर्ण 3 किग्रा के हिसाब से 800 लीटर पानी में मिलाकर बालियों पर छिड़कना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि फसल पर पत्तियों को खाने वाले कीटों पर आक्रमण हो तो 10 प्रतिशतबी.एच.सी. चूर्ण को 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुरकना चाहिए अथवा 800 लीटर पानी में 3 किग्रा (50 प्रतिशत डब्ल्यू.पी.) को प्रति हेक्टेयर छिड़कना चाहिए अथवा प्रतिशत मैलाथियान को 15 किग्रा/हेक्टेयर बुरकना चाहिए।

6.2.4 छोटे या मोटे या लघु धान्य अन्न की फसलें

ठस फसल को विशेषतया कोई कीट या बीमारी नहीं लगती, कभी-कभी कंडुआ या गेरूई का प्रकोप देखा गया है। तना मक्खी का प्रकोप भी कभी-कभी हो जाता है। इसके लिए 0.15 प्रतिशत थायोडाल के घोल का छिड़काव करना चाहिए। कंडुआ के लिए बुआई के समय बीज को सेरेसान 2.5 ग्राम/किग्रा बीज की दर से उपचारित करें। गेरूई के लिए 0.2 प्रतिशत डाइथेन एम.45 का छिड़काव करें।

6.2.5 सोयाबीन

1 **लीफ माइनर -** यह एक छोटा काले सिर वाला कीट है जिसका कैटर पिलर गिडार हरे रंग का होता है। इसकी रोकथाम केलिए बी.एच.सी. (5 प्रतिशत) की धूल 20 से 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुरकना चाहिए।

2 **तनाबोधक बीटिल** - यह बीटिल तने में छेद कर देती है और पौधों को लगभग नष्ट कर देती है। इसकी रोकथाम के लिए 5 प्रतिशत बी.एच.सी. की धूलि 15 से 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से डालना चाहिए। भारी प्रकोप होने पर मृदा से थाइमेट 10 प्रतिशत का दानेदार चूर्ण 20 किग्रा या डाइसिस्टान 5 प्रतिशत दानेदार चूर्ण 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर मृदा में मिला देना चाहिए।

3 **बिहार की रोमिल सूंडी -** यह एक प्रकार की गिडार होती है। जिसके शरीर पर पीले रोएं होते हैं। इनका आक्रमण फसल पर कई बार हो सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में ये समूह में रहते हैं और पत्तियों को खाते हैं। इसके नियंत्रण के लिए खरपतवारों को नष्ट करना आवश्यक है क्योंकि प्रारम्भिक अवस्था में ये खरपतवार पर पनपते हैं। खेत के चारों तरफ से अनावश्यक खरपतवार हटा देने चाहिए। छोटी अवस्था में सुबह के समय में जब पत्तियां कुछ नम हो, 10 प्रतिशत बी.एच.सी. या 20 प्रतिशत फोलडान धूलि 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़कना चाहिए और अगर कीट का प्रकोप बढ़ गया है तो थायोडान (इन्डोसल्फान 35 ई.सी.) की 1.25 लीटर मात्रा को 1000 लीटर परनी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़कना चाहिए। एक बाल्टी घोल में एक चम्मच सर्फ भी घोल लेना चाहिए।

4 **सफेद मक्खी -** ये मक्खियां विषणु रोग फैलाती है। इसकी रोकथाम के लिए 600 मिलीलीटर एकेओन 25 ई.सी. या मैटासिस्टोन 25 ई.सी. को 500 से 600 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

5 **एफिड -** ये फरवरी में अन्तिम सप्ताह या मार्च के शुरू में दिखाई देते हैं और वयस्क दोनों व पत्तियों के रस को चूसते हैं। ये बहुत छोटे काले रंग के होते हैं इनके शरीर पर पंख भी होते हैं। इसकी रोकथाम के लिए एकेटिन का छिड़काव करना चाहिए जैसा कि ऊपर दिया गया है। अगर प्रकोप अधिक हो तो मैलाथियान 50 ई.सी. 500 मिलीलीटर को 800 से 900 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़कना चाहिए। 0.5 लीटर मैटासिस्टाक्स 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़का जा सकता है।

6 **सोयाबीन मैगेट -** उगते हुए बीजों के बीजपत्र को खाते हैं, अतः अंकुरण नहीं हो पाता। नम मृदा में अधिक हानि पहुंचाता है। 5 प्रतिशत क्लोरेडेन या एल्डेªक्स 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर से बुरकना चाहिए।

थायोडान 35 (इमल्सीकरण द्रव) मैटासिस्टाक्स 25 (इमल्सीकरण द्रव) के मिश्रण (1 मिली. थायोडान 1 मिली मैटासिस्टाक्स और 1 लीटर पानी) का छिड़काव, जो पीले मोजेक रोग की रोकथाम के लिए भी उतम है, का छिड़काव सभी प्रकार कीट पतंगों की रोकथाम के के लिए उतम है।

6.2.6 तुर या अरहर

1 **तूर या प्लूम मौथ -** इस कीट का कैटरपिलर हरे रंग का होता है। शरीर पर बालों के गुच्छे पाए जाते हैं। यह ठण्डे मौसम में दिखाई देते हैं। ये गिडार 10-15 मिमी. लम्बे होते हैं।
खड़ी फसल में 0.15 प्रतिशत इण्डोसल्फान (थायोडान) 35 ई.सी. का 1000 ली. घोल के प्रति हेक्टेयर छिड़कना चाहिए। इसकी रोकथाम के लिए 10 प्रतिशत बी.एच.सी. की धूल 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से डालनी चाहिए। इसके अलावा एल्ड्रिन की धूलि भी लाभकारी रहती है।

2 **फली बेधक -** यह फली के अन्दर बढ़ने वाले बीजों को खाती है और कैटरपिलर की लम्बाई 20-25 मिमी. होती है। यह रंग में कुछ हरियाली लिए हुए काले पीले रंग का होता है। इसकी रोकथाम के लिए उपरोक्त मिश्रण के अतिरिक्त 1.50 लीटर थायोडान (इण्डोसल्फान 35 ई.सी.) का 800 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काच करना चाहिए। दूसरा छिड़काव आवश्यकतानुसार 15 दिन बाद करें।

3 **फली बेधक मक्खी -** इस मक्खी का लारवा मुख्य रूप से हानिकारक होता है और फलियों में बढ़ते हुए दानों को खाते हैं।
इण्डोसल्फान 35 ई.सी. 0.15 प्रतिशत के घोल को 800 लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से 10-15 दिन के अन्तर से फल आने तक छिड़कते रहना चाहिए।

4 **बीटिल -** यह साधारणतया ढोरेके नाम से जाना जाता है और यह भण्डार में दानों को खा जाता है। इसकी रोकथाम के लिए मेलाथियान धूलि 25 प्रतिशत या डी.डी.टी. 10 प्रतिशत धूलि 175 ग्राम प्रति कु. भण्डार की गई अरहर में डालनी चाहिए। इसके अतिरिक्त फोस्टोक्सीन की 3-5 गोलियां प्रति कु. अरहर के भण्डारित बीजों में रखनी चाहिए।

इसके अतिरिक्त इस फसल में पत्ती लपेटने वाला कीट भी सितम्बर में आक्रमण कर सकता है। इसके लिए 1.5 ली. इण्डोसल्फान 35 ई.सी. को 1000 ली. पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

6.2.7 मूंग

इसमें भी लगभग सभी कीट जो दूसरी फलीदार फसलों में लगते हैं, क्षति पहुंचाते हैं। जैसे बिहार हेसरी कैटरपिलर, सेमीलूपर, तम्बाकू का कैटरपिलर और एफिड आदि। इन सभी कीट पतंगों के

नियंत्रण के लिए 0.15 प्रतिशत थायोडीन का छिड़काव करना लाभप्रद है। बी.एच.सी. 10 प्रतिशत के 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुरकने पर भी कीट पतंगों से फसल को बचा सकते हैं। विस्तृत अध्ययन के लिए अरहर व सोयाबीन के कीट पतंगे एवं उनकी रोकथाम का अध्ययन कीजिए।

6.2.8 उर्द या उड़द

बहुत से दलहली कीट इस फसल को क्षति पहुंचाते हैं जिनमें से मुख्य मुख्य नीचे दिए गए है-

1 **झींगुर व भृंग डिम्बक -** ये अंकुरण के समय ही भूमि से निकले हुए अंकुर को खा जाते हैं। इन्हें रोकने के लिए खेत में बुआई से पूर्व 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से एल्ड्रिन या हैप्टाक्लोर धूलि 5 प्रतिशत को बुरका जाता है।

इसके अतिरिक्त बिहार हेयरी कैटपिलर और तम्बाकू का कैटरपिलर तथा एफिड भी इसकी फसल को नुकसान पहुंचाते हैं। इसके आक्रमण को रोकने के लिए थायोडान (इन्डोसल्फान 35 ई.सी.) का 0.15 प्रतिशतका 800 लीटर घोल प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़कना संतोषजनक रहता है।

6.2.9 लोबिया या चावल

1 **फिली बीटिल -** यह कीट ग्रीष्मकालीन फसल के अंकुरण के पश्चात अपना प्रभाव दिखाता है। पत्तियों पर छेद होकर पौधा सूख जाता है। इसकी रोकथाम के लिए बुआई से पूर्व 10 प्रतिशत कणिकाओं के रूप में 20 किग्रा थिमेट प्रति हेक्टेयर प्रयोग करना चाहिए।

2 **ब्रूकिड -** यह कीट भण्डार-गृह में लोबिया के दानों को हानि पहुंचाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए कीटनाशक दवाओं का धूरूमण तथा भण्डार गृह की सफाई आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त लगभग वे सभी कीट जैसे एफिड व गिंडार (हैयरी कैटरपिलर) आदि जो मूंग और उर्द को क्षति पहुंचाते हैं, लोबिया के लिए भी हानिकारक है। इसकी रोकथाम का वर्णन मूंग और उर्द में किया गया है।

6.2.10 अण्डी, अरण्डी या रेंड

1 **बिहार की रोएंदार सूंडी या गिंडार -** यह कीट लगभग सारे भारतवर्ष में फैला हुआ है। इसका प्रकोप सोयाबीन, तिल, अरण्डी, लोबिया, शकरकन्द और मूंगफली आदि फसलों पर होता है। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन मूंगफली के अध्याय में दिया गया है। अरण्डी पर इसका प्रकोप अगसत से नवम्बर तक होता है। इसके उपचार के लिए 0.04 प्रतिशत पैराथियान (720 मिली.) या नुवान (1200 मिली.) 800 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करना चाहिए अथवा 0.15 प्रतिशत इण्डोसल्फान (35 ई.सी) का 800 लीटर घोल प्रति हेक्टेयर छिड़कें।

2 **अरण्डी की सेमीलूपर -** इसके मौथ के पंखों का अगला किनारा गहरे रंग का होता है। इसकी सूंडी पत्तियों की निचली सतह को खाती है। ये अधिकतर जुलाई से नवम्बर तक अधिक क्रियाशील होती है। वर्षभर में इनकी दो तीन पीढ़ियां हो जाती है। इसकी रोकथाम के लिए

0.15 प्रतिशत थायोडान या पैराथियोन या 0.3 डाईमाइक्रोन 200 मिली. 900 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर का छिड़काव अधिक प्रभावशाली रहता है।

3 **अरण्डी या बीज छेदक -** इसका मौथ चमकदार पीले रंग का होता है। कुल काले धब्बे इसके पंखों पर पाए जाते हैं। इसकी सूंडी 2 सेमी के लगभग गुलाबी रंग की होती है।

इसकी सूंडी अण्डी के कैप्सूल (फलों) में छेद करके अन्दर घूस जाती है और दानों को खाती है। यह सितम्बर और फरवरी में अधिक क्रियाशील होता है। इसकी 4-5 पीढ़ी एक वर्ष में होती है। इसकी रोकथाम के लिए थायोडान का छिड़काव 1500 मिली. की दर से 900 लीटर पानी में घोलकर एक हेक्टेयर में करना चाहिए। इसके दो छिड़काव 15 दिन के अन्दर से होने चाहिए।

6.2.11 तिल या अलसी या रामतिल

1 **तिल लीफ रोलर -** यह पतंगा लाल भूरे रंग का होता है और इसकी सूंडी (गिडार) हरे रंग की होती है जिसके शरीर पर काले धब्बे पाए जाते हैं। यह सूंडी पत्ती और फलियों को खाती है। इसकी सूंडी सितम्बर से नवम्बर तक अधिक आक्रमण करती है।

इसकी रोकथाम केलिए डाइमाक्रोन 300 मिली. को 900 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर या 0.4 प्रतिशत पैराथिआन का घोल छिड़कना चाहिए।

2 **सैसेमम गाल फ्लाई -** यह अधिकतर बिहार और महाराष्ट्र में पाया जाता है। इसके मैगअ अण्डे से निकलकर फूल के भागों को खाते हैं। इसी के कैप्सूल में उनका विकास होता है। इसकी रोकथाम के लिए जो पौधे इस कीट द्वारा प्रभावित है, उन्हें उखाड़कर जला देना चाहिए। कुछ परजीवी जैसे Mermis sp. और Apanteles sp. जो इनके लारवा को खा जाते हैं। अतः इन्हें पौधों पर छोड़ा जा सकता है।

3 **तिल का हरा तेला जैसिडा -** पत्तों का रस चूसते हैं तथा रोजेट रोग को भी फैलाते है। कीट के अधिक प्रकोप होने पर पत्तियों सूखकर गिर जाती है। इसकी रोकथाम के लिए 0.05 प्रतिशत का इण्डोसल्फान के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

4 **बिहार की रोएंदार सूंडी या गिंडार या कमला -** सूंडी पत्तियों को खाती है। 0.15 प्रतिशत इण्डोसल्फान 35 ई.सी. के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

6.2.12 कपास

1 **कपास और गुलाबी कीड़ा -** कपास के साथ इसकी सूंडी गोदाम तक पहुंचती है। और बिनौलों को खाती है। इससे रेशा भी खराब होता है। कीड़े गूलर में घुसने पर सुराख छोटा होता है, धब्बा सा नजर आता है।सुराख में यह कीड़ा मैला छोड़कर बन्द कर देता है, वर्षा में इसमें पानी चला जाता है व गूलर सड़ जाता है। आधी खिली कोडियां भी प्राप्त होती है। मैटासिस्टाक्स 1.5 लीटर/हेक्टेयर का प्रयोग 15-15 दिन के अन्तर पर करें या 1 लीटर रोगोर या डाइमक्रोन या 0.5 लीटर न्यूवाक्रान 1000 लीटर पानी में घोलकर खुले आकाश में छिड़काव करें। वर्षा होने से 5-6 घंटे पहले छिड़काव होने से दवाई पौधों द्वारा सोख ली जाती है। इसकी रोकथाम के लिए मई जून करना चाहिए या 450 ग्रा. मिथाइल ब्रोमाइड का धूमन

प्रति हजार घन फुट स्थान में करना। थायोडान 5 प्रतिशत, सेविन 10 प्रतिशत या सेविथियोन 5 प्रतिशत 20-25 किग्रा/हेक्टेयर प्रयोग करें। खेत में पत्तियां, खरपतवार व भूमि पर पड़े गूलर नष्ट कर दें।

2 **भूरी सूंडी -** फसल के उगते ही पत्तियों पर इसका आक्रमण होता है। 25-35 किग्रा बी.एच.सी. का चूर्ण प्रति हेक्टेयर बुरकना चाहिए।

3 **कपास का चितीदार कीड़ा -** यह कीड़ा गूलर को अन्दर से खोखला कर देता है। गूलर टूट-टूट कर गिरने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 0.15 प्रतिशत थायोडान या 0.15 प्रतिशत मैलाथियान (1000 लीटर/हेक्टेयर) का घोल छिड़कना लाभदायक है। 25-30 किग्रा बी.एच.सी. का चूर्ण प्रति हेक्टेयर बुरकना भी लाभदायक है।

4 **कपास की पत्ती लपेटने वाला कीड़ा -** इस कीड़े की सूंडियां (गिडार) पत्तियों को लपेटकर खोल सा बना लेती है और अन्दर से इन्हें खाती है। इसकी रोकथाम के लिए 0.5 प्रतिशत बी.ए.सी. काया 0.15 प्रतिशत इण्डोसल्फान (थायोडान) का 1000 लीटर घोल प्रति हे. छिड़कना लाभदायक है। शरद ऋतु में जुताई करने से खेत में पाई जाने वाली सूंडियां निष्क्रिय होती है। फोलिथियान का प्रयोग भी इसकी रोकथाम के लिए करते हैं।

नोसिल या मोनो क्रोटोफोस 40 - कपास के गुलाबी कीडे, पत्ते को चूसने वाले कीट व पत्तों को चबाने वाले कीट पतंगों को नष्ट करत है। बिनौलों को बचाने से 75 प्रतिशत तक कीट पतंगों का नियंत्रण होता है। कपास की गुलाबी कीड़ा कम हेता है। बुआई के पहले बीजों को धूमन एल्यूमिनियम फास्फाइड से करने पर खेत तक कीट पतंगों के पहुंचने का स्रोत कम होता है। चुनाई समाप्त करते ही खेत की जुताई करें व खेतों से फसल के अवशेष नष्ट करें। इस प्रकार आगे वाली फसल पर कीट पतंगों का प्रकोप कम होता है।

केन्द्रीय कपास अनुसंधान संस्थान सिरसा स्थित क्षेत्रीय केन्द्र के वैज्ञानिक ने अमेरिकन सूंडी की रोकथाम के लिए न्यूक्लियर पोली हैडरोसिस वायरस (एन.पी.पी.) नामक जैविक कीटनाशक विकसित करके उसका सफल परीक्षण भी कर दिया है। इस महत्वपूर्ण उपलब्धि से हरियाणा, पंजाब, तथा राजस्थान में कपास की उत्पादकता में भारी वृद्धि होने की सम्भावना है।

6.2.13 जूट -

जूट की फसल को हानि पहुंचाने वाले कीटों में जुट का कुबड़ा, रोएंदार गिंडार, जूट का सूंडीदार घुन और नील का गिंडार आदि है जो फसल को भारी हानि पहुंचाते है। इसका वर्णन नीचे दिया गया है -

1 **जूट का कुबड़ा कीड़ा या जुट का सेमीलूपर -** यह कीट जूट उगाने वाले सभी क्षेत्रों में पाया जाता है और जून में दिखाई देता है। अगस्त तक देखने को मिलता है। फसल तीन फुट के लगभग होने पर यह कीट आक्रमण करता है और कोमल पत्तियों को खा जाता है। इसके प्रभाव से पौधे की बगल में शाखाएं निकल आती है और पौधा झाड़ी के आकार का हो जाता है। इससे रेशे कीउपज घट जाती है। इसकी रोकथाम के लिए 0.15 प्रतिशत थायोडान

(इण्डोसल्फान) 35 ई.सी. का छिड़काव बहुत लाभदायक है। इसके अतिरिक्त 0.1 प्रतिशत न्यूवाक्रान 40 ई.सी. के घोल का छिड़काव भी काफी प्रभावशाली रहता है।

2 **बिहार की बालदार सूंडी -** यह कीट सभी जूट क्षेत्रों में पाया जाता है और फसल को पकती अवस्था में क्षति पहुंचाता है। रेशे और पत्तियों को यह खा जाता है। इसकी रोकथाम जिन पत्तियों पर यह हो उन्हें तोड़कर मिट्टी के तेल मिले पानी में डुबोने से की जा सकती है। इसके अतिरिक्त 0.5 प्रतिशत पैराथीआन या इण्डोसल्फान 35 ई.सी. के घोल का छिड़काव भी संतोषजनक परिणाम देता है।

3 **जूट केतने की घुन -** यह कीट सभी जूट उत्पादक प्रदेशों में मिलता है। इस कीट के ग्रब पत्तियों को खाते हैं और काले धब्बे बना देते हैं। इसके कारण इसकी उपज कम हो जाती है। इसकी रोकथाम के लिए 0.04 प्रतिशत थायोडान के तीन छिड़काव 20-20 दिन के अन्तर सेकरने चाहिए।

4 **जूट का मिलीबग -** इस कीट के निम्फ और प्रौढ़ पौधे के शीर्ष में बहुत भयंकर कीट है। इसकी रेाकथाम के लिए डाईजजीन का 0.04 प्रतिशत घोल प्रथम लक्षण देखते ही छिड़क देना चाहिए।

6.2.14 पटुआ या सनई

1 **सनई का मोथ -** यह पत्तियों को खाता है। इसके ऊपर लाल, काले, और सफेद निशान होते हैं। यह कैप्सूल में छेद करके अन्दर घुस जाता है। मौथ के पंखों पर सफेद, लाल व काले चिन्ह मिलते है। पत्तियों और तनों पर अपने अण्डे देता है। इसकी सूंडी फसल को क्षति पहुंचाती है। इससे बचने के लिए अण्डों और सूडियों को चुनकर बाहर डालकर नष्ट कर देना चाहिए या 5 प्रतिशत बी.एच.सी. धूल 12-20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बुरकनी चाहिए या 0.15 प्रतिशत इण्डोसल्फान (35 ई.सी.) के घोल का छिड़काव करें।

2 **तना छेदक -** यह कीट पौधे के उपरोक्त भाग में छेद करके पौधो को क्षति पहुंचाता है। इसकी रोकथाम के लिए 5 प्रतिशत बी.एच.सी. की धूल लाभप्रद रहती है या 0.04 प्रतिशत डायजिनान के घोल का छिड़काव करें।

3 **लाल रोएंदार सूंडी -** यह लाल बालों वाली सूंडी पत्तियों को खाती है। यह सूंडी अंकुरित बीजाकुरों को भी खा जाती है और भूमि के अन्दर ही इसकी प्यूपा अवस्था पूरी होती है। इसके मौथ के पंखों पर काले धब्बे होते है। इसके अण्डे भी भूमि में ही पाए जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए मौथ को रोशनी द्वारा आकर्षित करके, पकड़कर नष्ट कर देना चाहिए 10 प्रतिशत बी.एच.सी. की धूल 25-30 किग्रा/हे. की दर से बुरकना चाहिए या 0.15 प्रतिशत इण्डोसल्फान के घोल का छिड़काव करें।

6.2.15 चारे की फसल में कीट - पंतगों के नियंत्रण

सभी प्रकार के कीट पंतगे (गिडार सूंडी/कमला/कैटरपीलर),तना का कुतरा, तना मक्खी व चेंपा (माहू-एफिड) आदि के लिए 0.05 प्रतिशत मेलाथियान के घोल का छिड़काव करें। छिड़काव के 15-20 दिन बाद तक चारा पशुओं को न खिलाएं।

1 खड़ी फसल में अगर कोई कीटनाशी दवाई छिड़की गई हो तो दवाई छिड़कने के 20-25 दिन बाद तक इस फसल को काटकर पशुओं को नहीं खिलाना चाहिए ताकि दवाई का कोई हानिकारक प्रभाव पशु पर न होने पाए।

2 चारे की फसलों में कीट पतंगों के नियंत्रण के लिए क्लोरिनेटिक हाइड्रोकार्बन कीटनाशक रसायन, जैसे डी.टी.टी., बी.एच.सी., हैप्टाक्लोर, एल्ड्रीन, डाइएल्ड्रीन व क्लोरेडन आदि का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि ये रसायन, मृदा से पौधों तथा पशुओं की ऊतियों में स्थिर होते हैं तथा रक्त श्रृंखला में इक्ट्ठे होते हैं। उदाहरण के लिए डी.डी.टी. व बी.एच.सी. पशुओं के वसा ऊतियों में एकत्रित होते हैं तथा यहां से रक्त व दूध में धीरे-धीरे पहुंचते रहते हैं और इस प्रकार मांस व दूध के द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं। इस प्रकार हमारे शरीर में अव्यवस्था पैदा करते हैं। सुरक्षित व प्रभावयुक्त नियंत्रण के लिए अग्रलिखित उपाय करने चाहिए ।

6.3 रबी फसलों में कीट नियंत्रण

6.3.1 गेहूं

1 **दीमक -** यह बड़ी हानिकारक है और जमीन में सुरंग बनाकर रहती है तथा पौधों की जड़ों को खाती है। इसकी रोकथाम के लिए एल्ड्रिन 5 प्रतिशत धूलि या हैप्टाक्लोर की 5 प्रतिशत धूलि या क्लोरोडेन की 5 प्रतिशत धूलि 20 से 30 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से बोने से पहले कूंडों में डालनी चाहिए।

2 **तना बेधक -** यह गेहूं का मुख्य हानिकारक कीट है। इसका मौथ पत्तियों पर अण्डे देता है। अण्डों से निकलने वाले कैटरपिलर ने में घुसकर उसे काटने लगते हैं। इसकी रोकथाम के लिये 0.04 प्रतिशत फालीडोन का छिड़काव (400 मिली में 1000 ली. पानी) करना चाहिए। एच.डी. 2189, डब्ल्यू.एच. 283, एच.यू.एम. 234 गेहूं की किस्में तना बेधक के सहनशील हैं।

3 **गेहूं का एफिड -** यह कीट जब पौधे की बालियों में दाने आते हैं तो उसके रस को चूसता है और पत्तियों के रस को भी चूसता है। इसमें पौधा पीला तथा हल्के हो जाते हैं। इसकी रोकथाम के लिये 0.02 प्रतिशत फालीडोन का छिड़काव करना चाहिए। इसमें बी.एच.सी. की धूलि भी लाभदायक रहती है।

4 **टिड्डा -** यह जमते हुए बीजांकुरों को खाता है और उसके बाद यह पत्ती को खाने लगता है। यह पौधों की सतह से ही खाने लगता है। इसकी रोकथाम के लिये बी.एचसी. 5 प्रतिशत की धूलि 25 किग्रा/हे. की दर से डालनी चाहिए।

5 **कटवोर्म या सैनिक कीट -** इसमें लारवा (सूंडी) भूमि की सतह से पौधों के तने को काटता है। यह कभी कभी बड़ा भी भंयकर आक्रमण करता है जिससे फसल को काफी नुकसान पहुंच जाता है। इसकी रोकथाम के लिए एल्ड्रिन 5 प्रतिशत धूलि उपचार के लिए 25 किग्रा/हे. की दर से डालनी चाहिए या सुबह के समय 5 प्रतिशत धूलि हैप्टाक्लोर डालनी चाहिए।

6.3.2 जौ

1 **दीमक -** यह फसलों की जड़ों को खाती है और सुरंग बनाकर भूमि में रहती हैं। इसका विस्तार से वर्णन गेहूं के अध्ययन में किया गया है।

2 **कट वोम्र्स -** इसका भी विस्तार से वर्णन गेहूं के अध्याय में दिया है।

3 माहू - पिछले कई वर्षों से जौ की बौनी किस्मों पर माहू का प्रकोप होने लगा है। ये कीट कोमल पत्तियों की सतह से रस चूसने के अलावा एक चिपचिपा पदार्थ भी छोड़ते हैं जिस पर काली फफूंद फैल जाती है। इसके नियंत्रण के लिए फसल पर एक लीटर मेआसिस्टाक्स 25 ई.सी. को 1000 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

6.3.3 चना

1 **कुतरा -** यह चने का बड़ा भंयकर कीट है। यह रबी की सभी दाल वाली फसलों को हानि पहुंचाता है। यह पौधे के तने को भूमि के पास से खाता है और पौधे पर चढ़कर पत्तियों को भी हानि पहुंचाता है। इसकी रोकथाम के लिए बुआई से पूर्व खेत में 1.3 प्रतिशत चूर्ण की 30 किग्रा. अथवा सेवीडाल दानेदार 25 किग्रा/हे. की दर से मिट्टी में मिलाएं।

2 **चने की फली बेधक -** इसकी गिंडार या सूंडी या कमला या इल्ली चने की फलियों में छेद करके दाने को खा जाती है।

रोकथाम के उपाय -

1 फसल के पास प्रकाश प्रपंच की मदद से प्रौढ़ कीटों को एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए।

2 अधिक प्रकोप होने पर कीटनाशी रसायन जैसे इण्डोसल्फान 35 ई.सी. 1.25 ली. क्वोनालफास 25 ई.सी. 1.25 ली. साइपरयोथ्रन 10 ई.सी. 700 मि.ली. मात्रा को 600 से 800 लीटर पानी में घोल बनाकर एक हेक्टेयर फसल पर जब 20 से 25 प्रतिशत पौधों पर फूल आने लगे तो छिड़काव करना चाहिए। पहले छिड़काव के 15 दिन बाद दूसरा छिड़काव भी करें।

3 यदि किसी कारण से छिड़काव करना सम्भव न हो तो निम्नलिखित कीटनाशक रसायनों में से किसी एक को संस्तुत मात्रा में लेकर समान रूप से उपयोग (बुरकाव) करके रोकथाम की जा सकती है -

1 कार्बारिल 10 प्र.श. धूल 20-25 किग्रा/हे.

3 मैलाथियान 5 प्र.श. धूल 20-25 किग्रा/हे.

4 फेन्थोएट 2 प्र.श. धूल 20-25 किग्रा/हे.

5 मिथाइल पैराथियान 2 प्र.श. धूल 20-25 किग्रा/हे.

6 इण्डोसल्फान 4 प्र.श. धूल 20-25 किग्रा/हे.

7 क्वीनालफास 1.5 प्र.श. धूल 20-25 किग्रा/हे.

उपरोक्त रूप से उपचारित फसल पर दूसरे हानिकारक कीटों जैसे अर्द्धकुण्डल या माहू का प्रकोप भी नहीं होगा।

6.3.4 मटर

मटर को नुकसान पहुंचाने वाले कीड़ों में तना छेदक, राएंदार गिंडार तथा तम्बाकू वाला गिंडार मुख्य हैं। इसके अलावा फसल को लीफ माइनर तथा एफिड (माहू) भी काफी नुकसान पहुंचाते हैं। तना छेदक से रोकथाम करने के लिए बोने के समय 30 किग्रा फ्यूराडान या 10 किग्रा थीमेट ग्रेन्यूल्स का प्रयोग करें। इन्हें बीज बोने सेपहले मिट्टी में मिला देना चाहिए। पत्ती खाने वाले गिंडारों से रोकथाम करने के लिए 1.25 लीटर थायोडोन (35 ई.सी.) का 1000 ली. पानी में घोल बनाकर एक हेक्टेयर में छिड़क दें।

फल छेदक कीड़े की रोकथाम - फसल पर 0.25 प्रतिशत वाले कार्बोरिल या 0.05 प्रतिशत वाले इण्डोसल्फान का छिड़काव करके की जा सकती है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि बिक्री के लिए फलियाँ, उपचार के कम से कम 10 दिन बाद ही तोड़ी जाएं। एफिड और लीफ माइनर से फसल को बचाने के लिए 0.05 प्रतिशत वाले लिण्डेन या 0.05 प्रतिशत वाले इण्डोसल्फान का छिड़काव करें। यदि कीड़ों का प्रकोप दोबारा दिखाई पड़े तो यह छिड़काव दोहराया जा सकता है। 2 प्रतिशत फोरेट में बीज का उपचार करने पर, बुवाई के 40 दिन बाद तक फसल, लीफ माइनर के आक्रमण से बच जाती है।

6.3.5 मसूर

मसूर की फसल में लगभग सभी कीट जो कि रबी दलहन की फसलों पर पाए जाते हैं, लगते हैं। इनमें से मुख्य रूप से कटवोर्म, एफिड और मटर के फली बेधक इसे हानि पहुंचाते हैं। इसकी रोकथाम चने व मटर के कीटों की रोकथाम की तरह ही करते हैं।

1. **माहू कीट की पहचान -** यह कीट समूह में पत्तियों तथा पौधे के कोमल भागों में रस चूसकर क्षति पहुंचाता है।

उपचार - इसकी रोकथाम हेतु निम्नलिखित रसायनों में से किसी एक रसायन को 600-800 लीटर पानी में घोलकर प्रति हेक्टेयर छिड़काव करें।

1 मिथाइल-ओ-डिमेटान 25 ई.सी. 1.0 लीटर

2 डाइमिथोएट 30 ई.सी. 1.0 लीटर

3 इण्डोसल्फान 35 ई.सी. 1.25 लीटर

4 क्लोरपायरीफास 20 ई.सी. 750 मिलीलीटर

5 क्यूनालफास 25 ई.सी. 1.0 लीटर

6 मेलाथियान 50 ई.सी. 2.0 लीटर

7 डायजिनान 20 ई.सी. 1.25 लीटर

8 फेनिट्रोथियान 50 ई.सी. 1.0 मिलीलीटर

9 मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. 750 मिलीलीटर

10 कार्बराइल 10 प्रतिशत चूर्ण 25.00 किग्रा।

11 कार्बराइल 50 प्रतिशत घुलनशील चूर्ण 1.5 किग्रा

12 फारमेथियान 25 ई.सी. 1.00 लीटर

2. **फलीछेदक की पहचान -** फलियों में छेद करके दानों को नष्ट करता है।

उपचार - मटर के फलीछेदक की भांति उपचार करें।

पत्तियां खाने वाले गिंडार तथा फली खाने वाले कीटों को नष्ट करने के लिए थायोडान (35 ई.सी.) का 0.15 प्रतिशत का प्रतिशत 1000 लीटर घोल प्रति हेक्टेयर छिड़क देना चाहिए।

6.3.6 तोरिया और सरसों

1. **मस्टर्ड या फ्लाई (आरा मक्खी)** छोअे पौधे के ऊपर काली गिंडार का आक्रमण काफी होता है। ये कीड़े पौधों की पत्तियों को खाकर पूरे पौधे को नष्ट कर देते हैं। जैसे जैसे पौधे बड़े होते हैं, इस कीट का प्रभाव कम हो जाता है।

आरा मक्खी कीट की पहचान - इसकी गिंडारें सरसों कुल की सभी फसलों को हानि पहुंचाती हैं गिडारें काले रंग की होती हैं जो पत्तियों को बहुत तेजी से किनारों में अथवा विभिन्न आकार के छेद बनाती हुई खाती हैं जिससे पत्तियां बिल्कुल छलनी हो जाती हैं।

रोकथाम - निम्नलिखित किसी कीटनाशक रसायन का प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें -

1 मेलाथियान 5 प्रतिशत चूर्ण 20-25 किग्रा।

2 डाइक्लोरवास डी.डी.वी.पी. 76 एस.एल. 0.5 लीटर

3 इण्डोसल्फान 35 ई.सी. 1.25 लीटर

4 मेलाथियान 50 ई.सी. 1.5 लीटर

5 इण्डोसल्फान 4 प्रतिशत धूल 20 किग्रा

6 क्यूनालफास 1.5 प्रतिशत धूल 20 किग्रा

7 मेलाथियान 50 ई.सी. 2.0 लीटर

8 मिथाइल पैराथियान 2.0 प्रतिशत धूल 20 किग्रा

2. **एफिड या माहू -** माहू कीड़े का प्रकोप लगभग दिसम्बर के मध्य से शुरू होता है और बादल घिरे रहने पर इसका प्रकोप बड़ी तीव्रता से बढ़ता है। प्रायः इसका आक्रमण फूलों से शुरू होता है। यह कीड़े तथा फलियों का रस चूसते हैं जिससे फलियों में दाना नहीं बन पाता है।

माहू या कीट की पहचान - यह छोटा, कोमल शरीर वाला हरे मटमैल भूरे रंग का कीट है जिसके झुण्ड पत्तियों, फूलों डंठलों, फलियों आदि पर चिपके रहते हैं एवं रस चूसकर पौधे को कमजोर कर देते हैं।

रोकथाम - निम्नलिखित कीटनाशक रसायन की संस्तुत मात्रा प्रति हेक्टेयर की दर से प्रयोग करें-

1 मिथाइल-ओ-डिमेटान 25 ई.सी. 1.0 लीटर या

2 इण्डोसल्फान 35 ई.सी. 1.25 लीटर

3 डायजिनान 20 ई.सी. 1.25 लीटर

4 मेलाथियान 50 ई.सी. 2.0 लीटर

5 फेनिट्रोथियान 50 ई.सी. 1.0 लीटर

6 क्लोरपायरीफास 20 ई.सी. 0.75 लीटर या

7 मोनोक्रोटोफास 36 एस.एल. 0.75 लीटर या

8 मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत धूल 20 किग्रा प्रति हे.।

3. **बिहार की रोमिल सूंडी -** यह फसल की प्रारम्भिक अवस्था में आक्रमण करती है।

बलदार (गिंडार) कीट की पहचान - इस भुडली के शरीर का रंग पीला अथवा नारंगी होता है, परन्तु सिर व पीछे का भाग काला होता है तथा शरीर पर घने काले बाल होते हैं।

रोकथाम - रोकथाम हेतु निम्न उपचार करें -

1 प्रथम अवस्था में गिंडार झुण्ड में पाई जाती हैं उस समय उन पत्तियों को तोड़कर एक बाल्टी मिट्टी के तेलयुक्त पानी में डाल दिया जाए जिससे गिंडार नष्ट हो जाएं।

2 प्रथम व द्वितीय अवस्था में गिंडारों की रोकथाम हेतु मिथाइल पैराथियान 2 प्रतिशत धूल 20 किग्रा या इण्डोसल्फान 4 प्रतिशत धूल 20 किग्रा या क्यूनालफास 1.5 प्रतिशत धूल या 20 किग्रा प्रति हे. की दर से बुरकाव /छिड़काव किया जाए।

3 पूर्ण विकसित गिंडारों की रोकथाम हेतु निम्नलिखित में से किसी एक कीटनाशक रसायन का प्रति हेक्टेयर 100 मिली0. टीपोल या 100 ग्राम डिटरजेण्ट पाउडर 600 लीटर पानी में मिलाकर बुरकाव/छिड़काव किया जाए।

अ डाइक्लोरवास डी.डी.वी.पी. 76 एस.एल. 625 मिली.

ब क्लोरपायरीफास 20 ई.सी. 1.25 लीटर से1.5 लीटर।

स इण्डोसल्फान 35 ई.सी. 1.25 लीटर से1.5 लीटर।

द क्यूनालफास 25 ई.सी. 1.25 लीटर।

नोट - सरसों जाति की सभी फसलों पर फूल अवस्था में ऐसे समय अर्थात् सांयकाल छिड़काव करें जबकि परागणकर्ता कीटों एवं मधुमक्खियों को हानि न पहुंचे।

चित्रित बग (पेण्अेडबग) कीट की पहचान - यह नारंगी रंग का धब्बेदार कीट है जिसके शिशु तथा वयस्क पत्तियों, मुलायम टहनियों तथ कलियों से रस चूसते हैं जिसके फलस्वरूप पौधों की वृद्धि रूक जाती है। कीट का झुण्ड कटाई के बाद मुड़ाई के लिए रखे गए ढेर में भी होता है जो दाने पर आक्रमण करता है।

रोकथाम - इस कीट के उपचार के लिए माहू के उपचार में वर्णित किसी एक कीटनाशी का प्रयोग में लाना चाहिए।

नोट - तिलहनी फसलों में बी.एच.सी. का प्रयोग, कीट नियंत्रण में नहंी करना चाहिये क्योंकि यह तेल संरचना में पहुंच जाती है।

6.3.8 अलसी

1 **लेफिग्मा या लुसर्न कैटरपीलर या अलसी सेमीलूपर -** इस कीट की सूंडी पत्तियों को खा जाती है। यह आन्ध्र प्रदेश, बिहार, पंजाब, उत्तर प्रदेश में पाया जाता है। यह सर्दी की ऋतु में लगता है दिन की धूप में यह छूप जाता है ओर सुबह शाम पत्तियों को खाता रहता है। इसकी रोकथाम के लिए 5 प्रतिशत बीएचसी की धूल 20 किग्रा प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़कना चाहिए अथवा 0.15 प्रतिशत का इण्डोसल्फान (35 ई.सी.) ली. पानी में घोल बनाकर छिड़क देना चाहिए।

2 **अलसी मक्खी या गाल मिज -** यह मक्खी चमकीली नारंगी रंग की होती है तथा फूलों और कलियों को नष्ट कर देती है। मध्य प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश और बिहार में अधिक पाई जाती है। सितम्बर और फरवरी में अधिक क्रियाशील हो जाती है। इसकी रोकथाम के लिए रोगोर (30 ई.सी.) या मैटासिस्टाक्स 35 ई.सी. या डाइमेक्रोन 100 ई.सी. का छिड़काव 250 मिली. दवा 1000 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हेक्टेयर की दर से करना चाहिए।

6.3.9 सूरजमुखी

सूरजमूखी पर हानिकारक कीड़ों का अधिक प्रकोप नहीं होता, फिर भी अंकुरण का अवस्था में अंकुर को कुछ कीड़े काटते हैं, जिससे नुकसान हो सकता है। फूल खिलने की अवस्था में सिरावेधक हानि पहुंचा सकते हैं। इसके अतिरिक्त जैसिड के आक्रमण से भी हर समय फसल की रक्षा की जानी चाहिए। बोआई से पहले खेत में 15 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से हैप्टाक्लोर (5 प्रतिशत धूल) मिलाकर इनकी रोकथाम की जा सकती है। 0.025 प्रतिशत मैटासिस्आक्स या डाइमक्रेन (25 ई.सी.) एक मिली. दवा को एक लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें।

6.3.10 कुसुम

एफिड या माहू - यह कीट पत्तियों का रस चूसकर फसल को हानि पहुंचाता है। नम मौसम में इसका प्रभाव अधिक बढ़ता है। कभी-कभी इस कीट से 13-49 प्रतिशत तक उपज में कमी आती है। इसकी रोकथाम के लिए मैटासिस्टोक्स 0.15 प्रतिशत का घोल 2-3 बार 6-10 दिन के अन्तर में छिड़कना चाहिए। इस दवाई के स्थान पर रोगोर 500 मिली. या डाइमैक्रान 200 मिली. 100 ई. सी. को 1000 ली. पानी में घोलकर एक हेक्टेयर में छिड़कना चाहिए।

इसके अतिरिक्त पत्ती की सूंडी कुसुम की मक्खी व चने की सूंडी कुसुम की सूंडी नामक कीट भी कुसुम की फसल को हानि पहुंचाते हैं। इन सभी प्रकार के कीटों व सूंडियों की रोकथाम के लिए पैराथियोन या थायोडान का 0.04 प्रतिशत का घोल छिड़कना लाभप्रद रहता है।

6.3.11 बरसीम

सेमीलूपर बरसीम को हानि पहुंचाने वाला प्रमुख कीट है। इसका आक्रमण फरवरीमार्च में होता है। अन्य कीटों में चने की सूंडी, थ्रिप्स, एफिड व ग्रासहोपर भी फसल को हानि पहुंचाते हैं। कीटों का

प्रकोप होने पर पूरे खेत की कटाई एक साथ करके 5 प्रतिशत मैलाथियान की धूलि का बुरकाव करें। बुरकाव के 10-15 दिन बाद तक खेत से चारे की कटाई न करें अन्यथा पशुओं को हानि हो सकती है। इन सब कीट पतंगों की रोकथाम का विस्तृत अध्ययन आगे लुसर्न अथवा रिजका के अध्याय से कीजिए।

6.3.12 लुसर्न या रिजका

1 **एल्फा एल्फा एफिड या माहू -** कीट के वयस्क छोटे होते हैं। शीघ्र ही भूरे व पीले रंग में बदलते हैं। निम्फ व वयस्क पौधों को रस चूसते हैं। पत्तियों पर क्लोरोसिस व नसें पीली पड़ जाती हैं। बीजांकुर नष्ट हो जाते हैं। पौधे की वृद्धि रूक जाती है। प्रोटीन व कैरोटी प्रतिशत 50 प्रतिशत कम हो जाती है। कीट पत्तियां पर शहद की तरह चिपचिपा पदार्थ छोड़ते है जिसके कारण पत्तियों पर फफूंद व मोल्ड लग जातेहैं। बरसीम की फसल का भी यह मुख्य कीट है। इसके नियंत्रण के लिए 0.01 प्रतिशत मे आसिस्टाक्स या 0.05 प्रतिशत मैलाथियान या डायजिनान के 800 लीटर घोल का छिड़काव प्रति हेक्टेयर करना चाहिए।

2 **पत्तियों का कुतरा -** कीट हरे पीले या भूरे रंग के होते हैं अधिकतर पत्तियों की निचली सतह पर ठहरते हैं तथा इसका रस चूसते रहते हैं। पत्तियों का रंग सफेद, पीला, लाल या भूरा दिखाई पड़ने लगता है। भारी आक्रमण पर पौधे झुलसे नजर आते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 0.15 प्रतिशत थायोडान का घोल छिड़कना चाहिए।

3 **एल्फा एल्फा विविल -** वयस्क कीटों का रंग गहरा भूरा या काला होता है। शरीर पर छोटे छोटे भूरे बाल होते हैं। लारवा (सूंडी) का रंग हरा होता है, पैर नहीं होते तथा शरीर के निचले भाग पर अच्छी विकसित डोलियां होती है जो इसके चलने फिरने में सहायता करती है। पत्तियों को छेद करके खाते हैं। इसकी रोकथाम के लिए 0.15 प्रतिशत इण्डोसल्फान (थायोडान 35 ई.सी.) के घोल की 800 लीटर मात्रा प्रति हेक्टेयर छिड़कनी चाहिए।

4 **लुर्सन गिंडार या सूंडी -** बरसीम में भी यह सूंडी लगती है। वयस्क के अगले पंख भूरे व पीले एवं लाल धब्बे लिएहोते हैं। पिछले पंख सफेद एवं गहरी धारियां लिए होते हैं। गिंडार 2-5 सेमी तक लम्बे होते हैं। गिंडार का रंग हरा तथा धारीदार होता है। वयस्क पत्तियों की निचली सतह पर अण्डे देती है। लारवा या सूंडी बहुत तेजी से पत्ती खाती है और शीघ्र ही पत्तियों का रंग कागज की तरह सफेद हो जाता है। अन्त में पत्तियों की मुख्य शिरा ही शेष रह जाती है। बरसीम व चुकन्दर पर भी इस कीट का आक्रमण होता है। थायोडान 0.1 प्रतिशत या सेविन 0.2 प्रतिशत का घोल छिड़कना चाहिए। छिड़काव के 20 दिन बाद ही पशुओं को चारा खिलाइए।

5 **सेमी लूपर -** वयस्क के अगले पंखों पर सुनहरी Y के आकार का चिह्न होता है। वयस्क लूपर या गिंडार हल्के रंग में बदलते हैंव बाद में भूरे हरे रंग के हो जाते हैं। सिर का भाग पीछे की तुलना में नुकीला होता है। गिंडार पत्ती का एक भाग खाती है। अगस्त से आक्रमण प्रारम्भ होकर सितम्बर व अक्टूबर में भारी आक्रमण होता है। इसकी रोकथाम के लिए 0.5 प्रतिशत इण्डोसल्फान के घोल का छिड़काव करें। बीस दिन तक चारा प्रयोग न करें।

6 **बिहार रोएंदार गिंडार -** कीट का रंग भूरा नारंगी होता है तथा पंखों पर काले धब्बे पाए जाते हैं। गिंडार रोएंदार व उदर अथवा नीचे से काले रंग के होते हैं ऊपर की अथवा पीठ की तरफ नारंगी पीले रंग की होती है। गिंडार हरी पत्तियों को खाते हैं। एक पत्ती समाप्त होने पर दूसरी पर पहुंच जाते हैं। यह अनेक वनस्पतियों पर निर्वाह कर सकता है ; जैसे बरसीम, ज्वार, लोबिया व सोयाबीन आदि। इसकी रोकथाम के लिए 0.15 प्रतिशत का इण्डोसल्फान (35 ई.सी. थायोडान) के800 लीटर घोल का छिड़काव प्रति हेक्टेयर करना चाहिए।

7 **चने का कुतरा -** वयस्क धूसरित सफेद रंग के होते हैं। अगले पंखों पर पट्टियां, दो काली धारीदार कतारों में जो पंख के आधार पर होती हैं प्रारम्भ होती है। लारवा रात में आक्रमण करते हैं व दिन में मृदा सतह में छिप जाते हैं। बीजांकुरों को भारी हानि पहुंचाते है। इसकी रोकथाम के लिए 0.2 प्रतिशत या 0.5 प्रतिशत इण्डोसल्फान का 800 - 1000 लीटर घोल प्रति हेक्टेयर छिड़कना चाहिए। 20 दिन तक इस खेत में पशुओं को हरा चारा न खिलाएं।

6.3.13 तम्बाकू

1 **तम्बाकू की सूंडी या गिंडार -** यह सूंडी तम्बाकू की हरी और मुलायम पत्तियों को खाती है और कभी-कभी तने को भी खाती है। इसकी रोकथाम के लिए 0.15 प्रतिशत थायोडान 35 ई.सी. के घोल को छिड़कना चाहिए। एल्ड्रिन (5 प्रतिशत) की 25 किग्रा/हे. मात्रा की दर से बुरकना भी लाभदायक है।

2 **तना बेधक -** यह तनों के अन्दर घुसकर तने को खाता है और इस तरह पौधे नष्ट हो जाते हैं। इसे रोकने के लिए तम्बाकू की गिंडार वाली दवाइयों का प्रयोग कीजिए।

3 **एफिड या माहू -** यह पत्तियों तथा तनों के रस को चूसते हैं और पौधे पीले पड़ जाते हैं और फसल काफी कमजोर हो जाती है। इसकी रोकथाम के लिए पैराथियान या डाइमेक्रान का 0.2 प्रतिशत का छिड़काव लाभदायक हुआ है।

4 **कटुआ या कटवर्म -** इसकी सूंडी भूमि के स्तर से तने को काटती है और पत्तियों को खा जाती है जिससे फसल को बहुत क्षति पहुंचती है। रोकथाम के लिए5 प्रतिशत हैप्टाक्लोर 25 किग्रा/हे. की दर से डालनी चाहिए। खड़ी फसल में इसे रोकने के लिए 0.15 प्रतिशत इण्डोसल्फान 35 ई.सी. के 800 लीटर घोल का छिड़काव प्रति हे. करें।

5 **दीमक -** दीमक से भी कभी कभी फसल को बहुत क्षति पहुंचती है। इसकी रोकथाम के लिए भूमि का उपचार कीटनाशक दवाओं से करना चाहिए। हेप्टाक्लोर या एल्ड्रिन 265 किग्रा प्रति हे. की दर से डालना लाभदायक है।

6.4 सारांश

फसलो मे समय पर कीट नियंत्रण करना अति आवश्यक हैं। फसलों में पाऐ जाने वाले मुख्य कीट तना छेदक, लीफ माइनर, दीमक, ऐफिड, जैसिड़, लूपर, सेमिलूपर, कुतरा, तना बोधक, आदि होते हैं। कीटों के नियंत्रण के लिए विभिन्न कीटनाशकों का प्रयोग किया जाता हैं। कीटनाशकों की सही मात्रा एवम् इनकी प्रयोग करने की विधि का सही ज्ञान होना अति आवश्यक हैं। अन्यथा इसका विपरित प्रभाव फसल पर पड़ सकता हैं।

6.5 बोध प्रश्न

1. धान में लगने वाले मुख्य कीट एवम् उनको नियंत्रण करने के कीटनाश्क तथा उनकी सही मात्रा बताइए।?
2. गेंहू के भंडारित कीट एवम् उनका नियंत्रण बताइए।
3. निम्न में से कौनसा कीट धान की फसल में पाऐ जाते हैं?

   (अ) धान की जड़ सूंडी (ब) तना छेदक

   (स) जैसिड (द) उपरोक्त सभी

6.6 सदंर्भ सामग्री

1. Reddy, T.Y. and Reddi, G.H.S., 2000, Principles of Agronomy, Kalyani Publishers, New Delhi.
2. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
3. Singh, Chaddha, 1999, Modern Techniques of Raising Field Crops, Oxford & IBH publishing company private limited, New Delhi.
4. Singh, S.S., 1993, Crop Management under Iirrigated and Rainfed Conditions, Kalyani Publishers, New Delhi.
5. गुप्ता, पंकज. 2011. स्प्रेअर का चुनाव, रखरखाव तथा सावधानियां । विश्व कृषि संचार (03): 54-63.
6. अहलावत, आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलेंए रामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ.
7. माथुर, वाय. के. एवं उपाध्याय, के. डी., कृषि कीट विज्ञान, रमा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ.

इकाई 7

बागवानी फसलों के मुख्य कीट और उसका नियंत्रण

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य

7.1 प्रस्तावना

7.2 कीड़ों की रोकथाम

7.3 कीटनाशकों का प्रयोग करते समय सावधानियां

7.4 बागवानी फसलों के मुख्य कीट, लक्षण और उनका नियंत्रण

7.5 सारांश

7.6 बोध प्रश्न

7.7 सदंर्भ सामग्री

7.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप जान पाऐंगे कि -

- कीट नियंत्रण के मुख्य कीट, लक्षण तथा उनका नियंत्रण
- कीटनाशकों का प्रयोग करते समय सावधानियां

7.1 प्रस्तावना

फलदार पौधों पर अनेक प्रकार के कीड़ों का प्रकोप होता है। ये पत्ते, तने, छाल, फूल व फल आदि हर भाग को हांनि पहुंचा सकते है। यदि छोटे पौधों पर प्रकोप हो तो पोधे मर भी सकते हैं। बड़े पौधों पर कीट आक्रमण से उनकी बढ़वार तथा उत्पादन में कमी आती है। कीड़े फलवृक्षों को निम्नलिखित दो प्रकार से हानि पहुंचाते है।

1 काटकर ओर चबाकर

2 पौधों का रस चूसकर

काटकर तथा चबाकर खाने वाले कीड़ों द्वारा किया गया नुकसान आसानी से पहचाना जा सकता है तथा इन्हें आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है। परन्तु रस चूसने वाले कीड़ों के आक्रमण के अनेक लक्षण है जो पौधों व शाखाओं का छोटा (बौना) रहना, पत्ते मुड़ना और पौधों के अनेक भागों विशेषकर तनों का मुड-तुड जाना आदि आमतौर पर देखे जा सकते हैं। अन्य लक्षणों में धब्बे नजर आना व पौधों का पीला पड़ना शामिल है। काटने व चूसने दोनों प्रकार से हानि पहुंचाने वाले कीड़ों के प्रकोप काएक मुख्य लक्षण है गांठ बनना।

7.2 कीड़ों की रोकथाम

कीट नियंत्रणके तीन मुख्य तरीके है जो निम्नलिखित है -

क) यान्त्रिक नियंत्रण

ख) सस्य क्रियाओं द्वारा नियंत्रण

ग) रासायनिक नियंत्रण

कीट नियंत्रण का प्रत्येक तरीका निम्नलिखित चार बातों पर आधारित है -

1) नर प्रौढ़ों का बधियाकरण

इसमें नर प्रौढ़ों को पकड़कर किरणों द्वारा बधिया कर दिया जाता है और प्रजनन के उचितसमय पर मादाओं के साथ छोड़ दिया जाता है। इससे मादाएं आगे अण्डे देने में असमर्थ हो जाती है।

2) नवजात कीड़ों का जीवनचक्र तोड़ना

नवजात कीड़ों को जीवन की विभिन्न अवस्थाओं पर रसायनों से मार दिया जाता है ताकि कम से कम कीड़े प्रौढ़ आयु तक पहुँच सकें।

3) लाभदायक कीटों का प्रयोग

लाभदायक मित्र कीड़ों जैसे लेडीबग भूंड आदि दुश्मन कीड़ों को खा जाते है। इस प्रकार दुश्मन कीड़ों की संख्या पर नियंत्रण पाया जाता है।

4) लाभदायक पौधों का प्रयोग

मुख्य फसल के आसपास कुछ ऐसेपौधे लगाते है जिस पर हानिकारक कीट आकर्षितहोते हैं या फिर आक्रमण करने वाले कीड़ों के लिए एनैच्छिक वातावरण पैदा कर देते हैं।

क) यान्त्रिक नियंत्रण

विभिन्न प्रकार के यन्त्रों या हाथों से कीड़ों को पकड़ लिया जाता है तथा उसके बाद कीटनाशक से मार दिया जाता है।

ख) सस्य क्रियाओं द्वारा रोकथाम

फसल चक्र अपनाकर, कांट-छांट अथवा रोधक किस्मों का प्रयोग करके भी कीट नियंत्रण किया जा सकता है।

ग) रासायनिक नियंत्रण

रासायनिक नियंत्रण में कीटनाशकों का फसल पर छिड़काव किया जाता है। कीटनाशककी मात्रा कीट व फसल तथा कीट की संख्या पर निर्भर करती है। कीड़े स्वयं हानि पहुंचाने के अतिरिक्त बिमारी फैलाने वाले जीवाणु जैसे वायरस आदि को एक स्थान से दूसरे स्थन पर ले जाने में भी मदद करते हैं। ऐसे कीड़ों को ''वैक्टर'' कहते है। सफेद मक्खी, हरा तेला आदि कुछ मुख्य कीट वैक्टर है।

7.3 कीटनाशकों का प्रयोग करते समय सावधानियां

1 कीटनाशकों को केवल सुरक्षित स्थान पर रखें।

2 कीटनाशकों को खाने-पीने की वस्तुओं के पास न रखें।

3 कीटनाशक डिब्बे पर लिखी हिदायतों का पालन करें।

4 कीटनाशक के मुंह इत्यादि मेंजाने पर तुरन्त डॉक्टर की सलाह लें।

5 कीटनाशक खाली डिब्बों को नष्ट कर दें।

6 कीटनाशकों का छिड़काव करने के बाद हाथ, पैर, मुंह अच्छी तरह साबुन व पानी से धोएं।

7 स्प्रेयर की नोजल आदि से कचरा निकालने के लिए न फूंक मारे, न हवा खींचे और न मुंह लगाएं।

7.4 बागवानी फसलों के मुख्य कीट, लक्षण और उनका नियंत्रण

कीट का नाम	हानि के लक्षण	नियंत्रण
1. छाल खाने वाली सुण्डी	यह कीट अमरूद, बैर, शहतूत, अनार, नीबू, आडू, लीची, आंवला, जामुन व लोकाट के पेड़ों को नुकसान पहुंचाता है। इनके अलावा यह कीट अनेक छायादार व अन्य पेड़ों को भी हानि पहुंचाता है। इसकी सुण्डी ही नुकसानदेय है जो अक्सर दिखाई नहीं देती क्योंकि यहदिन में तने के अन्दर रहकर सुरंग बनाती है। इसका मल व लकड़ी का बुरादा एक जाले के रूप में पेड़ के तने व टहनियों पर देखा जा सकता है। यह रात को सुरंग से बाहर निकलकर जाले के नीचे रहकर छाल को खाती है जिससे पेड़ की खुराक नली नष्ट हो जाती है। फलस्वरूप पौधों के अन्य भागों में पोषक तत्व नहीं पहुंचते। जिन बागों में देखभाल नहीं होती उनके पुराने पेड़ों पर यह सुण्डी ज्यादा नुकसान पहुंचाती है। ज्यादा तेज हवा चलने पर प्रकोपित तने व टहनियां टूट कर गिर जाते हैं और पूरा पौधा मर जाता है।	10 मि.ली. मोनोक्रोटोफास (नूवाक्रान/मोनोसिल) 36 डब्ल्यू.एस.सी या 10 मि.ली. मिथाइल पैराथियान (मेटासिड 50 ई.सी.) को 10 लीटर पानी में घोलकर सुराखों के चारों और की छाल पर सितम्बर - अक्टूबर के महीने में लगाएँ। 2 40 ग्राम कार्बेरिल (सेविन) 50 प्रतिशत पाउडर (घु.पा.) या 10 मि.ली. फैनिट्रोथियान (फोलीथियान/सुमिथियान) 50 ई.सी. को 10 लीटर पानी में मिलाकर घोल बनाएं। इस घोल को /फरवरी-मार्च के महीने में रूई के फोहों से किसी लोहे की तार की मदद से कीड़ों के सुराख के अन्दर डाल दें व सुराख की गीली मिट्टी से ढ़क दें। 10 प्रतिशत मिट्टी के तेल का इमल्शन (एक लीटर मिट्टी का तेल+100 ग्राम साबुन+9 लीटर पानी) भी प्रयोग कर सकते हैं। या नीचे दी गई दवाइयों में से किसी एक का पानी बनाया गया 5 मि.ली. घोल का प्रयोग में लाया जा सकता है। मि.ली. डाईक्लोरवास (नुवान) 36 ई.सी. या 5 मि.ली. मिथाईल पैराथियान (मेटासिड) 50 ई.सी. को 10 लीटर पानी में मिलायें। घोल को सुराख में डालने के बाद मिट्टी से बन्द कर दें। नोट - 1 कीटनाशक दवाइयों का प्रयोग, जाले हटाने के बाद ही करें। 2 आसपास के सभी वृक्षों के सुराखों में भी दवाइयों का प्रयोग करें।

		3 बाग को साफ-सुथरा रखें व निर्धारित संख्या से ज्यादा पेड़ न लगायें।
2. दीमक	यह कीट फलदार, छायादार व अन्य वृक्षों को काफी नुकसान पहुंचाता है। इसका ज्यादा नुकसान नर्सरी में या नए लगाए गए पौधों में होता है। यह कीट सूर्य की रोशनी से बचता है। शुष्क व अर्द्धशुष्क जलवायु इसके लिए अतिलाभदायक होती है। यह तने पर मिट्टी की सुरग में रहकर छाल को खाता है या फिर भूमि में रहकर जड़ों से तने की ओर खोखला करते हुए उपर की ओर बढ़ता है। इनके केमरों द्वारा छाल, जड़ों व अन्दर की लकड़ी खाने से पेड़ सुखकर मर जाते है। दीमक से प्रकोपित वृक्ष व टहनियां तेज हवा में गिर जाते हैं। इसका नुकसान सूखी लकड़ी में भी होता है। बरसात को छोड़कर इसका प्रकोप सारा साल बना रहता है।	यांत्रिक ढंग से सुखी लकड़ी, गली सड़ी व कोई भी ठूंठ आदि खेत में न रहें। गोबर की हरी व कच्ची खाद प्रयोग में न लायें क्योंकि यह सभी दीमक की बढ़ावा देती है। पौधों के आसपास गहरी जुताई करें । जहां तक संभव हो रानी दीमक को नष्ट करें। रासायनिक तरीके से पौधे लगाने से पहले 50 मि.ली. क्लोरपायरिफॉस 20 ई.सी. 5 लीटर पानी में प्रति गढ्ढे पोंधा लगाते समय डालें। दवाई का घोल डालने से पहले प्रत्येक गढ्ढे में 2-3 बाल्टी पानी डाल दें। नये पौधे लगाने के बाद एक लीटर क्लोरपायरिफॉस 20 ई.सी. एकड़ सिंचाई करते समय डालें।
3**.चूरड़ा / थ्रिप**	यह मुख्य रूप से अंगुर का कीट है। इसके अलावा नींबूवर्गीय फल, जामुन, आम व अमरूद को भी नुकसान पहुंचाता है। इसके शिशु (Nymph) छोटे पीले भूरे व युवा (Adult) काले भूरे रंग के पतले व लम्बे होते हैं जो पत्तों की निचली सतह से रस चूसकर सफेद भूरे रंग के धब्बे बना देते हैं। शिशु जो बहुत हानिकारक हेते हैं, 9-20 दिन में पूरी तरह से विकसित हो जाते हैं। जब प्रकोप बहूत ज्यादा होता है तो पत्ते मुड़	750 मि.ली. एण्डोसल्फान (थायोडान/एण्डोसिल) 35 ई.सी. या 150 मि.ली. फेनवलरेट (फेनवाल) 20 ई.सी. या 500 मि.ली. मैलाथियान (सायथियान) 50 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। नोट - जिन किस्मों के पत्ते रोयेंदार व निचली मोटी हो उन पर इस कीट का ज्यादा नुकसान नही होता है।

	जाते हैं व पीले होकर गिर जाते हैं। अविकसित फल का प्रकोप हो तो धब्बों की वजह से फल सख्त व भद्दे हो जाते हैं जिनमें उनकी गुणवत्ता भी कम हो जाती है। इसका ज्यादा नुकसान सूखे मौसम में अप्रेल से जून व अगस्त से नवम्बर में होता है। यह प्यूपे के रूप में दिसम्बर से मार्च तक जमीन में शांत व निष्क्रिय रहता है तथा मार्च से नवम्बर तक इसकी 5-8 पीढ़ियाँ होती हैं।	
4.**नीबू की तितली**	नींबू जाति का यह विनाशकारी कीट है। इसकी सुण्डी शुरू में भूरे काले रंग की हाती है। जिन पर काले धब्बे होते हैं तथा बाद में इसका रंग हरा हो जाता है। ये जवजात पत्तियों को किनारों से मध्य शिराओं तक खाती हैं। नर्सरी से तथा छोटे पौधों व मुलायम पत्तियों पर इसका नुकसान ज्यादा होता है। माल्टा पर इसका प्रकोप अत्यधिक होता है।	जैसा नींबू की सफेद/काली मक्खी में दिया गया है। नोट - जहां तक हो सके, सूण्डियों व प्यूपा को हाथ से पकड़कर नष्ट करें।
5.**नींबू का सिल्ला**	सिल्ला नींबू जाति के सभी फल वृक्षों का एक मुख्य कीट है जिसके शिशु गोल, चपटे व नारंगी - पीले तथा प्रौढ़ भूरे रंग के होते हैं जो पत्तों व नई टहनियों से रस चूसते हैं। रस चूसने से पत्ते व टहनियाँ पीली हो जाती है व आखिरकार सूख जाती है। इसके शिशु ज्यादा नुकसादेय होते है। इस कीट की 8-10 पीढ़ियाँ होती हैं व पूरा वर्ष सक्रिय रहता है। इसका ज्यादा	625 मि.ली. डाइमैथोएट (रोगार 30 ई.सी.) या 750 मि.ली. ऑक्सीडीमेटान मिथाईल (मैटासिस्टाक्स) 25 ई.सी. या 5 मि.ली.मोनोक्रोटोफास (नूवाक्रान/मोनोसिल) 36 डब्ल्यू.एस.सी. 500 लीटर पानी में प्रति एकड़ छिड़के। नोट - नींबू जाति के सभी वृक्षों पर भी छिड़काव करें।

	नुकसान मार्च-अप्रेल व वर्षा ऋतु के बाद होता है। माल्टा व मीठे - नींबू पर इसका ज्यादा नुकसान होता है।	
6.**नींबू का लीफ माइनर**	यह कीट नींबू के पत्ते को नुकसान पहुंचाता है। बिना पैर के हल्के-पीले रंग की सुण्डियाँ, मुलायम पत्तियों के दोनों तरफ चमकीली व टेढ़ी-मेढ़ी सुरंगे बनाती है। प्रकोपित पत्तियों पर फफंदी जैसी बीमारी हो जाती है जिससे पत्तियाँ व टहनियाँ सूख जाती है। पूरे साल में इस कीट की लगभग 12 पीढ़ियाँ होती है परन्तु ज्यादा नुकसान बसंत व मई से अक्टूबर के महिनों में होता है। इसका ज्यादा नुकसान मुलायम व रसदार पत्तियों पर होता है। नर्सरी में इसके प्रकोप से पूरा पौधा ही नष्ट हो जाता है।	जैसा कि नींबू के सिल्ला में दिया गया है।
7.नींबू की सफेद व काली मक्खी	सफेद मक्खी के शिशु चपटे, हल्के पीले रंग के व शरीर पर बाल वाले होते हैं। प्रौढ़ के शरीर व पंखों पर सफेद रंग का पाऊडर होता है। काली मक्खी के शिशु चपटे, कांटेदार, अण्डाकार व गहरे भूरे या काले रंग के होते हैं जबकि युवा हल्के रंग के होते हैं। यह मुलायम पत्तियों में रस चूसते हैं जिससे पत्तियां पीली नड़ जाती है व आखिरकार सूखकर गिर जाती है। शिशु 25 से 70 दिनों तक पत्तियों की नीचली सतह पर चिपक कर बड़े होते हैं। यह मक्खी मार्च से अप्रेल व अगस्त से सितम्बर में ज्यादा	500 मि.ली. मोनोक्रोटोफास (नुवाक्रोन/मोनोसिल) 36 डब्ल्यू.एस.सी. या एसिफेट 200 ग्राम 75 एस.पी. 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें। नोट - बाग में पौधे जरूरत से ज्यादा नहीं लगाने चाहिए। पानी का निकास सही होना चाहिए।

	नुकसान करती है जबकि पूरी गर्मी (मार्च से सितम्बर) सक्रिय रहती है। इसकी साल में दो पीढ़ियाँ होती हैं। यह शिशु की अवस्था में शांत व निष्क्रिय रहता है व इसका प्रौढ़ ज्यादा दिन जीवित नहीं रहता। सफेद मक्खी नींबू के अलावा जामुन में भी नुकसान पहुंचाती है।	
8.लाल ततैये व पीले भिरड़	तैतये व भिरड़ की मुख्य समस्या अंगूर ह। ये कटे-फटे अंगूरों का पूर्ण रूप से खा जाते है। इसके अलावा ज्यादा मीठे रस व पतले छिलके वाले फलों को पकने पर बहुत नुकसान पहुंचाते है। फलों को तोड़ते समय भी काफी परेशान करते हैं। लाल ततेये के छत्ते पेड़ों के खोखले भग व दिवारों की आड़ में जबकि भिरड़ के छत्ते घरों में छत्तों की निचली सतह पर पाये जाते हैं।	1 कार्बोरिल 50 प्रतिशत घुलनशील पाउडर (40 ग्राम 10 लीटर पानी में) का छिड़काव सूर्य छिपने के समय करें। 2 पकते हुए गुच्छों का कपड़ा बांधकर भी ततैयों व भिरड़ों से छुटकारा पाया जा सकता है।
9.पत्ते खाने वाली भूँडियाँ	इसकी विभिन्न जातियाँ बेर, अंगूर, अमरूद आदि वृक्षों को नुकसान पहुंचाती है। शुष्क व अर्द्धशुष्क क्षेत्रों में यह ज्यादा हानि करती है। भूरे चमकीले व मोटे - ताजे युवा (Adult) शाम से सुबह तक वृक्षों के पत्तों को खूब खाते हैं और दिन निकलने से पहले ही जमीन में छिप जाते हैं। वैसे तो यह पत्तों में गोल छेद करके खाते हैं परन्तु जब अधिक नुकसान होता है तो वृक्षों पर पत्ते बिल्कुल खत्म कर देते हैं जिससे फल नहीं लगते। इसकी सुण्डियाँ अनेक फसलों की जड़ों	500 मि.ली. मोनोक्रोटोफास (नुवाक्रान) 36 डब्ल्यू.एस.सी. या एक लीटर क्विनलफॉस (ईलालक्स) 25 ई.सी. या 1.5 किलोग्राम कार्बारिल (सेविन) 50 एकड़ शाम के समय छिड़कें। छिड़काव युवा निकलने के एक दिन बाद करें जो कि मानसून की पहली वर्षा के बाद निकलते हैं। अगर छिड़काव के तुरन्त बाद बारिश हो जाये या फिर नुकसान जारी रहे तो उपर्युक्त छिड़काव दोबारा करें। नोट - बाग के आसपास के वृक्षों पर भी छिड़काव करें।

	को मानसून या इससे पहले की वर्षा के बाद नुकसान करती है। युवा की आयु लगभग एक महीना होती है व इस कीट की पूरे वर्ष में एक ही पीढ़ी होती है।	
10.टबालों वाली सुण्डी	गहरे-भूरे रंग की सुण्डियाँ जो कि अण्डे से निकलते ही इकट्ठी होकर पत्ते की नीचली सतह को खाकर छलनी कर देती है। सुण्डी के शरीर पर लम्बे-लम्बे बाल होते हैं। यह बड़ी होकर पूरे वृक्ष पर फैल जाती हैं व शाखाओं को खाकर पत्ता रहित कर देती हैं। फलों को भी खाती हैं जिससे उनकी गुणवत्ता कम हो जाती है। यह सुण्डी बेर व अंगूर के फल के मौसम में पूरी तरह सक्रिय रहती है।	500 मि.ली. मोनोक्रोटोफास (नुवाक्रान) 36 डब्ल्यू.एस.सी. या एक किलोग्राम क्विनलफॉस (सेविन) 50 प्रतिशत घुलनशील पाउडर को 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़के। छोटी सुण्डियों को यांत्रिक तरीके से नष्ट करें।
11.मिलीबग	यह आम का एक बहुत ही विनाशकारी कीट है। इसके अलाव यह कीट बैर, अमरूद, नींबू, अनार, अंजीर आदि फल वृक्षों को भी नुकसान पहुंचाता है। दिसम्बर - जनवरी में जमीन के अन्दर अण्डे से निकलकर छोटे-छोटे भूरे शिशु वृक्षों की पत्तियों पर जमा हो जाते हैं। फरवरी महीने में नई पतली डालियों पर इकट्ठे हो जाते हैं। शिशु और मादा प्रौढ़ चपटे, मोटे व अण्डाकार होते हैं व इनके शरीर पर सफेद मोर जैसा चूर्ण जमा होता है। ये दोनों जनवरी से अप्रेल तक नई डालियों के अलावा बौर वाली टहनियों से रस चूसते हैं सिसे टहनियां मुरझा जाती है। अधिक प्रकोप होने पर फूल भी झड़ जाते हैं फलस्वरूप वृक्षों पर	1 मध्य दिसम्बर में इस कीड़े के शिशुओं को पेड़ों पर चढ़ने से रोकने के लिए जमीन से 50 से 100 से.मी. की ऊँचाई पर मुख्य तने पर लगभग एक फुट चैड़ी, चिकनी, अल्कोहल (300-400 गेज पॉलीथीन) की पट्टी बांधे। पेड़ की ऊपरी पुरानी 5-6 से.मी. चैड़ी छाल अल्कोहल चादर लगाने से पहले कुल्हाडी से काटकर उतार लेनी चाहिए ओर इस समतल स्थान के ऊपर 5 से.मी. चैड़ी तारकोल की तह लगाकर तुरन्त चादर के निचले भाग की किनारियों से अच्छी तरह दबा दें ताकि चादर और तारकोल के मध्य कोई खाली स्थान न रहें। इसी प्रकार चादर के ऊपरी हिस्से को भी 3-4 जगह से चिपका दें। 2 बैण्ड (फिसलने वाली पट्टी) के नीचे जमा कीटों को 100 मि.ली. मिथाईल पेराथियान (मेटासिड) 50 ई.सी. या 300 मि.ली.

	फल ही नहीं लगते। बाग एक प्रकार का मीठा रस भी छोड़ता है जिससे पौधे पर काले रंग की फफूंदी जमा हो जाती है जो प्रकाश संश्लेषण में बाधा डालती है। यह कीट दिसम्बर से मई तक सक्रिय रहता है तथा जून से नवम्बर तक अण्डों के रूप में जमीन में रहता है। इसकी एक पीढ़ी होती है। जिन बागों में कई प्रकार के फलवृक्षों की वजह से भूमि की जुताई नहीं हो पाती, उनमें इस कीट का अधिक प्रकोप होता है।	क्विनलफाॅस (इलालक्स) 25 ई.सी. या डायजिनान (वासुडीन) 20 ई.सी. को 50 लीटर पानी घोलकर प्रति 50 वृक्षों पर मध्य जनवरी और फिर मध्य फरवरी में छिड़काव के लिए लगभग एक लीटर घोल की जरूरत पड़ती है। 500 मि.ली. मिथाईल पैराथियान मैटासिड) 50 ई.सी. या 1.5 लीटर क्विनफॉस (ईकालक्स) 25 ई.सी. या 1.25 लीटर डायजिनान (वासुडीन) 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी घोलकर प्रति एकड़ छिड़कने से पत्तों व टहनियों पर जमा कीटों को मारा जा सकता है। 3 अप्रेल व मई में वृक्षों से नीचे उतरती हुई, जो फंस गई हो या नीचे गिरी हुई मादाओं को सूखी पत्तियों के साथ इकट्ठा करके जला दें। 4 जून-जुलाई में वृक्षों के नीचे की जमीन उलट-पलट करें। ताकि सूर्य की गर्मी व परजीवी शत्रुओं से कीट के अण्डे नष्ट हो जायें। बाग को साफ सुथरा रखें, कचरे आदि को जला दें। नोट - बाग में सभी वृक्षों पर बैड लगायें। 2 वृक्षों के पत्ते व टहनियाँ भूमि या वनस्पति को न छूयें ताकि जमीन से बग वृक्षों परन चढ़ सकें।
12.आम का तेला या फुदका	तेला आम का एक मुख्य कीट है। इसके पीले भूरे शिशु व भूरे हरे पच्चड़ की शक्ल के पौढ़, नई पत्तियों, कलियों, फूल की डंडिया व बौर से रस चूसते है जिससे ये मुरझाकर सूख जाती है। ज्यादा प्रकोप से पूरे पेड़ खत्म हो जाते हैं। शिशु और प्रौढ़ दोनों ही समूहों में क्षति करते हैं तथा प्रौढ़ की अपेक्षा शिशु ज्यादा नुकसान करते	1 निर्धारित संख्या से ज्यादा पेड़ नहीं लगाने चाहिए ताकि हवा व रोशनी प्रचुर मात्रा में बाग में प्रवेश कर सके। अनावश्यक पेड़ों व झाड़ियों को काट दें। यह भी सुनिश्चित करे कि बाग में पानी का जमाव न हो ताकि जरूरत से ज्यादा नमी न हो। 2 बसंतकालीन फुटाव के तुरन्त बाद (फरवरी के आखिरी तक) 1.5 किलोग्राम कार्बेरिल (सेविन) 50 प्रतिशत घुलनशील पाउडर या 500 मि.ली. मैलाथियान

	हैं। शिशु फलों व उनके डंठलों से रस चूसते हैं जबकि प्रौढ़ पत्तियों की निचली सतह पर नुकसान करते हैं। यह कीट पत्तियों पर एक मीठा रस छोड़ता है जिससे काली फफंद आ जाती है और पत्तियाँ चिकनी हो जाती है। इसके शिशु 10 से 20 दिनों में बढ़कर प्रौढ़ (फरवरी से अप्रेल) बोर के समय होती है। दूसरी पीढ़ी (जून से अगस्त) से ज्यादा हानिकारक हैं। दूसरी पीढ़ी के प्रौढ़ सघन, छायादार व नमी वाले स्थान पर शीतनिष्क्रिय रहकर फरवरी में सक्रिय हो जाते हैं। जहां पर पानी का जमाव हो या घने वृक्ष हों, वहां यह कीट अधिक मात्रा में होता है।	(सायथियान) को 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें। इसे मार्च के अन्त में दोबारा भी छिड़कें।
13.आम का गोभ छेदक	आम के छोटे कलम चढ़ाए गए पौधों का यह मुख्य कीट है। पीले-नारंगी रंग की सुण्डियाँ शुरू में पत्तियों की मध्य शिराओं में छेद बनाकर व बाद में मुलायम प्ररोहां (शूटस) के बढ़ते हुए भागों के अन्दर सुरंग बनाकर 8-10 दिनों तक खाती रहती है। प्रकोपित प्ररोहें सूख जाती है व पत्तियाँ गिर जाती हैं जिससे नई बढ़तवार सूख जाती है। इसके छोटे व गोल प्रवेश द्वार से मूलमूत्र आदि निकलता रहता है। इस कीट की 3-4 पीढ़ियाँ होती है। जुलाई से अक्टूबर तक यह सक्रिय रहता है जबकि नवम्बर से मार्च तक प्यूपा बनकर शीत निष्क्रिय रहता है।1 क्षतिग्रस्त टहनियों व प्ररोहों	2 नई टहनियों व प्ररोहों पर 250 मि.ली. मिथाईल पैराथियान (मैटासिड) 50 ई.सी. या 1.0 किलोग्राम कार्बोरिल (सेविन) 50 डब्ल्यू.पी. या 400 मि.ली. डाईमैथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. या 300 मि.ली. मिनोक्रोटोफॉस (नुवाक्रान) 35 डब्ल्यू.एस.सी. का 500 लीटर पानी में घोलकर प्रति एकड़ छिड़काव करें।

	को तोड़कर नष्ट कर दें।	
14.आम का तना छेदक	इस कीट का प्रकोप कभी-कभी आम, शहतूत व अंजीर के वृक्षों में पाया जाता है। इसकी सुण्डियाँ पीली सफेद जो 6 से 8 सू.मी. लम्बी होती हैं तथा इनके मुखांग भी काफी मजबूत होते हैं। ये तनों व शाखाओं के अन्दर लकड़ी में सुरंग बनाकर खाती हैं तथा लकड़ी के रेशों को खाने की बजाय काटती है। सुरंग से एक चिपचिपा सा पदार्थ निकलता है। क्षतिग्रस्त शाखाओं से पत्तियाँ गिर जाती हैं तथा तने व टहनियाँ तेज हवा में टूट जाते हैं। प्रौढ़ जो 5-6 से.मी. लम्बे होते हैं तथा इसकी टांगे व एंटीना भी लम्बे होते हैं। यह शाखाओं की छाल खाती है व कम नुकसान पहुंचाती है। इसकी मई से जुलाई तक एक पीढ़ी होती है। पुराने व गिरे हुए वृक्षों पर इसका ज्यादा प्रकोप होता है।	**1** क्षतिग्रस्त तनों व मर रही शाखाओं को काटकर जला दें जिससे इनके अन्दर छिपी हुई सुण्डियाँ व प्यूपे मर जायें। 2 सुराख से बुरादा हटाकर 10 मि.ली. मिथाईल पैराथियान इमलरान (4 मि.ली. मैटासिड 50 ई.सी. को एक लीटर पानी में) को सुराखों के अन्दर डालें व मिट्टी से बन्द कर दें।
15.स्केल कीट	यह कीट छोटा गोल, हल्का भूरा या पीला भूरा होता है जो सफेद मोम जैसे चूर्णी पदार्थ से ढ़का रहता है। अण्डों से निकलते ही शिशु नवजात रस चूसते हैं। ये कीट मीठा रस भी छोड़ते है जिसकी वजह से काली चीटियाँ आती है और फफूंदी भी लग जाती है। इसके प्रकोप से वृक्षों की बढ़वार रूक जाती है। अक्टूबर से नवम्बर तक यह कीट सक्रिय रहता है व प्रौढ़ के रूप में शीत निष्क्रिय हो जाता है। नवजात पौधों व आम की कलमी किस्मों	1 प्रकोपित शाखाओं को काटकर जला दें। 2 500 मि.ली. मिथार्रल पैराथियान (मैटासिड) 50 ई.सी. या 1.25 लीटर डाइजिनान (बासुडीन) 20 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर मार्च व सितम्बर में प्रति एकड़ छिड़कें।

	पर इसका प्रकोप ज्यादा होता है।	
16.फलमक्खी	यह मक्खी अमरूद व आडू के साथ-साथ आम, नाशपती व नींबू पर भी नुकसान करती है। इसके प्रौढ़ घरेलू मक्खी जैसे होते हैं व इसकी उड़ने की क्षमता भी अधिक है। मादा मक्खी फलों में छेद करके छिलकों के बीच अण्डे देती ह। इसकी सुण्डियाँ फल के अन्दर रहकर गुद्दा खाती है। जिससे फल बेडौल हो जाते है तथा उनकी मांग (बाजार की कीमत) न बराबर होती है। सुण्डियाँ प्यूपा बनने के लिए अपने द्वारा बनाए गए छेद से निकलकर जमीन में गिर जाती है। इसकी कई पीढ़ियाँ होती है।	1 मक्खी से क्षतिग्रस्त फलों को प्रतिदिन एकत्रित करके दो फुट गहरा जमीन में दबा दें या भेड़ व बकरियों को खिला दें। 2 जून-मई ओर दिसम्बर-जनवरी में वृक्षों के आसपास की जमीन की गुड़ाई कर दें ताकि मक्खी के प्यूपे मारे जाएं। 3 500 मि.ली. मैलाथियान (सायथियान) 50 ई.सी. + 5 किलोग्राम गुड़ को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें अगर जरूरत हो तो यही छिड़काव 7 से 10 दिन के बाद फिर दोहरायें। नोट - मैलाथियान दवाई छिड़कने के 5 दिन बाद तक फलों को न तोड़े।
17.लाख बनाने वाला कीट	यह कीट बेर, अंजीर, पिलखन और पीपल को नुकसान पहुंचाता है। लाल रंग के शिशु जो चिपचिपे पदार्थ से ढ़के रहते है नवजात टहनियों से रस चूसते हैं जिससे पैदावार व गुणवत्ता में भारी कमी आती है। शिशुओं से निकले मल पर फफुंदी लग जाती है। इसका प्रकोप फैलता है। पुरानी बागों में जहाँ पर देखभाल अच्छी तरह से नहीं की जाती वहाँ पर इसका नुकसान ज्यादा होता है।	1 जो टहनियाँ इस कीड़े से क्षतिग्रस्त हों उन्हें फल लेने के बाद काटकर जला दें। 2 400 मि.ली. मोनोक्रोटोफास (नुवाक्रोन) 36 डब्ल्यू.एस.सी.600 मि0ली0 ऑक्सीडेमिटान मिथाईल (मेटासिस्टाक्स) 25 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर अगस्त-सितम्बर में प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़काव करें।
18.पत्ती लपेट	यह आडू का विनाशकारी कीट है व बादाम, नाशपाती तथा अलूचा पर भी हानि पहुँचाता है। इसके गहरे-हरे रंग के शिशु एवं पीले रंग के प्रौढ़ नवजात व बढ़ रहे प्ररोहों से रस चूसते हैं। प्रकोपित टहनियों की याँ मुड़ जाती हैं तथा उन पर फल काफी कम लगते हैं	1 500 मि0ली0 डाईमेथोएट, (रोगोर) 30 ई0सी0 को 500 लीटर पानी में मिलाकर नए फुटाव से पहले प्रति एकड़ छिड़कें। 2 जब फल मटर के दाने के बराबर हो तब उपर्युक्त दवाई का दोबरा छिड़काव करें। यदि फिर भी जरूरत हो तो 15

	जो पकने से पहले झड़ जाते हैं। इसके अलावा एक और जल माइजस परसिकी कलियों, पत्तियाँ व छोटे फलों से अप्रैल से जून तक रस चूसकर आडू को हानि पहुंचाता है।	दिन बाद दोबारा छिड़काव करें।
19.बेर की मक्खी	यह बेर का सबसे विनाशकारी कीड़ा हैं। यह भूरे-पीले रंग की मक्खी है जिसके वक्ष पर काले व पंखों पर भूरे सलेटी रंग के धब्बे होते हैं। मादा मक्खी फलों के छिलकों के नीचे अण्डे देती है। प्रकोमित फल काने हो जाते हैं जो कि खाने लायक नहीं रहते । ऐसे फल जल्दी पकते हैं व गिर भी जाते हैं। पूर्ण विकसित सूडियाँ प्यूपा बनने के लिए अपने द्वारा किए गए छेद से जमीन में गिर जाती हैं। इसका नुकसान ज्यादा मीठे, अगेती व पछेती फसल में होता है। यह मक्खी 7 से 24 दिन तक सुण्डी के रूप में रहती है। इसकी नवम्बर से अप्रैल तक 3-4 पीढीयाँ होती है।	1 नवम्बर में जब फल मटर के दाने जितने बड़े हो जाये तब पेड़ों पर 600 मि0ली0 आक्सीडिमेटान मिथाईल (मैटासिस्टाक्स) 25 ई.सी.या 500 मि0ली0 डायमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें। इसे मध्य दिसम्बर में फिर दोहरायें। 2 जनवरी के अन्त में 500 मि0ली0 मैलाथियान (सायथियान) 50 ई.सी. 5 किलोग्राम गुड़ को 500 लीटर पानी में मिलाकर प्रति एकड़ छिड़कें। 3 कीड़ों से क्षतिग्रस्त फलों को रोजाना एकत्रित करके दो फुट गहरा जमीन में दबा दें या बकरियों व भेड़ों को खिला दें। 4 मई-जून और दिसम्बर-जनवरी के महीनों में वृक्षों के आसपास अच्छी गुड़ाई कर दें। नोटः मैलाथियान छिड़कने के दो दिन बाद फलों को तोड़कर कम-से-कम आधा मिनट तक पानी में धोयें ताकि फलों पर दवाई का असर न रहे।
20.पत्ता मरोड़ अष्टपदी	यह लीची व अनार का मुख्य कीट है। शिशु सफेद व प्रौढ़ हल्के भूरे रंग के होते हैं। ये तेजी से बढ़ने वाले वृक्षों के पत्तियों की निचली सतह खुरच कर रस चूस लेते हैं जिससे पत्तियों पर छोटे सफेद धब्बे बन जाते हैं। ये धब्बे बाद	1 प्रकोपित पत्तियों व टहनियों को बार-बार तोड़कर जलाते रहें। 2 मि0ली0 डाईमेथोएट (रोगोर) 30 ई.सी. का नया फुटाव आने पर या प्रकोप शुरू होने पर 500 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें।

	में एक-दूसरे से मिल जाते हैं व गहरे भूरे रंग की मखमली तह बन जाती है। क्षतिग्रस्त पत्तियों मुड़कर गिर जाते हैं। गर्मी के शुष्क महीनों (अप्रैल-जून) में इसका प्रकोप ज्यादा होता है तथा मानसून शुरू होने पर कम हों जाता है जो कि सितम्बर में फिर शुरू हो जाता है। सर्दी के मौसम में इसका नुकसान काफी कम रहता हैं।	3 3.500 मि0ली0 मैथालियान (सायथियान) 50 ई.सी. को 500 लीटर पानी में मिलाकर फल पकने के कुछ पहले प्रति एकड़ के हिसाब से छिड़कें। यदि जरूरत हो तो 10 दिन बाद फिर छिड़काव करें। नोटः मैथालियान दवाई के छिड़कने के एक 4 सप्ताह तक फलों को न तोडें।
21.पक्षी	चिड़िया, तोते व कौवे आदि पक्षी भी फलों को काफी नुकसान पहुंचाते है।	1 इनके घोंसलों को अण्डों सहित अण्डे देने के मौसम में नष्ट करें। 2 पक्षी उड़ाने के यन्त्र से पक्षियों को दूर भगायें। बाग में भरा हुआ पक्षी टाँग देने से भी पक्षी नहीं आते। 3 कम स्तर पर फल वृक्षों को जाली से ढ़क कर भी पक्षियों से बचाया जा सकता है। 4 बाग में काफी शोर करने वाले पटाखे छोड़कर भी पक्षियों को दूर भगाया जा सकता है।

7.5 सारांश

कीट नियंत्रण के तीन मुख्य तरीके होते है, यांत्रिक नियंत्रण, सस्य क्रियाओं द्वारा नियंत्रण, तथा रसायन नियंत्रण। यदि कीट को समय पर नियंत्रित ना किया जाये तो इसका विपरित असर बागवानी फसलों के उत्पादन पर आ सकता है। कीटनाशकों को प्रयोग करते समय इनकी मात्रा तथा प्रयोग करने की विधि का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है।

बोध प्रश्न

1 कीट नियंत्रण के मुख्य तरीकों को समझाइए?

2 दीमक के नियंत्रण का तरीका समझाइए?

3 कीटनाषकों को प्रयोग करते समय कौनसी सावधानियां रखनी चाहिए?

4 मैलाथियोन छिड़कने के कितने दिन बाद तक फलों को नहीं तौड़ना चाहिए।

अ 2 दिन ब 5 दिन

स 15 दिन द 25 दिन

5 ''नींबू का सिल्ला'' के नियंत्रण के लिए निम्न में से कौनसा कीटनाषक प्रयोग किया जाता है?

अ डाईमैथोएटब ऑक्सीडीमेटान मिथाईल

स मोनोक्रोटोफासद उपरोक्त सभी

7.7 सदंर्भ सामग्री

1 Reddy, T.Y and Reddi, G.H.S., 2000, Principles of Agronomy, Kalyani Publishers, New Delhi.

2 शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस. के शर्मा एस. एल एवं नेकेला, एन.एस 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.

3 Singh, chhidda 1999., Modern Techniques of Raising Field Corps, Oxford & IBH publishing company private limited, New Delhi.

4 Singh, S.S 1993, Crop Management under Iirrigated and Rainfed Conditions, Kalyani Publishers, New Delhi.

5 गुप्ता, पंकज. 2011. स्प्रेअर का चुनाव, रखरखाव तथा सावधानियां । विश्व कृषि संचार (03): 54-63.

6 अहलावत आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलेंए रामा पब्लिशिंग हाउस मेरठ.

7 माथुर, वाय. के. एवं उपाध्याय, के. डी., कृषि कीट विज्ञान, रमा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ.

इकाई 8

एकीकृत कीट प्रबंधन

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य

8.1 प्रस्तावना

8.2 समन्वित कीट प्रबन्ध क्या है?

8.3 समन्वित कीट प्रबन्ध के सिद्धान्त

8.4 कीटनाशकों के प्रयोग में सावधानियां

8.5 भारत में विभिन्न फसलों पर रसायनिक कीटनाशकों का उपयोग

8.6 घान की फसल में समन्वित कीट प्रबन्ध

8.7 कपास की सफल में समन्वित कीट प्रबन्ध

8.8 गन्ना की फसल में समन्वित कीट प्रबन्ध

8.9 चना की फसल में समन्वित कीट प्रबन्ध

8.10 मक्का की फसल में समन्वित कीट प्रबन्ध

8.11 सोयाबीन की फसल में समन्वित कीट प्रबन्ध

8.12 सारांश

8.13 बोध प्रश्न

8.14 सदंर्भ सामग्री

8.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पष्चात आप यह जान पाऐगे कि

- एकीकृत कीट प्रबन्ध क्या होता है।
- एकीकृत कीट प्रबन्ध के सिद्धानत
- कीटनाषकों के प्रयोग में सावधानियां
- विभिन्न फसलों में एकीकृत कीट प्रबंध

8.1 प्रस्तावना

चालीस के दशक में कीट व्याधियों से फसल सुरक्षा के लिये पौध संरक्षण रसायनों के उपयोग की शुरूआत हुई। इस कदम को हरित क्रान्ति की सफलताके लिये आवश्यक माना गया। लेकिन समय को भी विचित्र गति है, किसी समय जिस उपलब्धि पर गर्व किया जाता था आज उसी के बारे में कृषि वैज्ञानिकों का समुदाय यह सोचने के लिये विवश हो गया कि कीटनाशी के उपयोग से उन्नत खतरों से वातावरण को विशेषतः मानव जीवन को कैसे सुरक्षित रखा जाये।

अब हमें उपर्युक्त खतरों में मानव को बचाने के लिये फसल सुरक्षा के ऐसे उपायअपनाने की आवश्यकता है जिसमें कीट रसायनों का कम से कम उपयोग हो और न्यूनतम आर्थिक स्तर

तक फसल को भी सुरक्षा प्रदान की जा सके। कीटनाशियों के अनियंत्रित उपयोग ने संक्षेप में निम्नांकित विपरित प्रदर्शित किये हैं-

1 कीड़े व अन्य हानिकारक जीव जिन्हें उनके परजीवी और भक्षक (predators and parasites)सामान्यतः नष्ट कर देते थे। अब इन परजीवी और भक्षकों के कीटनाशी रसायनों के उपयोग में काफी संख्या में नष्ट होने के कारण हानिकारक कीट व अन्य जीव फसलों को काफी नुकसान पहूँचाने लगे हैं।

2 कीड़े, मकड़ी और बीमारी के जीवाणुओं में कीटनाशी के प्रति प्रतिरोधिता बढ़ गई है यहां तक कि कई कीटनाशी अब कीटों के नियंत्रण में अप्रभावी साबित हो रहे हैं।

3 बढ़ते हुए कीटनाशी उपयोग ने फसल और उन्य उत्पादों को दूषित करने के साथ-साथ भूमि, वायु, सतही एवं भूमिगत उपज को भी प्रदूषित किया है। कृषक मजदूर एवं वैज्ञानिक कीटनाशी के निर्माण कार्य से जुड़े हुये है उन्हें केन्सर, चर्मरोग एवं टयूमर बनने की बीमारियों के खतरे बढ़ गयेहै। यदा कदा कीटनाशी लापरवाही से उपयोग से मनुष्य और जानवर अकाल मृत्यु के ग्रास बनते है। हाइड्कार्बन वर्ग रसायन शरीर की वसा में इकट्ठे होते रहते है ओर कालान्तर में स्वास्थ्य के लिये गम्भीर खतरे उत्पन्न करते है।

4 कीटनाशी के दुरूपयोग से अनेक नई जैवकीय घटनाऐं उत्पन्न हुए उनमें द्वितीय - कीट फैलाव, अलक्षित कीटों का संहार, भूमि उर्वरता में परिवर्तन, कुछ महत्वपूर्ण कीटों की अधिक बढ़वा आदि महत्वपूर्ण है।

5 कीटनाशी के उपयोग वृद्धि से कीटनाशी की कीमत में वृद्धि छिड़कने व भुरकने वाले यन्त्रों की कीमत और मजदूरी में बढ़ोतरी के साथ अधिकांश कीटनाशकों के निर्माण में काम आने वाले पेट्रोल की खपत में बढ़ोतरी हुई है इससे अहुत अधिक विदेशी मुद्रा की क्षति होती है।

8.2 समन्वित कीट प्रबन्ध क्या है?

खाद्य एवं कृषि समन्वित कीट प्रबन्ध को इस प्रकार परिभाषित किया है

''हानिकारक कीट एवं अन्य जीवों के विरूद्ध समन्वित अभियान वह विधि है जिसमें प्राकृतिक सन्तुलन में कम से कम परिवर्तन किये बिना हानिकारक जीवों को क्षति से आर्थिक स्तर से नीचे रखा जा सकें, ताकि प्रकृति के सीमित साधनों का कम से कम उपयोग हो और वातावरण प्रदूषित न्यूनतम हो''।

अर्थात् कीटनाशकों का कम से कम उपयोग करना और अन्य तरीकों के अपनाने पर जोर देना जिनमें फसल सुरक्षा कार्य में सफलता मिले। समन्वित कीट प्रबन्ध ऐसी फसल व्यवस्था को अपनाना, मुख्य कीटों एवं जीवों की पहचान एवं उसके प्राकृति दुश्मन और कारकों की पहचान करना है, जिनसे कीटों की संख्या में वृद्धि होती है। इसका उद्देश्य हानिकारकों की संख्या एक स्तर तक बनाये रखना है जिसमें फसल से आर्थिक उत्पादन प्राप्त हो सके।

स्काउटिंग कीटों की संख्या के सर्वेक्षण की प्रचलित विधि है। इसके साथ-साथ यान्त्रिक साधन जैसे स्पोर-ट्रेप, फेरोमाने ट्रेप, प्रकाश पाश आदि का भी हानिकारक जीवों की संख्या की जानकारी के लिए उपयोग में लाये जाते है। इस जानकारी का उपयोग पौध संरक्षण उपाय अपनाने

को समय निश्चित करने के लिये किया जा सकता है। वस्तुतः स्काउटिंग और मोनीटरिंग कार्यक्रम समन्वित कीट प्रबन्ध एवं परजीवी, कीटभक्षी एवं कीट पे्रथोजन की सुरक्षा के लिये आवश्यक है।

8.3 समन्वित कीट प्रबन्ध के सिद्धान्त

समन्वित कीट प्रबन्धन पाँच मुख्य बुनियादि कि सिद्धान्तों पर आधारित है -

1 कृषिगत नियंत्रण

2 यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण

3 जैविक नियंत्रण

4 विनियम नियंत्रण

5 रसायनिक नियंत्रण

1 कृषिगत नियंत्रण - इसमें किसान कीट के जीवन चक्र रहन सहन तथा उसकी आदतों के ज्ञान से लाभ उठा सकता है। जैसे खेत की जुताईउस समय करना जब हानिकारक कीट का जीवन अवस्थायें खेत में छिपी हों और वह कुचल कर मर जायें अथवा कीट जिस पौधे को पसन्द न करता हो उसको बोना इत्यादि। इस विधि में विभिन्न तरीकें अपना कर प्रबन्धन सम्भव होता है।

1) **प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करना -** फसल बुवाई में ऐसी प्रजातियों का चयन करना चाहियें जिसमें कीट एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता हो। प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग कर कीट से फसल को बचाया जा सकता है।

2) **शस्य आर्वतन -** हर साल एक सी फसल बोते रहने से उस क्षेत्र में उस फसल के प्रकोपी कीटों की संख्या निरन्तर बढ़ती जाती है और वे ज्यादा हानि करते है। जबकि फसल को बदल कर बोने से ऐसा सम्भव नहीं होता तथा कीट संख्या पर भी नियंत्रण रहता है। दूसरे वह कीट जो अपना जीवन चक्र एक वर्ष से अधिक समय में पूरा करते हैं यदि फसल बदल कर बो दी जाये, जो वह ऐसा नहीं कर पाते और मर जाते हैं।

3) **बीज बौनें, फसल लगाने एवं काटने के समय में हेर - फेर करना** - फसल बोनें के समय का भी कीट प्रकोप पर गहरा प्रभाव पड़ता है। जैसे यदि गेहूँ अक्टूबर में बोया जाये तो उस पर भूमिगत कीटों का प्रकोप अधिक होता है। तथा अंकुरित होते ही वह उन्हें अधिक मात्रा में काट गिराते है। जबकि यदि गेहूं नवम्बर में बोया जाये तो फसल पर कीट प्रकोप कम होता है।

यदि आलू की बुआई गहरी की जाये तो आलू माथ (पोटेटोमाथ) अण्डें नहीं रख पाती और वे प्रकोप से बच जाते हैं। यदि गन्ने की फसल को फरवरी से पहले ही काट लिया जाये और खेतों की सफाई एवं जुताई कर दी जाये तो बहुत से शीत निष्क्रिय कीट मर जाते है। गन्ना यदि अक्टूबर में बोया जाता है तो उसपर कीट प्रकोप कम होता है।फसल के काटने के समय का भी कीटों के जीवन पर गहरा - प्रभाव पड़ता है। यदि ज्वार के डण्ठलों की फरवरी के महिने से पहले की कुटी काट ली जाये तो उसमें चरी बेधक (काइलो स्पीसिज) की सभी शीत निष्क्रिय सून्डिया कट कर मर जाती है।

4) **स्वच्छ कृषि -** हानिकारक कीटों को पुरानी फसल से नई फसल के उगनें तक जीवित रखने तथा पुरानी से नई तक पहुंचाने का कारण अस्वच्छ कृषि है। यदि स्वच्छ खेती की जाय तो हानिकारक कीटों की संख्या बहुत कम हो जाती है। जिसके निम्न उपाय है -

1 **डुण्ठ नष्ट करना -** फसल काट लेने के बाद डुण्ठों ;ैजनइइसमे) को नष्ट कर देना चाहियें। ताकि उनमें छिपे कीट बेधक मर जाय। डुण्ठ यदि खेत में ही खड़े रहें तो कीटों के अतिरिक्त उन पर कवक रोग भी हर डण्ठलों अथवा कोमल पत्तों पर तब तक पलते रहते हैं जब तक कि नई फसल उत्पन्न नहीं हो जाती।

2 **कूड़ा साफ करना -** खेत में हुआ कूड़ा, सूखी पत्तियां और घास, हानिकारक कीटों को निष्क्रियता करते समय या प्यूपा रूप में शरण देती है।तथा अगले फसल में कीट संख्या बढ़ जाती है।

3 **फसलोंपरान्त गहरी जुताई तथा गुड़ाई -** फसलोंपरान्त खेत की गहरी जुताई तथा गुड़ाई कर अति आवश्यक होता है। क्योंकि मिट्टी में छिपे कीट तथा उनकी जीवन अवस्थायें जैसे अण्डे लारवा प्यूपा इत्यादि सभी कुचल करमर जाते है। मिट्टी के उलट जाने से कीट सतह पर आ जाते हैं और उनकों चिडिया इत्यादि खा मार डालती है। या अति धूप अथवा जाड़े के कारण स्वत ही मर जाते हैं। परजीवी कीट भी उन्हें आसानी से पा लेते हैं और नष्ट कर डालते है।

4 **झांगना तथा दूर - दूर लगाना -** सघन पौधों पर कीट प्रकोप अधिक होता हैं इसके विपरित यदि पौधे बराबर दूरी पर लगाये जायें तो पौधे स्वस्थ्य और मोटे होते हैं तथा कीटों का प्रकोप भी कम होता है।

5 **मिश्रित फसल -** मिल-जुली फसलों में एक ही प्रकार के उनके मध्य में स्थित दूसरी फसल अधिक हो जाता हैं तथा दूसरे के हानिकारक कीटों को रूकावट पैदा करते हैं। जिससे दोनों ही प्रकार के पौधे कीट के अधिक प्रकोप से बच जाते हैं। प्रायः गेहूं पर दिमक का प्रकोप अधिक होता है तथा चने पर सूंडियों का। यदि गेहूं और चने की पक्तियों के मध्य में एक पक्ति तोरी (म्तनबं ैंजपअं) की बो दी जाय तो इन फसलों में ये अरहर को क्रमानुसार पंक्तियों में बोया जाये तो ज्वार डयर वगके भारी प्रकोप से बच जाती है।

6 **प्रपंची फसल लगाना -** प्रंपची फसल लगाने का उद्देश्य मुख्य यदि कपास की फसल के साथ भिन्डी की फसल लगा दी जाय तो भिन्डी के पौधे कपास के पौधों से अधिक शीघ्रता से बढ़ते है और कपास पर प्रकोप करने वाले कीट भिन्डी के पौधें पर आकर्षित हो जाते हैं। और मुख्य फसल कपास इन कीटों के प्रकोप से बच जाती है। प्रपंची फसल लगाते समय इस बात का मुख्य रूप से ध्यान रखना चाहिये कि कीट फसल की अपेक्षा प्रपंची फसल को ज्यादा पसन्द करते हों। इसी प्रकार यदि कद्दु कुल के आस पास सनई या कपास बो दी जाय तो फल मक्खी का प्रकोप मुख्य फसल पर कम होता है।

7 **उचित खाद लगाना -** कच्ची गोबर की खाद लगाने से दीमक अधिक लगती है तथा फसल पर नाइट्रोजन की मात्रा अधिक देने पर रस चूषक कीटों का प्रकोप ज्यादा होता है। इसलिए यह आवश्यक है कि खाद सदैव उचित मात्रा में ही दी जाय।

जल-निष्कासन - जिन खेतों में पानी भरा रहता है उनमें नमी अधिक रहती है जिसके कारण कीटों का प्रकोप भी अधिक होता है।

2 यांत्रिक एवं भौतिक नियंत्रण

इस विधि में साधारण प्रकार के उपकरण कीटों को पकड़ने, मारने, रोकनें अथवा एकत्रित करने के लिए प्रयोग किये जाते है। जो निम्न हैं।

1 **हाथ से एकत्रित करना -** पौधों का वह भाग जिस पर कि अण्डे पायी जाती हैं हाथों से चुन कर नष्ट किये जा सकते है। उड़ने वाले हानिकारक कीटों की संख्या यदि कम हों तो उन्हें हस्ट-जाल द्वारा भी पकड़ कर नष्ट किया जा सकता है। टिड्डों को निम्फ आदि एकत्रित करने के लिए एक विशेष प्रकार के थैले का प्रयोग भी किया जाता है जिसको दो आदमी पकड़ कर खेत में चलते हैं तथा कीट के निम्फ को थैलें में एकत्र करन नष्ट किया जाता है।

2 **रोक लगाना -** कूदने वाले कीटों से फसल को बचाने के लिए श्वेत को चारों तरफ गहरी खाई खोद देते है। रेगनें वाले कीटों को रोकने के लिए नालियां खोद कर उसमें पानी भर देते हैं। जिससे कीट उसमें आकर भर जाते हैं फिर उनको मिट्टी डालकर भर देते हैं।

3 **प्रकाश प्रपंच -** यह उपकरण उन कीटों के विपरित प्रयोग किया जाता है जो कि रात्रि को प्रकाश पर आते है। इस उपकरण में एक बल्ब या दीपक लगा होता हैं उपकरण के नीचे एक बड़े बर्तन में पानी भर देते है। कीट प्रकाश में रात्रि में उपकरण के पास आता है तथा पानी के बर्तन भी गिर कर स्वतः मर जाता है।

4 **फिरोमोंस ट्रेप -** (लैंगिक पार्स) कुछ मुख्य माथ कीटों को उनके प्रजाति के 5 लैंगिक पाश प्रति हेक्टेयर लगा कर नर पतंगों को पकड़ा जा सकता है। 20 से 25 दिन के अन्तराल पर पाश के ल्योर को बदलने की आवश्यकता होती है।

3 जैविक नियंत्रण

अन चाहे कीट, जानवरों तथा पौधों को मारने या कम करने के लिए उनके प्राकृतिक शत्रुओं का प्रयोग जैविक नियंत्रण कहलाता है।

अनेक प्रकार की फंफूद, विषाणु एवं जीवाणु कीटों को रेाग ग्रसित कर उन्हें नष्ट करते हैं। फसल प्राकृतिक परिस्थितियों तंत्र में अपनी सम्पूर्ण क्षमता को उपज के रूप में परिवर्तित नहीं कर पाती क्योंकि उनकी उपज का कुछ भाग प्राकृतिक आपदाओं द्वारा नष्ट हो जाता है। और कुछ हानिकारक शत्रुओं द्वारा समाप्त कर दिया जाता है। इन हानिकारक शत्रुओं द्वारा कीट-व्याधि, जीवाणु - विषाणु इत्यादि को समाप्त करने के लिए समय-समय पर अनेकों रसायन विकसित होते रहते हैं। लेकिन रसायन आधारित फसल सुरक्षा से लम्बे समय के लिए सुरक्षा तो नहीं मिली लेकिन दीर्घकालिन समस्याओं जरूर मिली हैं। जैसे खाद्यानों में हानिकारक रसायनों के अवशेष्, कीटों में रसायनों के प्रति प्रतिरोधी क्षमता का विकास द्वितीयक हानिकारक कीटों का प्रस्फोअ एवं कीटों का पुनरूत्थान। प्रकृति में जितने हानिकारक शत्रु मौजूद हैं उनसे कई गुणा मित्र जीव उपलब्ध हैं। जो इनकी संख्या को हानिकारक सीमा के अन्दर ही नियंत्रित रखते हैं।

प्राकृतिक मित्र जीवों द्वारा फसलों के शत्रुओं का नियंत्रण कम खर्चीला प्रभावी और स्थाई उपाय है। तथा पर्यावरण पर इसका विपरित प्रभाव भी नहीं पड़ता है।

जैविक नियंत्रण प्राकृतिक कारकों के सहयोग के बिना आदमी के द्वारा उद्देश्यपूर्ण क्रिया कलापों के द्वारा प्राप्त किया जाता है। इसके साथ ही सभी तरह के अरसायनिक नियंत्रण भी जैविक नियंत्रण नहीं है जैसे प्रतिरोधी किस्में, शस्य क्रियायें एवं सेमियों केमिकल्स का प्रयोग क्योंकि इनमें हानिकारक कीट सीधे प्रभावित होते हैं। जबकि यह क्रियायें मिल कीटों के संग्रहण इत्यादि में अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होती है। पादप प्रजनन द्वारा पौधे के ऐसी जातियों का विकास जो कि नाशक कीटों के लिए विषैली या हानिकारक हों जैविक नियंत्रण के अंग नहीं हो सकती है। जबकि ऐसी पादप किस्मों का विकास जिनके द्वारा मित्र कीटों का संरक्षण, हानिकारक कीटों को आसानी से ढूंढने एवं नष्ट करने में समक्ष हों जैविक नियंत्रण कहलाते हैं। इस विधि में हानिकारक कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं को खोजकर एकत्रित कर तथा प्रयोगशाला में अधिक से अधिक संख्या में उत्पादित कर हानिकारक कीटों के विरूद्ध उचित समय पर छोड़ा जाता है। जहाँ पर हानिकारक कीटों के अण्डों, सुंडियों तथा प्रोढ़ों को नष्ट कर देते है।

4 विनियम नियंत्रण

सरकार नियम बनाकर हानिकारक कीटों को अपने देश में आने से रोकती है, अपने देश के कीओं को बढ़ने एवं फैलने से रोकती है एवं उनको मारने वाले कीट विषों को निरीक्षण करती है ताकि उनमें कोई मिलावट न हो और सदैव कीट संहार में खरे उतरें। इस प्रकार के कीट नियंत्रण को विनियम नियंत्रण कहा जाता है।

5 रसायनिक नियंत्रण

रसायनिक पदार्थों द्वारा कीटों को मारना, भगाना या उनकी संख्या को कम करना रसायनिक कीट नियंत्रण कहलाता है। तथा वे पदार्थ जो ऐसा करने में सक्षम होते हैं। कीट विष कहलाते हैं।

कीट विष बाजार में पाउडर, इमल्शन एवं घोल के रूप में मिलते हैं।

पाउडर - यह दो प्रकार के होते हैं -

1 **विष धूलि -** ये बाजार में तैयार रूप में मिलते हैं और 1,2,3,5,7 या 10 प्रतिशत धूलि के रूप में होते है इनको ज्यों का त्यों बिना कुछ मिलाये 20 से 25 किग्रा प्रति हेक्टेयर आवश्यकतानुसार प्रयोग करते हैं।

जल - व्यासारित पाउडर - लगभग सभी आर्गेनिक कीट-विष पानी में अघूलनशील होते हैं और इनको जब पानी में घोला जाता है तो शीघ्र ही तली में बैठ जाते हैं। इस कारण इसमें एक आर्द्रक साथ में मिलाते हैं। जो इन कणों को पानी में लटकायें रखता है। इस प्रकार इनका सदैव अपार दर्शक लटका हुआ घोल बनता है। इन्हें सुखा भूरकनेके लिए कभी प्रयोग नहीं करना चाहियें।

2 **इमल्सन -** बहुत से आर्सनिक कीट विष, इथर, जायीलन, पेट्रोल, मिट्टी के तेल अथवा तारपीन के तेल आदि में घूलनसील होते है। लेकिन पानी में नहीं। यदि इसमें घुले सान्द्र विलयन में इमल्सिफायर मिला दिया जाय तो पानी के साथ इमल्सन बनाते है।

3 **घोल -** तेल, इथा अथवा पैराफिन तेलों में घूले हुए कीट विष बाजार में घोल रूप में बिकते हैं। इनको घरों में ज्यों का त्यों हस्त फुआरक द्वारा प्रयोग किया जाता है।

कीट विष दो प्रकार के होते है -

1 अकार्बनिक -

1 आर्सेनिक यौगिक

2 फ्लोरिन यौगिक

3 गंधक व चूना गंधक

4 पारा व ऐंटिमनी के यौगिक आदि

2 **कार्बनिक कीट विष** -

1 जानवरों से प्राप्त कीट विष - नैरीजआक्सीन

2 पौधों से प्राप्त कीट विष

1 निकोटिन व उनके यौगिक

2 पायरेध्रम

3 रोटनोन व तेल इत्यादि

3 हाइड्रोकार्बन

1 मिट्टी का तेल

2 नैष्था

4 संश्लेषित कार्बनिक यौगिक

1 क्लोरिनेटेट हाइड्रोकार्बन

8.4 कीटनाशकों के प्रयोग में सावधानियां

फसल संरक्षण के लिए कीटनाशकों का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है लेकिन ये बहुत जहरीले तथा महंगे होने की वजह से इनका प्रयोग बहुत सावधानी से करना चाहिए।

अ कीटनाशी खरीदते समय -

1 हमेशा एक छिड़काव के लिए जितनी दवा की जरूरत है उतनी ही खरीदे जैस 100, 250, 500 और 1000 ग्राम/लीटर

2 कीटनाशक लाइसेंस शुदा विश्वसनीय दुकानदार से ही खरीदें।

3 कीटनाशक का डिब्बा वास्तविक सील से बंद हो तथा टूटा - फूटा न हो, सही लेबल डिब्बे पर अच्छी तरह चिपका हुआ हो। जहर खत्म होने की तारीख खरीदते समय पड़ लेनी चाहिए।

ब कीटनाशी भंडारण में

1 कीटनाशकों को भंडारण घर में न करें।

2 उनको उनके वास्तविक डिब्बों में सील सहित रखें।

3 कीटनाशकों को किन्हीं और डिब्बों में बदल कर न रखें।

4 कीटनाशकों को खोन - पीने के सामान के साथ तथा बच्चों की पहुँच से दूर ठंडी जगह पर ताले में रखें।

5 कीटनाशकों को सूर्य की रोशनी या बारिश से दूर रखें।

स कीटनाशक काम में लेते समय -

1 अकेले आदमी को छिड़काव का काम नहीं करना चाहिए तथा बच्चों व पशुओं को छिड़काव क्षेत्र से दूर रखें।

2 डिब्बे को खोलने से पहले निर्देश अच्छी तरह पढ़ ले। छिड़काव यंत्र रिसने वाला नहीं होना चाहिए तथा घोल बनाते समय कीटनाशक डालने के लिए कीप का प्रयोग करें। घोल को लंबी छड़ी से अच्छी तरह मिलावें।

3 छिड़काव पौधांे पर समान रूप से करें ताकि पौधे का हर भाग कीटनाशक के संपर्क में आ जाए। जहां तक संभव हो छिड़काव का काम सुबह-शाम ही करें।

4 छिड़काव के समय खाना-पीना व धूमपान न करें।

5 कीटनाशक का घोल शरीर पर नहीं गिरना चाहिएउसके लिए शरीरको कपड़ों से अच्छी तरह ढककर छिड़काव करे मुंह पर पतला कपड़ा बांधे तथा हाथों में दस्ताने पहनें।

6 बरसात आने की स्थिति या तेज हवा में छिड़काव न करें। छिड़काव हवा के विपरित दिशा में कभी न करें।

7 छिड़काव कमर से नीचे की ओर करे ताकि श्वास के साथ अंदर न जाए। नोजल में मुंह से फूंक भी न मारे।

8 कीटनाशक का प्रभाव शरीर पर दिखते ही तुरंत डॉक्टर के पास जावें।

द कीटनाशक काम में लेने के बाद

1 छिड़काव के तुरंत बाद साबुन से स्नान करें तथा कपड़ों को धोये।

2 छिड़काव यंत्रों को साबुन के घोल से अच्छी तरह साफ करके रखें।

3 खाली डिब्बों को तोड़कर मिट्टी में गाढ़ दे। बचे हुए कीटनाशकों को सुरक्षित स्थान पर ताले में रखें।

4 छिड़काव किए हुए खेत मेंन घूमे तथा पशुओंको दूर रखें।

5 फल-सब्जियां व हरे चारे को छिड़काव के बाद 8-10 दिन तक काम में न लेवें।

8.5 भारत में विभिन्न फसलों पर रसायनिक कीटनाशकों का उपयोग

क्र. सं.	फसल	फसल क्षेत्रफल (प्रतिशत)	कीटनाशक उपयोग (प्रतिशत)
1	कपास	5	54
2	धान (चावल)	24	17
3	फल एवं सब्जियां	3	13
4	धान, दलहन एवं तिलहन	58	2
5	गन्ना	2	3
6	बागानी फसलें	2	8
7	अन्य	6	3

कपास के मुख्य हानिकारक कीटों का आर्थिक दहलीज सीमा (ई.टी.एल.)

क्र. सं.	फसल	फसल की अवस्था (दिनों में)	कीटनाशक उपयोग (प्रतिशत)
1	हारा तेला	1-50	दो हरा तेला/प्रति पत्ती
2	एफिड (चेपा)	1-50	10-20 प्रतिशत पौधों का ग्रसित होना या 50 प्रतिशत पौधों की शहदनुमा चिपचिपा पदार्थ होना (10 चेपा प्रति पत्ती
3	थ्रीप्स या रसाद कीट	1-30	10 कीट/ पत्ती या 15-20 प्रतिशत पौधों का ग्रसित होना
4	कपास की सफ़ेद मक्खी	30-110	8-10 व्यस्क/ पत्ती सफेद मक्खी या 20 शिशु / पत्ती
5	धब्बेदार सूंडी	35-110	5-10 प्रतिशत बाल में प्रकोप
6	गुलाबी सूंडी	65-110	5-10 प्रतिशत बाल में प्रकोप
7	अमेरिकन बॉलवर्म	25-60	1 अण्डा / पत्ती या 5-10 बालवर्म प्रतिशत बाल में प्रकोप
8	तना घुन	65-110	1-2 सूंडी/ग्राम मिट्टी या 10 प्रतिशत से अधिक बाल में प्रकोप
9	सूत्रकृमि (नेमटोडा)	25-60	1-2 सूंडी प्रति ग्राम मिट्टी में

8.6 घान की फसल में समन्वित कीट प्रबन्ध

प्रमुख नाशीकीट

1 घान की फुदका (बी.पी.एच. डब्लुबी.पी.

2 तना छेदक

3 घान का हिस्पा

4 फड़का (ग्रास होपर

5 तम्बाकू की सुण्डी

6 गंधी बग आदि

समन्वित कीट प्रबन्ध

1 भूमिगत एवं सुसुप्तावस्था में पड़े कीड़ों तथा हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट करने के लिये खेत की गर्मियों में गहरी जुताई करनी चाहिये तथा फसल के अवशेषों व खपतवारों को निकाल कर नष्ट करें।

2 कीट प्रतिरोधी किस्मों के स्वस्थ बीजोंकी उपचारित करके बुवाई करें।

3 प्रारम्भिक अवस्था में कीड़ों के प्रकोप से बचने के लिये पौध की जड़ों को क्लोरोपायरीफाॅस के घोल में डुबोकर तथा शीर्ष भाग को काट कर रोपाई करें।

4 संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग तथा समय पर सिंचाई करें। पौध से पौध की दूरी थोड़ी ज्यादा रखें ताकि पौध की जल्दी बढ़वार हो सकें जिससे पौधे में कीड़ों के प्रति सहनशीलता बढ़ जाती है।

5 मित्र कीड़ों को आकृषित करने के लिये अन्तशष्य या फसल चक्र के रूप में अरहर की फसलें काम में लेवें।

6 तना छेदक कीट के अण्डे समूहों को इकट्ठा करके नष्ट करें तथा पौधों के प्रभावित भाग को भी काट कर जला देना चाहिये।

7 तना छेदक, शीर्ष भेदक आदि कीड़ों की रोकथाम के लिये परजीवी कीट, टशईकोग्रामा जापोनिकम 50,000 प्रति हेक्टर सप्ताह छः बार प्रयोग करें।

8 कीट के प्रकोप की प्रारम्भिक अवस्था में नीम से बने कीटनाशकों का प्रयोग करें।

9 उपरोक्त सभी उपाय काम लेने के बाद भी अगर कीड़ों की संख्या आर्थिक नुकसान सीमा ई.टी.एल. पर पहुंचे तो सिफारिश किये गये रासायनिक कीटनाशक जैसे फोरेट, कारबोफयूरॉन, मिथाईल पैराथियान, एण्डोसल्फान, फास्फोमिडान आदि प्रयोग करें।

8.7 कपास की सफल में समन्वित कीट प्रबन्ध

प्रमुख कीटनाशी

1 सफेद मक्खी

2 मोयला एफिड

3 हरा तेला जैसिड़

4 अमेरिकन सुण्डी

5 चित्तीदार सुण्डी

6 गुलाबी सुण्डी आदि

समन्वित कीट प्रबन्ध

1 खेत की गहरी जुताई करके फसल के अवशेषों तथा खपतवारों को नष्ट करें।

2 बीज को अप्रैल माह के अन्त तक प्रधुमित फ्यूमिगेसन कर देना चाहिए।

3 कीट प्रतिरोधी किस्मों के स्वस्थ बीज काम में ले तथा बुवाई से पूर्व बीज को एक लीटर सलफ्यूरिक एसिड गधंकका तेजाब प्रति10 कि.ग्रा. बीज तथा केप्टान 3 ग्राम प्रति कि.ग्रा. की दर से उपचारित करें।

नोट - बीज को सल्फूरिक एसिड से उपचारित करने के तुरन्त बाद साधारण पानी से अच्छी तरह धोये।

4 बुवाई समय पर करें तथा उपयुक्त फसल चक्र अपनाये।

5 मित्र कीड़ों लेडी बर्ड बीटल, क्राइसोपरला आदि को आकृषित करने तथा शत्रु कीड़ों को अन्य फसलों पर आकृषित करने के लिए कपास की 10 लाइनों के बीच अन्तशष्य के रूप में 2 लाईन चवला या मक्का टैंप फसल के रूप में अरण्डी की बुवाई की बुवाई करें।

6 बालवर्म सुण्डियां को कम करने के लिये सुण्डियों को हाथ से पकड़कर तथा प्रभावित फूल, बाल डोडे एवं शीर्ष तनों को काट कर नष्अ करें।

7 परभक्षी पक्षियों जैसे कोआ, मैना आदि के बैठने के लिये 4-5 लकड़ी के अड्डे प्रति हेक्टेयर बनाये।

8 रस चूसने वाले कीट दिखाई देने पर क्राईसोपरला 50,000 प्रति हेक्टेयर तथा बालवर्म दिखाई देने पर ट्राईकोग्रामा चिलोनिस 1.5 लाख प्रति हेक्टर एक सप्ताह के अंतराल पर 5- 6 बार प्रयोग करें।

9 अमेरिकन सुण्डी तथा तम्बाकु की सुण्डी रोकथाम के लिये एन.पी.वी. 450 एल.ई. प्रति हेक्टर 15 दिन के अंतराल पर तीन बार प्रयोग करें।

10 कीड़ों की प्रारम्भिक अवस्था में नीम से बने कीटनाशकों का प्रयोग करें।

11 उपरोक्त सभी उपाय काम लेने के बाद भी अगर कीड़ों की संख्या ई.टी.एल. से ज्यादा होती है तो सिफारिश किये गये रासायनिक कीटनाशक जैसे मिथाईल पैराथियान, एण्डोसल्फान, फास्फोमिडान, मोनोक्रोटोफाॅस, फेनवलरेट आदि प्रयोग करें।

8.8 गन्ना की फसल में समन्वित कीट प्रबन्ध

प्रमुख नाशीकीट

1 सफेद मक्खी

2 पाईरिला

3 शीर्ष भेदक

4 तना भेदक

5 जड़ भेदक

6 सफेद लट

7 दीमक आदि

समन्वित कीट प्रबन्ध

1 कीट प्रतिरोधी किस्मों के स्वस्थ गन्ने के टुकड़े रोपाई हेतु काम में लेवे। ध्यान यह रखें कि टुकड़ों का कटा हुआ लाल व खोखला नहीं होना चाहिये।

2 गन्ने के टुकड़ों को बुवाई से पूर्व उबलते पानी में 2 घन्टे तक डुबोये तथा इसके बाद 0.1प्रतिशत मैलाथियान एवं 0.1 प्रतिशत बैवस्टीन के घोल से उपचारित करें।

3 बुवाई निर्धारित दूरी पर 20 से.मी. गहरी लाईनों में करें तथा समय समय पर खरपतपार निकालने व मिट्टी चढ़ाने का कार्य करें।

4 समय-समय पर फसल का निरिक्षण करके कीट के अण्ड समूहों प्रभावित पत्तियों आदि को नष्ट करें।

5 सन्तुलित मात्रा में खाद व उर्वरकों को प्रयोग करें तथा सीमित मात्रा में सिंचाई करें क्योंकि अधिक पानी देने से सफेद मक्खी, पाईरिला, शीर्ष भेदक आदि का प्रकोप बढ़ता है।

6 तना छेदक, शीर्ष भेदक आदि कीड़ों की रोकथाम के लिये रोपाई के 5-10 दिन बाद ट्राईकोग्रामा 50000 प्रति हेक्टर 10 दिन के अन्तराल पर 8-10 बार तथा पाईरिला के लिये 3-4 लाख इपिरिकेनिया प्रति हैक्टर प्रयोग करें।

7 कीड़ों के प्रकोप की प्रारम्भिक अवस्था में नीम से बने कीटनाशकों का प्रयोग करें।

8 फसल के अवशेषों को नष्ट करने के लिये फसल को जमीन की सतह से बराबर से काटे तथा अवशेषों को जलाकर नष्ट करें।

9 उपरोक्त सभी उपाय काम लेने के बाद भी अगर कीड़ों की संख्या ई.टी.एल. से ज्यादा होती है तो सिफारिश किये गये रासायनिक कीटनाशक जैसे फोरेट, कार्बोफ्यूरॉन, एण्डोसल्फान, मोनोक्रोटोफाॅस आदि प्रयोग करें।

8.9 चना की फसल में समन्वित कीट प्रबन्ध

प्रमुख नाशीकीट

1 फली छेदन (हेलिकोवरपा आरमीगीरा)

2 कटवर्म

3 दीमक आदि

समन्वित कीट प्रबन्ध

1 भूमिगत कीट, सुसुप्तावस्था में पड़े कीड़ों के अण्डे व शंकु खरपतवार तथा फसल के अवशेषों को नष्ट करने के लिये गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।

2 कीट प्रतिरोधी किस्में बुवाई के लिये काम में लेवे।

3 बीज को बुवाई से पूर्व थायरम 3ग्राम/कि.ग्रा. बीज व ट्राइकोडरमा 3-4 ग्राम प्रति कि.ग्रा. बीज की दूर से उपचारित करें।

4 अन्तशष्य के रूप में चने की 7 लाईनों के बाद 2 लाइन सरसों की बुवाई करें।

5 दो से तीन वर्ष का बिना दाल वाली फसलों जैसे मक्का, गेहूं आदि के साथ फसल चक्र अपनाये।

6 खेत में चिड़िया, मैना आदि पक्षियों को बैठने के लिये लकड़ी के अड्डे बनायें ताकि ये लटों को पकड़कर खा सकें।

7 लाईट ट्रेप व फेरोमोन टैªप की सहायता से नर पतंगों को पकड़कर नष्ट करें।

8 फली छेदक की प्रारम्भिक अवस्था में ही एन.पी.वी. 250 एल.ई. प्रति हैक्टर की दर से 10-15 दिन के अंतराल पर तीन बार प्रयोग करें।

9 कम्पोलिटिस क्लोरायडी नामक परजीवी 1.0 - 2.0 लाख प्रति हैक्टर की दर से 3-5 बार प्रयोग करें।

10 कीड़ों की प्रारम्भिक अवस्था में नीम से बने कीटनाशकों का प्रयोग करें।

11 उपरोक्त सभी उपाय काम लेने के बाद भी अगर कीड़ों की संख्या ई.टी.एल. से ज्यादा होती है तो सिफारिश किये गये रासायनिक कीटनाशक जैसे मिथाईल पैराथियान, एण्डोसल्फान, मोनाक्रोटोफाॅस आदि प्रयोग करें।

8.10 मक्का की फसल में समन्वित कीट प्रबन्ध

1 तना छेदक

2 मोयला (चेपा)

3 शैन्य कीट (आर्मी वर्म)

4 दीमक आदि

समन्वित कीट प्रबन्ध

1 फसल कटाई के बाद फसल के अवशेषों, खरपतवार आदि को नष्ट करने के लिये खेत की गहरी जुताई करें तथा भूमिगत कीड़ों व सुसुप्तावस्था में पड़े कीड़ों को नष्ट करने के लिये गर्मियों में जुताई करें।

2 दीमक के प्रकोप से बचने के लिए गोबर की खाद को अच्छी तरह सड़ा गलाकर प्रयोग करें तथा नियमित रूप से सिंचाई करें।

3 कीट प्रतिरोधी किस्मों के स्वस्थ बीजों को उपचारित करके बुवाई के लिये काम में लेवें।

4 खाद व उर्वरकों का प्रयोग संतुलित मात्रा में करें क्योंकि अधिक मात्रा में नाइट्रोजन युक्त उर्वरकों को प्रयोग करने में कीड़ों का प्रकोप बढ़ता है।

5 तना छेदक की रोकथाम के लिये परजीवी कीट ट्राकोग्रामा 2 - 2.5 लाख प्रति हैक्टेयर की दर से एक सप्ताह के अंतराल पर 4-5 बार प्रयोग करें।

6 मोयला की रोकथाम के लिए लेडी बर्ड बीटल (कोक्सीनिला) 50-60 हजार प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करें।

7 कीड़ों की प्रारम्भिक अवस्था में नीम से बने कीटनाशकों का प्रयोग करें।

8 उपरोक्त सभी उपाय काम लेने के बाद भी अगर कीड़ों की संख्या ई.टी.एल. पहुँचती है तो सिफारिश किये गये रासायनिक कीटनाशक जैसे मिथाईल पैराथियान, फोरेट, एण्डोसल्फान, मोनोक्रोटोफॉस आदि प्रयोग करें।

8.11 सोयाबीन की फसल में समन्वित कीट प्रबन्ध

प्रमुख नाशीकीट

1 तना मक्खी

2 सफेद मक्खी

3 चक्रभृंग (गर्डल बीटल)

4 समीलूपर

5 तम्बाकू की सुण्डी

6 अमेरिकन सुण्डी

7 बिहारी सुण्डी

8 दीमक आदि

समन्वित कीट प्रबन्ध

1 भूमि में सुषुप्त अवस्था में पड़े कीडों व खरपतवार को नष्ट करने के लिये फसल की कटाई के तुरन्त बाद व गर्मियों में खेत की गहरी जुताई करें।

2 फसल की बुवाई जून के अंतिम सप्ताह से जुलाई के प्रथम सप्ताह तक कर देनी चाहिये।

3 कीट प्रतिरोधी किस्मों के बीजों को उपचारित करके बुवाई करें।

4 संतुलित उर्वरकों को प्रयोग करें क्योंकि अधिक नत्रजन युक्त उर्वरकों के प्रयोग से कीड़ों का प्रकोप अधिक होता है।

5 फसल की प्रारम्भिक अवस्था में कीड़ों की संख्या कम करने के लिये कीट व रोग ग्रसित पौधों को जलाकर नष्ट करें।

6 कीड़ों के पतंगों को लाईट ट्रेप व फेरोमोन ट्रेप की सहायता से पकड़कर नष्ट करें।

7 ट्राइकोग्रामा नामक परजीवी 1.0-2.0 लाख प्रति हेक्टर की दर से 8-10 दिन के अन्तराल पर 3-5 बार प्रयोग करें।

8 सुण्डियों की रोकथाम के लिये एन.पी.वी. 350 एल.ई. या बी.टी. 1.0 लीटर प्रति हैक्टर की दर से 10-15 दिन के अन्तराल पर 3-4 बार छिड़काव करना चाहिये।

9 कीड़ों की प्रारम्भिक अवस्था से ही नीम से बने कीटनाशक का प्रयोग करें।

10 उपरोक्त सभी उपाय काम लेने के बाद भी अगर नुकसान दायक कीड़ों की संख्या ई.टी.एल. से ज्यादा होती है तो सिफारिश किये गये रासायनिक कीटनाशक जैसे डाइमिथोइट, मोनाक्रोटोफाॅस, एसिफेट,क्यूनारूफास आदि प्रयोग करें।

8.12 सारांश

कीटनाशी के उपयोग ने हमारेसमक्ष बहुआयामी खतरे प्रस्तुत किये है इसके उपयोग से भूमि, जल, वायु, आहार आदि में प्रदूषण बढ़ रहा है। इसी के साथ प्रकृति में जैविकी असन्तुलन में वृद्धि हुई है। हानिकारक कीट, जीवाणु, फंफूद आदि के नियन्त्रण का उपयोग में लाये जाने वाले पौध संरक्षण रसायन हमारे मित्र कीट फंफूद, जीवाणु आदि को भी नष्ट कर देते है, स्वयं हानिकारक कीटों में भी विभिन्न कीट नाशक रसायन के प्रति प्रतिरोधता में निरन्तर वृद्धि होती रहेगी। सब्जियां, अण्डे, मांस, मछली यहां तक कि माँ के दूध जैसे विशुद्ध पदार्थों में भी कीटनाशक दवाओं के अवशेष पाये गये है जिनका मानव स्वास्थ्य पर दुषित प्रभाव दिखाई दे रहा है। देश में इस समय लगभग कीट-व्याधियां, सूत्र कृमि और खरपतवार नियंत्रण के लिये लगभग 6-7 हजार करोड़ रूपये के कीटनाशी प्रति वर्ष काम में लिये जा रहे हैं। वर्ष 1980 में नब्बे हजार अन कीटनाशियों का भारत में उपयोग किया जाता था जिसके इस शताब्दी के अन्त तक दो लाख टन हो जाने की सम्भावना है।

8.13 बोध प्रश्न

1 एकीकृत कीट प्रबंध के पांच मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

2 धान की फसल में एकीकृत कीट प्रबंध समझाइएं

3 कपास की एकीकृत कीट प्रबंध समझाइए।

4 सेायाबीन की फसल में निम्न में से कौनसा परजीवी एकीकृत कीट प्रबंध में प्रयोग किया जात है।

अ ट्राइकोग्राम ब राइजोबियम

स दोनों द कोई नहीं

5 यांत्रिक एवंम भौतिक नियंत्रण में निम्न में से किसका प्रयोग किया जात है?

6 ट प्रकाष प्रपंच स दोनो

7 स फिरोमोंस ट्रेप द कोई नहीं

8.14 सदंर्भ सामग्री

8. Reddy, T.Y and Reddy, G.H.S., 2000, Principles of Agronomy, Kalyani publishers, New Dehli.
9. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
10. Singh, Chiidda. 1999., Modern Techniques of Raising Field Crops, Oxford & IBH publishing company private limited, New Dehli.
11. Singh, S.S., 1993, Crop Management under Iirrigated and Rainfed Conditions, Kalyani Publishers, New Dehli.
12. गुप्ता, पंकज. 2011. स्प्रेअर का चुनाव, रखरखाव तथा सावधानियां । विश्व कृषि संचार (03): 54-63.
13. अहलावत, आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलेंए रामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ.
14. माथुर, वाय. के. एवं उपाध्याय, के. डी., कृषि कीट विज्ञान, रमा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ.

इकाई 9

कीटनाशक छिड़काव के उपकरण

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 यन्त्रों का वर्गीकरण

9.3 फुहार यन्त्र (Sprayers) -

9.4 नोजिल्स (Nozzles)

9.5 डस्टर्स (Dusters)

9.6 स्प्रेयिंग एवं डस्टिंग का तुलनात्मक अध्ययन

9.7 धूम्रण यन्त्र (Fumigators)

9.8 किट-विष प्रसारण यन्त्रों के प्रयोग करते समय सावधानियाँ

9.9 छिड़काव पम्प व नोजल की देख रेख

9.10 सुरक्षात्मक तरीके से खरपतवार नाशक का रखरखाव

9.11 सारांश

9.12 बोध प्रश्न

9.13 संदर्भ सामग्री

9.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- कीटनाशकों के छिड़काव में इस्तेमाल विभिन्न उपकरणों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- फुहार यंत्र (Sprayers), नोजल्स (Nozzles), डस्टर्स (Dustors), धूम्रण यंत्र (Funigaotes) आदि के बारे में जानकारी प्राप्त कर पाऐंगे।
- इन यंत्रों को प्रयोग करते समय कौनसी सावधानियां रखनी चाहिए।

9.1 प्रस्तावना

कीट-विष प्रसारण यन्त्रों की क्षमता (Efficiency) तथा योग्यता (Ability) इस बात पर निर्भर होती है कि

उसकी सहायता से कम से कम दवा प्रयोग करके अधिक से अधिक कीटों को मारा जा सके। यह तभी संभव है जब ये यन्त्र कीट विष को बराबर मात्रा में काफी दूर फैला सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये विभिन्न प्रकार की कीटनाशियों के लिये भिन्न-भिन्न प्रकार के यन्त्र प्रयोग किये जाते हैं -

(1) छिड़काव करने के लिये - स्प्रेयर्स (Sprayers) या फुहार यन्त्र।

(2) धूल का बुरकाव करने के लिये - डस्टर्स (Dusters) या बुरकाव यन्त्र।

(3) धूम्रक पदार्थों के लिये - फ्यूमीगेटर्स (Fumigators) या धूम्रण यन्त्र।

अधिक प्रयोग में आने वाले यन्त्रों को हम निम्न चार्ट द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं -

9.2 यन्त्रों का वर्गीकरण

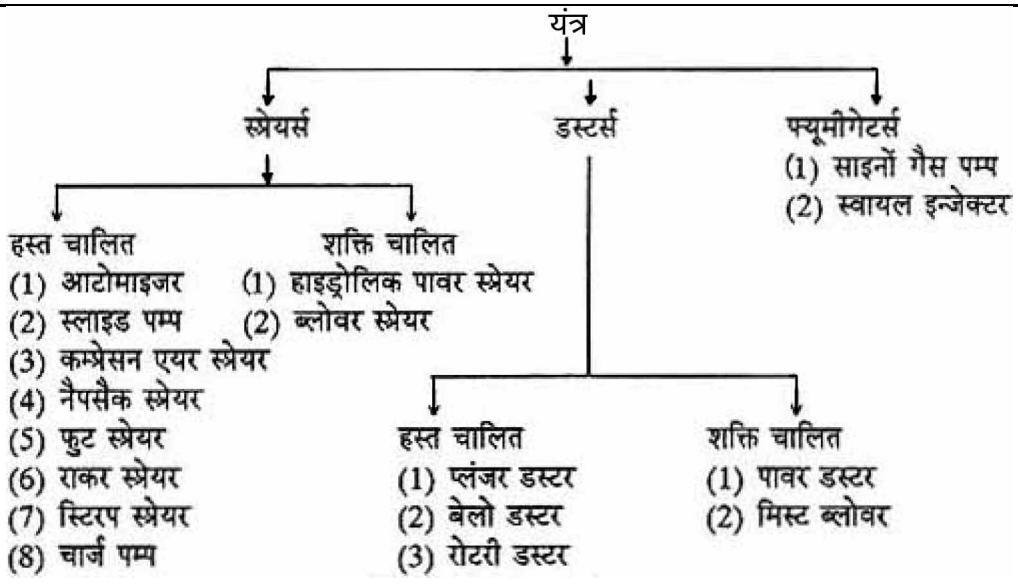

1. उदर विषों के प्रयोग में ध्यान रखें कि उपचारित पौधे के प्रत्येक भाग में विष फुहार पहुंच जाऐं।
2. यदि स्पर्श विष प्रयोग किया जा रहा है तथा प्रयोग के समय यन्त्र से विष चूने लगे तो छिड़काव तुरन्त बन्द कर देना चाहिऐ।
3. कीट विषों के छिड़कने का समय कीटों के विकास के साथ ही सही समय पर किया जाऐ।
4. वर्षा ऋतु में छिड़काव नहीं करना चाहिए।
5. विष को बच्चों की पहुंच से दूर रखें।
6. फुहार यन्त्र तथा उनके भागों की छिड़काव से पहले तथा बाद में उचित देखभाल रखनी चाहिये ताकि उसमें जंग न लगे।
7. दवा को अच्छी प्रकार घोल लेना चाहिए ताकि सभी जगह समान दवा की मात्रा पहुंचे।

9.3 फुहार यन्त्र (Sprayers) -

इन यन्त्रों के द्वारा कीट-विषों को द्रव रूप में प्रयोग किया जाता है। एक फुहार यन्त्र में निम्नलिखित गुण होने चाहिए -

1. द्रव को समान रूप से उपचारित वस्तु पर फैला दें।
2. फुहार यन्त्र ऐसी धातु का बना हो जिस पर कीटनाशी-विषों की रसायनिक क्रिया न हो तथा साथ ही साथ मजबूत हो।
3. बनावट साधारण हो तथा सफाई आदि के लिये आसानी से खोला जा सके।
4. कम से कम समय में अधिकतम क्षेत्र में फुहार कर सके।

5. घोल को अति सूक्ष्म बूँद में तोड़कर उन्हें अधिक से अधिक स्थान (क्षेत्रफल) पर पहुंचा कर समान फुहार डाल।
6. यथेष्ट दूरी पर ऊँचाई तक फुहार को पहुंचा सके।
7. भूमि पर घोल टपकने तथा गिरने से बचायें।

यहाँ पर कुछ प्रचलित हस्तचालित फुहार यन्त्र जो बाजार में आसानी से मिलते है, दिये जा रहे हैं।

1. हैंड आटोमाइजर फ्लिट पम्प - घरेलू कार्यों के लिये विशेषकर मक्खियों, मच्छरों आदि को मारने के लिए कीटनाशी छिड़कने में इसका प्रयोग अधिकता से किया जाता है। इससे छिड़काव लगातार नहीं होता बल्कि जब पिचकारी को हाथ से दबाते है तभी फुहार निकलती है इसके निम्नलिखित भाग होते हैं।

(अ) नाल (Barrel)- यह बेलनाकार खोखली 25 सेमी. लम्बी तथा 4 सेमी. व्यास वाली टीन की नली हैं इसके नीचे रहने वाले सिरे पर एक टोपी (Barrel-cap) लगी होती है। इसका ऊपरी भाग बन्द होता है तथा उसमें केवल एक छेद होता है। प्लंजर रोड उपर नीचे ले जाया जाता है। नली के दूसरे सिरे के निचले भाग पर एक टंकी होती है जो कि नली से जुड़ी होती है। नली का अगला सिरा बन्द होता है, उसमें बीचों-बीच केवल एक छोटा छिद्र होता है जिसे नोजिल (Nozzle) कहते है। टंकी में उनके ढक्कन के बीच से होकर एक 3 मिमी. व्यास वाली नली उपर निकली होती है जो कि नाल (Barrel) के अगले सिरे पर खुलती है। यह पतली नली दोनों सिरों पर खुली होती है इसे डिलेवरी ट्यूब कहते हैं। यह द्रव को टंकी से फुहार के रूप में फेंकती है। बैरल के पिछले सिरे के पास एक 4 मिली. व्यास का छिद्र होता है जिससे हवा का आवागमन होता है।

(ब) नाल टोपी (Barrel-cap)- जैसा की पीछे बताया गया है कि बैरल का पिछला सिरा एक टोपी से बन्द रहता है जिसे नाल टोपी कहते है। इन टोपी के मध्य में एक छेद होता है जिससे होकर प्लंजर आता है।

(स) प्लजंर (Plunger) - यह प्रायः 6 मिमी व्यास के तार का बना होता है जिसके पिछले सिरे पर लकड़ी का एक हैण्डिल लगा रहता है। जिसको पकड़कर प्लंजर को आगे तथा पीछे की ओर खींचा तथा दबाया जाता है। प्लंजर के आगे सिरे पर एक चमड़े का वाशर, लाक नट (Lock nut) और गोलाकार चपटी प्लेट द्वारा कसा रहता है। वासर नाल की दीवारों से सटा रहता है।

(द) टंकी (Tank) - यह दवात के समान छोटी गोलाकार टीन की बनी होती है। इसके उपरी भाग में एक बड़ा छेद होता है जिसे फिल्टर होल (Filter hole) कहते है इसी से टंकी के अन्दर द्रव भरा जाता है। यह छेद स्क्रु वाले ढक्कन से बन्द रहता है जिसको फिल्टर कैप कहते है। टंकी के कैप में होकर एक पतली नली जाती है। इसको चूषक नली (Dip tube) या डिलिवरी ट्यूब (Delivery Tube) कहते हैं।

कार्य विधि - टंकी में फिल्टर होल के द्वारा प्रयोग होने वाले द्रव को भरकर फिल्टर कैप को अच्छी तरह कस देते है अब प्लंजर को हैण्डिल की सहायता से अपनी ओर खींचते है जिससे

नाल के अगले भाग में उपर स्थित छेद के द्वारा बहुत सी हवा वाशर के सिरों से होकर अन्दर आ जाती है। प्लंजर को दबाते ही अगले भाग में भरी हुई हवा का दबाव पड़ता है, जिससे वह डिलिवरी ट्यूब के उपर से होकर जाती है फलस्वरूप टंकी से डिलिवरी ट्यूब से द्रव पदार्थ खिंचकर नोजिल तक जाता है जहाँ पम्प की तेज हवा द्रव को छोटे-छोटे कणों में तोड़कर फुहार (Spray) उत्पन्न करती है। इस प्रकार प्लंजर को उपर-नीचे चलाने से लगातार फुहार निकलती रहती है।

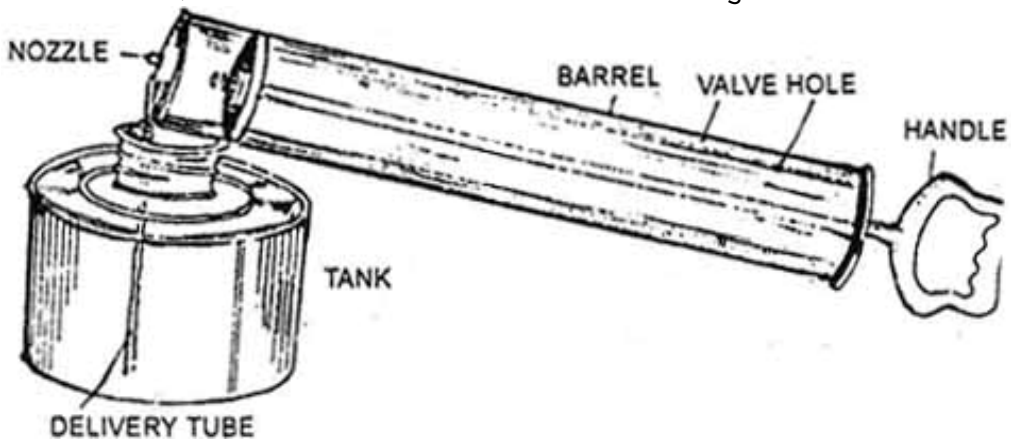

2. हैण्ड कम्प्रेशन स्प्रेयर (Hand compression spreyer) - इस प्रकार के फुहार यन्त्र सरल बनावट के तथा अधिकता से प्रयोग में लाये जाते है। इस प्रकार के स्प्रेयर को लगातार हाथ से नहीं चलाना पड़ता बल्कि एक बार कुछ वायु दबाव इसमें संचित हो जाता है जिससे कुछ समय तक लगातार फुहार निकलती रहती है। इसके निम्नलिखित भाग होते हैं -

(क) टंकी - यह पीतल या तांबे की बनी हुई बेलनाकार होती है। जिसका उपरी सिरा उन्नतोदर (Convex) होता है इसके ऊपरी भाग में तीन बड़े छिद्र होते हैं, बीच वाले छेद में पम्प जुड़ा होता है। दूसरा छेद फिलर छेद (Filler hole) कहलाता है। इसी के द्वारा टंकी में द्रव भरते हैं। यह स्क्रु वाले ढक्कन से जिसे फिलर कैप (Filler cap) कहते हैं बन्द रहता है। तीसरे छेद में एक दबाव मापक यन्त्र (Pressure gauge) लगा होता है जो टंकी के अन्दर का दबाव बताता है। टंकी के निचले भाग में एक नलिका होती है जिसे डिलिवरी ट्यूब कहते है। यह नलिका तली के बाहर समानान्तर चलकर पीतल की एक दूसरी नली लैंस (Lance) से जुड़ी होती है। दोनों नलियों के जोड़ पर द्रव के बहाव को बन्द करने तथा खोलने के लिये एक कॉक (Cut off cock) लगी होती है। टंकी के पैंदे में एक स्टेण्ड लगा होता है जिस पर मुड़ी हुई वेस्ट (Waste plate) लगी होती है। टंकी के ऊपरी भाग में एक वृत्ताकार पत्ती लगी होती है जिस पर दो कुंडे (Bucklets) जिन पर एक फीता (Strap) लगा होता है। फीतों के सिरों पर एक कांटा होता हे जो कि वैस्ट प्लेट में फंस जाते है।

(ख) (Pump) - यह टंकी में लगा होता है तथा ठीक फुटबाल पम्प के सिद्धान्त पर कार्य करता है। इसका आधा भाग टंकी के अन्दर लटका रहता है तथा बाहर केवल प्लंजर, हत्था तथा प्लंजर स्प्रिंग ही दिखाई पड़ती है। टंकी के अन्दर इसकी नाल (Pump barrel), कपाट (Valve) तथा

गोली वाला कपाट (Ball Valve) आदि भाग होते हैं। गोली बाल्व हवा से बाहर जाने देता है परन्तु उसको अन्दर वापस नहीं आने देता।

(ग) फुहार करने वाले भाग (Spraying Parts) - लैंस के अगले सिरे से एक रबड़ या प्लास्टिक की 12 मिमी. व्यास वाली नली जो लगभग 1 मीटर लम्बी होती है, जुडी रहती है। इस लम्बी नली को होज कहते है। होज के अगले सिरे पर एक पीतल की नली होती है जिसे पकड़कर फुहार करते है। इसमें एक ट्रिगर कट ऑफ वाल्व (Trigger cut off valve) लगा होता है जिसे घुमाने पर फुहारा खुलता और बन्द होता है। इस पीतल वाली नली के अगले सिरे पर एक 6 मिमी. वाली पतली नली होती है जो एक्सटेन्सन रोड (Extension rod) कहलाती है। इसके सिरे पर फुहार बनाने के लिऐ नोजिल (Nozzle) लगा होता है।

कार्य विधि - सर्वप्रथम फिलर कैप को खोलकर छलनीदार कीप से घोल भर देते हैं घोल सदैव टंकी के 3/4 भाग आयतन के बराबर ही भरते है। अब फिलर कैप को अच्छी तरह से बन्द कर देते है तथा पम्प को चलाकर 55 से 60 पौंड प्रति वर्ग इंच तक करने के लिये हवा भरते हैं। अब पम्प के पास लगी हुई कट ऑफ कॉक खोल देते हैं तो द्रव होज में आ जाता है। जब फुहार करना होता है तो एक्सटेन्सन राड के आधार पर लगी हुई कट ऑफ कॉक खोलते हैं तो द्रव नोजिल से फुहार के रूप में निकलने लगता है।

3. स्टिरफ या ब्रकेट पम्प (Striup or bucket pump) - यह साधारण प्रकार का हाइड्रोलिक स्प्रेयर (Hydraulic sprayer) है जो छोटे वृक्षों, झाडियों तथा घरों में मच्छर मारने के लिये डी.डी.टी. छिड़कने के लिये प्रयोग किया जाता है। इस पम्प को बाल्टी में

भरे घोल पर रखकर चलाते है इसके मुख्य भाग पम्प डिस्चार्ज लाइन और लोहे का बना हुआ स्टिरप है। इसको चलाने के लिये पम्प को बाल्टी में लटका कर रखते है तथा स्टिरप को बाल्टी से बाहर पैर से दबाकर हत्थे को क्रमशः उपर-नीचे चलाते है। दूसरा आदमी डिस्चार्ज लाइन से छिडकाव करता है।

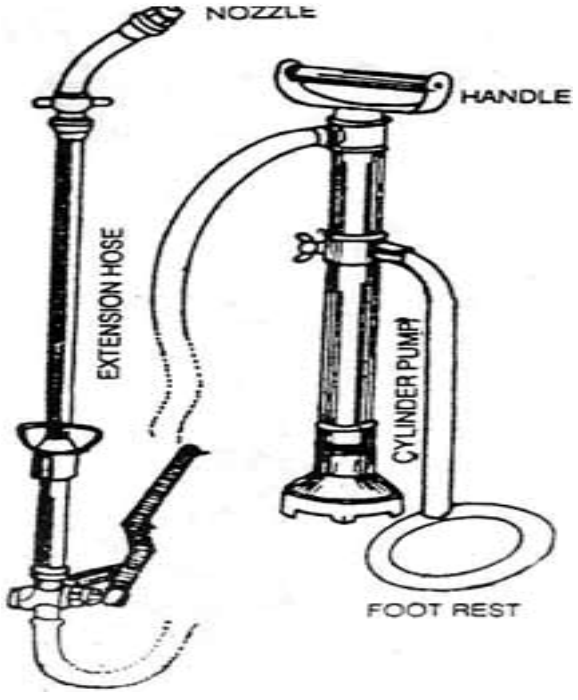

4. नैपसैक स्प्रेयर (Knapsack Sprayer) - इसकी टंकी तांबे या पीतल की बनी होती है या कुछ चपटी होती है तथा इसी में पम्प होता है। नैपसैक स्प्रेयर पीठ पर लाद लिया जाता है। इसकी क्षमता 25 लीटर होती है। कार्यकर्ता एक हाथ से हैण्डिल चलाता है तथा दूसरे से छिडकाव करता है। इसमें दबाव बनाए रखने के लिऐ पम्प को लगातार चलाया जाता है जिसमें समान मात्रा में फुहार निकलती रहती है। एक आदमी इस प्रकार के स्प्रेयर से एक दिन में 2 हैक्टेयर तक स्प्रे कर सकता है। यह छोटे वृक्षें, झाडियों तथा कतार में लगी फसलों के लिए प्रयुक्त होता है।

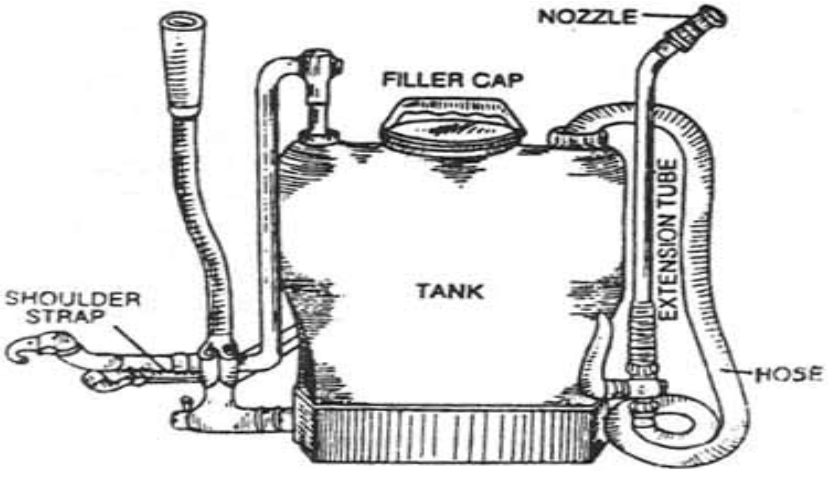

5. फुट स्प्रेयर (Foot sprayer) - इसमें पम्प एक लोहे के ढांचे में इस प्रकार से लगाया जाता है कि पम्प का प्लंजर पैडल से जुड़ा रहता है। अतः पैडल पर पैर रखकर इसको चलाते हैं इस प्रकार इसमें भी दो आदमियों की आवश्यकता पड़ती हैं, एक आदमी पैर से पम्प चलाता है तथा दूसरा डिलेवरी लाइन से छिडकाव करता है। डिलेवरी लाइन 15 या 20 मीटर की होती है।

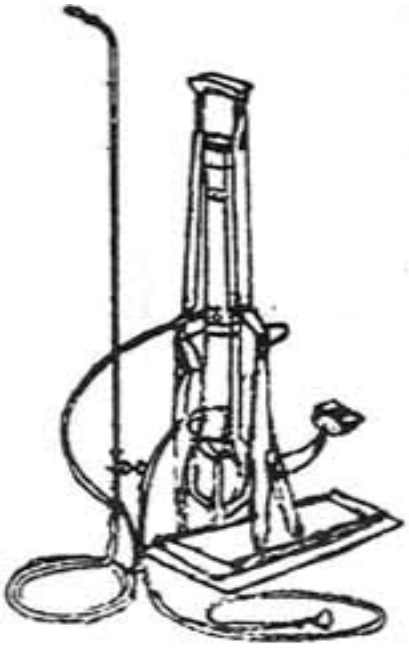

6. पावर स्प्रेयर (Power Sprayer) - उपर्युक्त प्रकार की स्प्रे मशीनों का सीमित क्षेत्रों में ही प्रयोग किया जा सकता है। जिस समय 120 लीटर द्रव विष 7 से 14 कि.ग्रा. प्रति वर्ग सेमी. दबाव से प्रति हैक्टेयर की दर से प्रयोग करना है तो पावर स्प्रेयर्स की आवश्यकता होती है। पावर स्प्रेयर्स मोटे तौर पर तीन प्रकार के होते हैं।

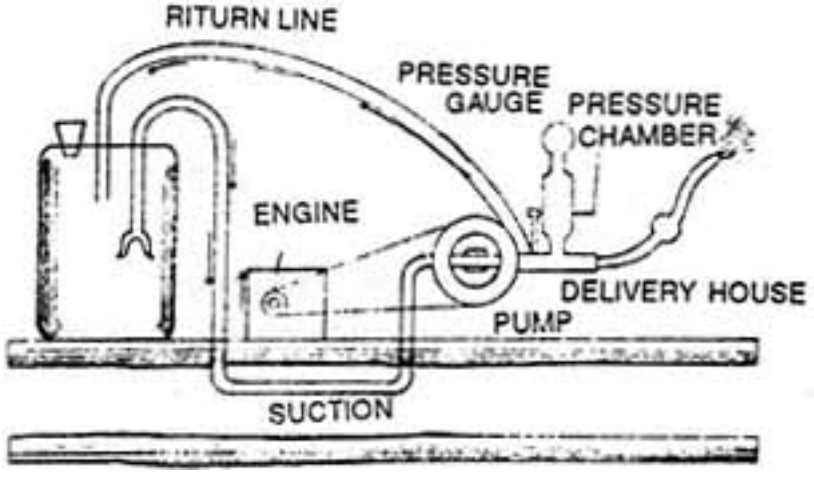

1. Engine mounted power sprayer.

2. Tractor mounted power sprayer.
3. Aeroplane sprayer.

इसको उनकी क्षमता तथा गुण के आधार पर निम्न प्रकारों में विभाजित कर सकते है।

1. Low concentration and high volume sprayer.
2. High concentration and low volume sprayer.
3. Mist blowers and fog or aerosols generator.

7. लो कन्सेण्ट्रेशन एण्ड हाई वोल्यूम स्प्रेयर - यह सबसे सरलतम प्रकार के पावर स्प्रेयर है जो पैट्रोल या डीजल से चलते हैं। इनके कण्टेनर से 10 से 270 लीटर स्प्रे तक आ जाता है। स्प्रे में एजीटेटर लगे होने के कारण द्रव 35-42 किग्रा प्रति वर्ग सेमी. के दबाव से निकलता है। इस प्रकार के स्प्रेयर्स में जैसा नाम से स्पष्ट है दवा की सान्द्रता कम रखते हैं तथा पानी की मात्रा अधिक प्रयोग होती है। इनसे ऊँचे पेड़ों आदि पर भी आसानी के साथ स्प्रे किया जा सकता है क्योंकि इसमें स्प्रे बूम्स (Spray booms) या हाइडोलिक टावर्स (Hydraulic towers) लगी होती है।
8. हाई कन्सेण्टेंशन एण्ड लो वोल्यूम स्पेयर - जैसा नाम से स्पष्ट है इनमें दवा की मात्रा अधिक तथा पानी की मात्रा बिल्कुल कम या नहीं के बराबर प्रयुक्त होती है। प्रायः इस प्रकार के स्प्रेयर्स के लिये अलग से ही दवाओं का Formulation बनाया जाता है जो कि इमल्सन रूप में होते है। इनके नोजिल्स मजबूत तथा जटिल होते है जिसमें 7 किग्रा प्रति वर्ग सेमी. दबाव से स्प्रे काफी बारीक बून्दों के रूप में निकलता है। दबाव उत्पन्न करने के लिये इनमें प्रोपेलर टरबाइन होता है।
9. मिस्ट ब्लोअर्स एवं फोक या ऐरोसोल्स जेनरेटर - यह भी उपर्युक्त की तरह कार्य करते हैं, परन्तु इनके द्वारा निकला हुआ स्प्रे मिस्ट (कोहरे) के रूप में होता है जिसमें कणों का आकार 50 से 100µ होता है फोक या एरीसोल्स जेनरेटर का प्रयोग वायुयान से स्प्रे करते समय किया जाता है।

9.4 नोजिल्स (छव्रसमे) -

ये कई प्रकार के होते हे तथा इन्हीं की बनावट एवं किस्म के आधार पर स्पेयर की क्षमता निर्भर करती है। एक सामान्य नोजिल में निम्न भाग होते हैं -

1. आधार (Base)
2. व्हर्ल (Whirl)
3. वाशर (Washer)
4. डिस्क (Disc)
5. कैप (Cap)

आजकल निम्न प्रकार के नोजिल्स उपलब्ध है जिनको आवश्यकतानुसार प्रयोग किया जा सकता है -

1. Swirling jet nozzle

2. Disc nozzle
3. Ferm nozzle
4. Flat spray nozzle
5. Vermorel nozzle
6. Solid cone nozzle
7. Jet nozzle
8. Hollow cone nozzle

9.5 डस्टर्स (क्नेजमते) -

ये ऐसे यन्त्र है जिसके द्वारा सूखे प्राणी विष धूल के रूप में बुरकायें या फैलाये जाते है। कुछ सामान्य हस्त चलित डस्टर्स निम्न हैं -

1. प्लन्जर डस्टर्स (Plunger dusters) - इनकी रचना फ्लिट पम्प की तरह होती है ये टीन अथवा धातु के लगभग 75 सेमी. लम्बे तथा 7 सेमी व्यास व्यास के बने होते हैं। इनका कण्टेनर दो भागों में बंटा होता है - पहला ऊपरी भाग जिसमें पम्प लगा होता है तथा दूसरा निचला भाग जिसमें डस्ट (विष धूल) भरा जाता है। इसी भाग में डिस्चार्ज ट्यूब का नोजिल लगा होता है। जब पम्प के पलन्जर पर लगे हैन्डिल को उपर की ओर खींचते है तो वायु कण्टेनर के उपरी भाग में प्रविष्ट होती है तथा हैण्डिल को दबाने से वही वायु दबकर डस्ट कण्टेनर में पहुँचकर विष धूल को नोजिल से बाहर निकालती है। इस प्रकार के उपकरणों का प्रयोग छोटे स्थानों में करते हैं।
2. धौंकनी वाले डस्टर्स (Bellow dustrers) - इस प्रकार के डस्टर काफी सरल रचना वाले होते हैं। इनमें एक उंचा टैंक या कण्टेनर होता है जिसके ऊपरी ढक्कन पर हारमोनियम के परदे अथवा लुहार की धौंकनी के समान रबर या चमड़े की धौंकनी लगी होती है। इस धौंकनी को हैण्डिल द्वारा चलाकर हवा प्रवाहित करते है। फलस्वरूप कण्टेनर के अन्दर हवा पर दबाव पड़ने से विष धूल डिस्चार्ज ट्यूब से होती हुई नोजिल से निकलती है।
3. हैण्ड रोटरी डस्टर्स (Hand rotary dustrers) - इस प्रकार के डस्टर्स बनावट के आधार पर दो प्रकार के होते हैं पहला गोल होता है जो कार्य के समय कार्यकर्ता के सीने पर फिट किया जाता है दूसरा अपेक्षाकृत लम्बा होता है जो कार्य के समय कार्यकर्ता के बायें पाश्र्व (Side) में फिट होता है। दोनों की कार्य विधि तथा भाग समान है।

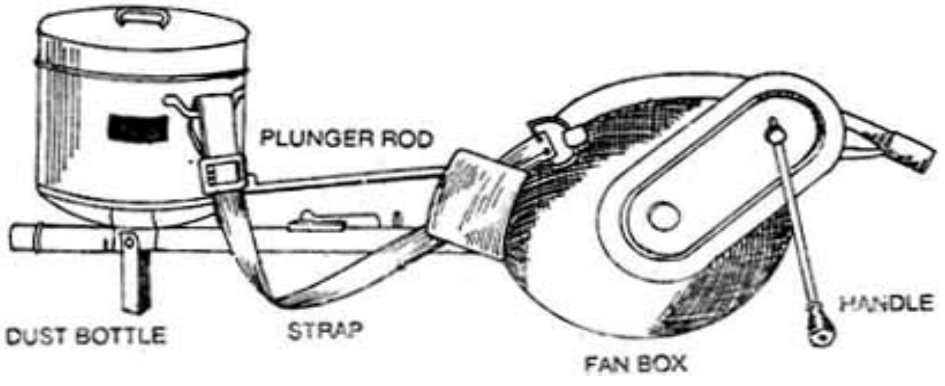

एक सामान्य रोटरी डस्टर के चार भाग होते है -

1. हापर या कण्टेनर (Hopper or container),
2. गियर बाक्स (Gear box),
3. ब्लोहर (Blower),
4. डिस्चार्ज सिस्टम (Discharge system)

कण्टेनर - यह एक ड्रम अर्थात डालडा के गोल डिब्बे जैसा होता है, जिसमें 5-6 किलो विष धूल भरी जा सकती है ऊपर से यह एक ढक्कन द्वारा बन्द रहता है। पिछले सिरे पर वक्ष प्लेट (Breast plate) लगी होती है। नीचे की ओर इसमें एक खोखली धातु की नली, जिसे सक्शन पाइप (Suction pipe) कहते हैं लगी होती है इसका सम्बन्ध पंखे के बाक्स (Fan box) से रहता है। कण्टेनर के अन्दर तली की ओर एक मथनी (Agitator) या ब्रुश लगा होता है इस ब्रुश या एजीटेटर का सम्बन्ध एक ठोस धातु की छड़ (Shaft crak) से होता है। कण्टेनर में एक निष्कासन छिद्र (Exit-hole) होता है जिससे विष धूल ब्लोअर की जाती है। सक्सन पाइप के मध्य में एक फीड़ रेगुलेटर (Feed regulator) लगा होता है जिस के द्वारा निष्कासन छिद्र के आकार को घटा-बढा कर विष धूल की मात्रा को नियन्त्रित किया जाता है।

गियर बाक्स - यह कण्टेनर के दायीं ओर होता है। इसमें चार गियर लगे होते हैं सबसे बड़ा गियर क्रैन्क शाफ्ट से जुड़ा होता है। इसी प्रकार के अन्य गियर परस्पर सम्बन्धित बड़े छोटे क्रम में लगे होते हैं। इन गियर्स का सम्बन्ध बाहर की ओर एक हैण्डिल से होता है। हैण्डिल को चलाने से ये सभी गियर घूमने लगते हैं। सबसे बड़े गियर के एक राउण्ड पर चौथा गियर कई बार घूम जाता है। फलस्वरूप पंखा बड़ी तेजी से चलता है।

ब्लोअर - यह एक शब्द बाक्स होता है जो सक्सन पाइपर के साथ दूसरे किनारे पर लगा होता है। यह आगे की ओर लगभग 30 सेमी. व्यास की टोटी द्वारा खुलता है इस बाक्स के मध्य में एक पंखा लगा होता है जिसमें पाँच पंखुडियां (Blades) होती है। ब्लेड्स हवा को केन्द्र से बाहर तथा आगे की ओर फेंकती है फलस्वरूप बाक्स में शून्य स्थान (vacuum) बन जाता है। इस शून्य स्थान की पूर्ति कण्टेनर से आने वाली विष धूल तथा जाली से आने वाली हवा करती है।

डिस्चार्ज सिस्टम - फैन बाक्स के उपर की ओर खोखली नली को डिस्चार्ज पाईप कहते है। इस पाइप के सिरे पर बाहर की और फन की आकृति का नोजिल लगा होता है जो उपर से ढका रहता है परन्तु नीचे की ओर खुलता है ताकि विष धूल उपर की ओर न गिरकर नीचे की तरफ गिर। कुछ डस्टर्स में द्विभाजी नलिका (Y-attachment) लगी होती है इससे धूलीकरण कुछ जल्दी होती है।

कार्य विधि - सर्वप्रथम कण्टेनर के अन्दर 3/4 भाग तक विष धूल भरी जाती है। फिर डस्टर को कन्धे या सीने पर रखकर फीतों (Straps) की सहायता से कस देते हैं अब हैण्डिल को घुमाते है फलस्वरूप गियर्स व पंखा तेजी से घूमने लगते हैं। साथ में एजीटेटर की राड (Shaft) भी घूमती है जिससे विषधूल मथकर तेजी से कण्टेनर की नली के छिद्र द्वारा सक्शन पाइप में आने लगती है। पंखे के तेजी से घूमने के कारण उत्पन्न हुये शून्य स्थान पर दबाव के कारण विष की गति

हैण्डिल द्वारा गियर्स की गति पर निर्भर करती है। इस प्रकार से लगातार हैण्डिल घूमाते रहने से लगातार (Continuous) विष धूल निकलती रहती है।

पावर डस्टर (Power duster) - जिस समय विस्तृत क्षेत्र में डस्टिंग का काम करना होता हैं। तो पावर डस्टर की आवश्यकता होती है। इनमें 1.5 हार्स पावर से लेकर 5 हार्स पावर की शक्ति का पेट्रोल या डीजल से चलने वाला इन्जन प्रयोग किया जाता है। इसमें एक या दो डिस्चार्ज पाइप लगी होती है। जिनसे विष धूल 300 से 390 किमी. प्रति घण्टे की गति से निकलती है। इसकी मात्रा और गति को नियन्त्रित करने के लिये आवश्यक यन्त्र लगे होते हैं, जिसकी सहायता से गति को कम या अधिक किया जा सकता है।

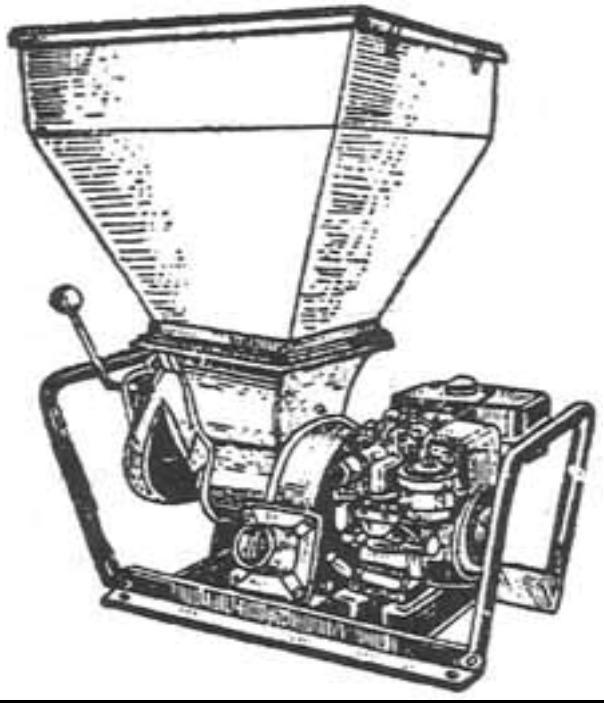

9.6 स्प्रेयिंग एवं डस्टिंग का तुलनात्मक अध्ययन

1. स्प्रेयिंग का प्रायः प्रति इकाई क्षेत्र में प्रभावकारी तत्व (Active ingredient) का मूल्य कम होता है जब कि डस्टिंग में ज्यादा होता है।
2. स्प्रेयिंग में विक्षेपण (Desposition) सभी स्थानों पर एक समान होता है जबकि डस्टिंग में कहीं ज्यादा कहीं कम दवा पहुंचती है।
3. स्प्रेयिंग द्वारा प्रयोग की गई दवाओं का अवशेष प्रभाव कम समय तक रहता है।
4. स्प्रेयिंग पर हवा का ज्यादा प्रभाव नहीं पड़ता जबकि डस्टिंग में हवा महत्वपूर्ण स्थान रखती है।
5. स्प्रेयिंग की अपेक्षा डस्टिंग की लागत कम होती है।
6. स्प्रेयिंग करने वाले यन्त्र डस्टर्स की अपेक्षा भारी तथा अधिक कीमती होते है।
7. डस्टिंग करने में पानी की आवश्यकता नहीं पड़ती जबकि स्प्रेयिंग में यह आवश्यक है।
8. डस्टिंग के लिये प्रातःकाल का समय उपयुक्त होता है। जबकि स्प्रेयिंग के लिये शाम का।

9.7 धूम्रण यन्त्र (Fumigators)

यह ऐसे यन्त्र है जिनका प्रयोग धूम्रण विषों के लिये किया जाता है। अपने देश में अधिकतर साइनों गैस पम्प प्रयोग किया जाता है अतः उसी का वर्णन किया गया है।

साइनों गैस पम्प (Cynogas pump) - इनकी बनावट सरल होती है। यह प्रायः साइनों गैस अथवा कैल्शियम साइनाइड पाउडर को पम्प करने के लिये प्रयोग किया जाता है। इसके निम्नलिखित भाग होते हैं -

पम्प नाम (Pump cylinder) - यह लगभग 45 सेमी. लम्बी 71/2 सेमी. व्यास वाली पीतल की नली होती है जो उपरी सिरे की टोपी (Pump cap) द्वारा बन्द रहती है इसका निचला सिरा एक पतली टोंटी द्वारा काँच की बोतल में खुलता है जिसमें पाउडर भरा जाता है। पम्प नाल तथा बोतल के बीच एक कपाट (Valve) होता है यह हवा की बोतल में आने देता है। परन्तु पम्प नाल में जाने से रोकता है।

पम्प नाल के आधार के पास एक डिलेवरी ट्यूब लगी होती है जिसका सम्बन्ध बोतल से होता है। इसी ट्यूब से होकर पाउडर मिश्रित हवा बाहर निकलती है। पम्प नाल के नीचे एक लोहे की पत्ती ''रकाब'' (Foot rest) लगी होती है जिस पर पैर रखकर पम्प को चलाते हैं।

डिलीवरी ट्यूब से प्लास्टिक का डिलीवरी होज (Delivery hose) लगा होता है जिससे लगभग 30 सेमी. लम्बी पीतल की नली लगी होती है जिसे लांस (Lance) कहते हैं।

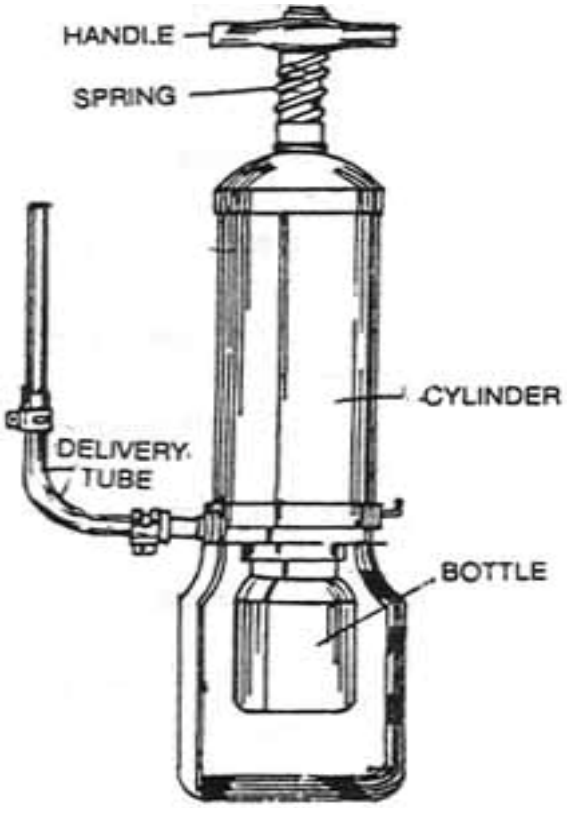

2. प्लंजर राड (Plunger rod) - इसके ऊपरी सिरे पर लकड़ी का हैण्डिल लगा होता है तथा दूसरे सिरे पर चमड़े का कपाट (Leather valve) होता है जो वासर से साईकिल के पम्प की तरह जुड़ा रहता है।

कार्य विधि - बोतल का 3/4 भाग कैल्शियम साइनाइड से भर देते हैं तथा जिस स्थान पर धुम्रीकरण करना होता है लॉस को वहाँ पर रखकर हैण्डिल को चलाते है जिससे पम्प के चलने पर पाउडर बाहर निकलता है।

9.8 किट-विष प्रसारण यन्त्रों के प्रयोग करते समय सावधानियाँ

कीट-विष प्रसारण यन्त्रों के प्रयोग करने के समय निम्नलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिये -

1. प्रयोग करने से पहले यन्त्रों के नट बोल्ट अच्छी तरह कस लेने चाहिये तथा लीकेज इत्यादि को देखकर ठीक कर लें।
2. चलने वाले सामान्य भागों में तेल, ग्रीस आदि लगा लें ताकि चलाते समय आसानी रहे।
3. रबर तथा प्लास्टिक की ट्यूबों को ज्यादा ने मोंड़े जहाँ तक सम्भव हो सीधे रखे ताकि टूटे नहीं तथा प्रयोग के बाद उसको ठीक प्रकार से समेट कर रखें।
4. प्रयोग करने के पश्चात नोजिल, टैंक तथा कण्टेनर को हमेशा साफ करने के पश्चात सूखाकर रखें ताकि जंग न लगे।
5. प्रयोग करते समय कण्टेनर की कुल क्षमता का 3/4 भाग ही दवा से भरें।
6. प्रयोग करते समय प्रेशर का उचित दबाव रखना चाहिये तथा ध्यान रहे कि हवा का दबाव ज्यादा न हो क्योंकि इससे टंकी फट सकती है तथा कम भी न रहे जिससे द्रव फोर्स के साथ नहीं निकलेगा जिससे स्प्रे नहीं हो पायेगा।
7. पावर यन्त्रों में तेल की एक निश्चित मात्रा (लेविल) रखें।
8. जिस समय यंत्र प्रयोग में न आ रहें हो तो उसके भागों को खोलकर अलग-अलग ग्रीस इत्यादि लगाकर उचित स्थान पर रखें।

9.9 छिड़काव पम्प व नोजल की देख रेख

1. छिड़काव पम्प को इस्तेमाल करने के पहले व बाद में अच्छी तरह पानी से धो ले।
2. नोजल में यदि रूकावट आ रही हो तो उसे बदल ले या साफ पानी से धो लें। नोजल के छेद में मुंह से हवा ना दें और ना ही किसी वस्तु से (चाकू आदि) छेद खोलने की कोषिष करें।
3. नोजल की समय समय पर जांच करते रहे और साल में एक बार इसे बदल लें।
4. जब छिड़काव पम्प को रखना हो तो उसे डिटरजेन्ट से अच्छी तरह धो ले, और पानी से काफी बार धो लें ताकि डिटरजेन्ट पूरी तरह से पम्प निकल जाऐं। छिड़काव टैंक को सूखा कर उसका मुंह खोल कर रखें ताकि हवा उसमें आती जाती रहे।
5. छिड़काव पम्प के अन्य हिस्सों को अच्छे से तेल या ग्रीस लगाऐं।
6. हो सके तो पंप को टांग कर रखें ताकि चूहे उसे नुकसान ना पहुंचा सकें।

9.10 सुरक्षात्मक तरीके से खरपतवार नाशक का रखरखाव

1. खरपतवार नाशक के लेबल को अच्छे से पढ़ ले तथा उस पर लिखे निर्देषों और सावधानियों का पालन करें। लेबल पर खरपतवार नाशक का रासायनिक नाम, सक्रिय तत्व, संशोधित मात्रा व सावधानियाँ लिखी होती है।
2. आंख, मुँह, चमड़ी,श्वास से लगातार ज्यादा समय तक खरपतवार नाशक का सम्पर्क ना रखें।
3. शरीर पर खरपतवार नाशक लग जाऐ तो उसे तुरन्त साबुन से धो लें।
4. खरपतवार नाशक का इस्तेमाल करते वक्त धूम्रपान या भोजन ना करें।
5. हवा की विपरित दिशा में छिड़काव ना करें।
6. छिड़काव के समय चेहरे को कपड़े से बांध कर रखें।
7. यदि चमड़ी में खुजली लाल होना, चक्कर आना, उल्टी आदि होने लगे तो तुरन्त डॉक्टर से सम्पर्क करें।
8. खरपतवार नाशक की खाली बोतलों को नष्ट कर दे तथा इसे किसी अन्य काम के लिए दोबारा इस्तेमाल ना करें।
9. खरपतवार नाशक के साथ गंदा पानी ना मिलाए।
10. खरपतावार नाशक केा उसी के डिब्बे में ताले में, खाने में सामान व बच्चों से दूर रखें।

    प्राथमिक उपचार

    खरपतवार नाषक को निगल लेने पर उल्टी करायें। यदि उल्टी ना हो रही हो तो अंगुली को मुंह में डाल कर या गरम पानी में नमक या चारकोल मिला कर पिताऐ। गंभीर हालत होने पर तुरंत डाॅक्टर को बुलाऐ। मरीज को खुली हवा में रखें।

9.11 सारांश

कीटनाशकों के छिड़काव के लिए मुख्यतः तीन प्रकार के यंत्रों का प्रयोग होता है, जैसे कि प्रकार के यंत्रों का प्रयोग होता है जैसे कि 1 स्प्रेयर का फुहार यंत्र, जिससे कीट-विषों को द्रव रूप द्वारा प्रयोग किया जाता है। 2 डस्टर्स द्वारा सूखे प्राणी विष धूल के रूप में बुरकाऐं जाते है। 3 धूम्रण यंत्र का प्रयोग धूम्रण विषों के लिए किया जाता है। विभिन्न प्रकार के नोजिल्स का प्रयोग किया जाता है।

9.12 बोध प्रश्न

1. हैण्ड केम्पशन स्प्रेयर का नामांकित चित्र बनाकर कार्य विधि का वर्णन कीजिए।
2. कीट विष प्रसारण यंत्रों के प्रयोग करते समय कौनसी सावधानियां रखनी चाहिए।
3. निम्न में से कौनसा हस्तचलित स्प्रेयर का उदाहरण है।

   अ ब्लोवर स्प्रेयर　　ब आटोमाइजर

   स हाइड्रोलिक पावर स्प्रेयर　　द उपरोक्त सभी
4. नैपसेक स्प्रेयर की क्षमता कितनी होती है?

अ 15 लीटर ब 25 लीटर

स 35 लीटर द 50 लीटर

5. किस यंत्र का प्रयोग धूम्रण विषों के लिए किया जाता है।

अ स्प्रेयर ब डस्टर्स

स फूमीगेटर्स द कोई नहीं

9.13 संदर्भ सामग्री

15. Reddy,T.Y. and Reddi,G.H.S.,2000, Principles of Agronomy, Kalyani Publishers, New Delhi.
16. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
17. Singh, Chhadda. 1999., Modern Techniques of Raising Field Crops, Oxford & IBH publishing company private limited, New Delhi.
18. Singh, S.S., 1993,Crop Management under Irrigated and Rainfed Conditions, Kalyani Publishers, New Delhi.
19. गुप्ता, पंकज. 2011. स्प्रेअर का चुनाव, रखरखाव तथा सावधानियां । विश्व कृषि संचार (03): 54-63.
20. अहलावत आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्धन्त एंव फसलेंरामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ.
21. माथुर, वाय. के. एवं उपाध्याय, के. डी., कृषि कीट विज्ञान, रमा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ.

इकाई 10

पादप रोग विज्ञान का इतिहास एवं सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 पादप रोग विज्ञान क्या है

10.3 पादप रोग विज्ञान का कार्यक्षेत्र एवं मानव कल्याण में महत्व

10.4 पादप रोगविज्ञान का उत्तरदायित्व

10.5 पौधों में रोग की धारणा

10.6 पौधों में रोग की परिभाषा

10.7 पादप रोगविज्ञान का इतिहास

10.8 आधुनिक भारत में पादप रोगविज्ञान का इतिहास

10.9 पादप रोग प्रबंध के सामान्य सिद्धान्त

10.10 सारांश

10.11 अभ्यास प्रश्न

10.12 संदर्भ सामग्री

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप यह जान पाऐगें -

- पादप रोग विज्ञान तथा उसके कार्य क्षेत्र
- पादप रोग का इतिहास
- पादप रोग प्रबंध के सामान्य सिदांत

10.1 प्रस्तावना

इस पृथ्वी पर रहने वाले समस्त सूक्ष्म एवं बड़े जीवों की मुख्य समस्या वास्तव में भूख की है। इस अरूचिकर अवस्था से बचने के लिये ही यह जीव अपने जीवन का अधिकांश समय भोजन को प्राप्त करने के प्रयास में व्यतीत करते हैं। यदि वास्तविक रूप दे देखा जाये जो मानव-जाति का इतिहास कुछ भी नहीं है, अपितु वह उसके भोजन की प्राप्ति के लिये किये गये प्रयासों का लेखा-जोखा मात्र है। यद्यपि इसमें से अधिकांश इसको सत्य नहीं मानते है, परन्तु यदि हम मनुष्य-जाति के पूर्व ऐतिहासिक दिनों से लेकर आज तक के क्रिया-कलापों का अवलोकन करें तो हमे पता चलेगा कि उसका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पेट की समस्या से प्रेरित रहा है। आदि काल से ही मनुष्य अपना भाजन पौधों और जन्तुओं से प्राप्त करता चला आ रहा है, जबकि जन्तु पूर्ण रूप से व्यतीत करता है। हमारे दैनिक भोजन के लिये अनाज, दालें, सब्जियाँ, फल, मसाले, तेल इत्यादि भी पौधों से ही मिलते हैं। जिन जन्तुओं से हमें मांस, दूध, अण्डा इत्यादि

प्राप्त होते हैं, वह भी पौधों से ही अपना भोजन लेते हैं। यही नहीं, रेलगाड़ियों को चलाने के लिये पट्रोल, डीजल और उर्वरकों को बनाने में सहायक नैफ्था इत्यादि की उत्पति भी वास्तव में पौधों से ही होती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे दैनिक प्रयोग में आने वाली लगभग सभी वस्तुएँ हमे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में पौधों से ही प्राप्त होती है। अतः यदि पौधों को उत्पन्न करने में कोई वस्तु अथवा जीव बाधा पहूँचाता है तो वह केवल पौधों के लिये ही नहीं अपितु हमारे लिये भी स्पष्ट रूप से हानिकाकरक है।

इस पृथ्वी पर जैव तंत्रों में एक गतिशील सन्तुलन होता है। मनुष्य अपना जीवन आराम में व्यतीत करने के लिये इस सन्तुलन में अनेक बाधायें उत्पन्न करके फसलों को उगाता है। आधुनिक कृषि अथवा फसल उत्पादन वास्तव में कृषि विज्ञान की विभिन्न शाखाओं में जा रही नवीन खोजों का ही परिणाम है। वैसे तो फसलों को उत्पन्न करने में अनेक प्राकृतिक विपदाओं का सामना करना पड़ता है, परन्तु पादप रोग, प्रतिकूल मौसम, खरपतवार और कीट नाशकजीव फसलों के उत्पादन में सबसे बड़े खतरे हैं और इनमें से कोई भी फसल को हानिक पहुंचाकर पैदावार कम कर सकता है। पौधों में रोगों को उत्पन्न करने वाले कारण भी दूसरे प्राणियों और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले रोगो ं के कारणों के समान ही होते हैं। यद्यपि अन्य जीवों की भांति पौधों में दुःख और पीड़ा का अनुभव करने के अभी तक निश्चित प्रमाण नहीं मिले हैं। परन्तु इनमें भी रोग का विकास जन्तुओं एवं मनुष्यों के समान ही होता है।

10.2 पादप रोगविज्ञज्ञन क्या है।

पादप रोगविज्ञान या फाइटोपैथोलोजी (Plant Phytopathology) शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के तीन शब्दों (i) फाइटॉन (Phyton) = Plant पादप; (ii) पैथॉस (Pathos) = suffering or aliments = पीड़ा या रोग; (iii) लॉगोस या लॉगस (logoes ओर logus) = to study or knowledge = अध्ययन या ज्ञान से हुई है, जिसका अर्थ पादप रोगों का अध्ययन होता है।

परिभाषा (definition) - पादप रोगविज्ञान, कृषि विज्ञान, वनस्पति या जीवविज्ञान की वह शाखा है जिसके अन्तर्ग त पादप रोगों के कारणों, हेतुकी, उनसे हुई हानि तथा उनके नियंत्रण उपायों का अध्ययन किया जाता है। (Plant Pathology is that branch of Agriculture botanical or Biological science which deals with the study of the causes, etiology, resulting looser and control measures of plant diseases.) ।

यह विज्ञान भी मनुष्यों से सम्बन्धित चिकित्साशास्त्र एवं पशुओं से सम्बन्धित पशु चिकित्सा के समान ही होता है।

उद्देश्य - इस विज्ञान के निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य होते हैं -

1. पादप रोगों के जीवित, अजीवित एवं पर्यावरण कारणों का अध्ययन करना।
2. रोगजनकों द्वारा रोग विकास की क्रियाविधि का अध्ययन करना।
3. रोगों की नियंत्रण विधियों को विकसित करना और पौधों में उनके द्वारा होने वाली हानि को कम करना।

10.3 पादप रोग विज्ञान का कार्यक्षेत्र एवं मानव कल्याण में महत्व

पादप रोगविज्ञान प्रायः एक व्यावहारिक या अनुप्रयुक्त विज्ञान के साथ-साथ एक समन्वय या संकलन का विज्ञान है। इसके कार्यक्षेत्र की परिभाषा देना बहुत कठिन है। इस विज्ञान के अन्तर्गत पादप रोग समस्या के व्यावहारिक समाधान आते है। व्यावहारिक स्तर पर एक फसल के प्रदर्शन में कोई भी दोष पादप रोगविज्ञानी के लिये एक समस्या बन सकता है। अतः पादप रोगविज्ञानी के दो प्रमुख उद्देश्य होते है, सर्वप्रथम उसे पादप रोग निवारण के सिद्धान्तों को प्रयोग करके फसलों में होने वाली हानिक को कम करना होता है तथा, दूसरे पादप रोग के सिद्धान्तों के ज्ञान द्वारा उसे जैविक विज्ञान की गहरी समझ का विकास करना होता है। सैद्धान्तिक रोगविज्ञान में सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पन्न रोगों को अधिक महत्व दिया जाता है, जबकि खेत में रोगविज्ञानी को अन्य दूसरे कारकों द्वारा उत्पन्न अनेक विकारों को सामना करना पड़ता है। इस अवस्था में रोगविज्ञानी को परिवार के डाक्टर के सामन ही माना जा सकता है। इस कारण से ही कुछ व्यक्ति तक तर्क दे सकते हैं कि खेत या क्षेत्र रोगविज्ञान एक विज्ञान की अपेक्षा एक कला अधिक है।

पादप रोगविज्ञान, विज्ञान की अधिकांश पुरानी एवं नवीन शाखाओं से सम्बन्धित है। पहले जबकि इसका सम्बन्ध केवल भौतिक विज्ञान (Physics), रसायनविज्ञान (Chemistry), वनस्पति विज्ञान (Botany), एवं जन्तु विज्ञान (Zoology) से ही बना था उसी प्रकार अब यह अणुजैविकी (Molecularbiology), कवकविज्ञान (Mycology), जीवाणु विज्ञान (Bacteriology), विषाणु विज्ञान (Virology), सूत्रकविज्ञान (Nematology), पादप - शारीरिकी (Plantanatomy) ,पादप कार्यिकी (Plant Physiology), आनुवंशिकी (Genetics), जैव प्रौद्योगिकी या बायोटेक्नोलोजी (Biotechnology), आनुवंशिकी इन्जीनियरी (Genetic Engineering) जीवरसायनविज्ञान (Biotechnology), उद्यानविज्ञान (Horticulture), वनविद्या या वानिकी (Forestry), तथा मृदा विज्ञान (Soil Science) के साथ साथ मृदा सूक्ष्मविज्ञान (Soil Microbiology) से भी सम्बन्धित है तथा यह इन विज्ञानों से अनेक लाभ प्राप्त करता है। जो व्यक्ति पादप रोगविज्ञान को अमल में लाते हैं, उनका न केवल जैविक एवं कृषि विज्ञानों को अच्छा ज्ञाता होना आवश्यक है अपितु उनके लिये स्पष्टतः असंबंधित विषयों: जैसे मौसमविज्ञान (Meterorology), अभियांत्रिकी (Engineering) वायुविज्ञान (Aerodynamics), एवं अर्थशास्त्र (Economics) इत्यादि का जानकार होना भी आवश्यक है।

पादप रोगविज्ञान का सम्बन्ध पादप रोग के समस्त पहलुओं से होता है। अतः इसका कार्यक्षेत्र मानव रोगविज्ञान की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है। क्योंकि मानव रोगविज्ञान मनुष्य में उत्पन्न बीमारी के अनेक पहलुओं में से किसी एक से ही सम्बन्धित होता है। (इसके दूसरे पहलू स्वास्थ्य विज्ञान, जनस्वास्थ्य, प्रतिरक्षा विज्ञान, उपचार या चिकित्सा इत्यादि होते हैं।) यद्यपि हाल के वर्षों में पादप रोगविज्ञानियों ने भी मानव रोगविज्ञान के समान ही पौधों में रोग के किसी एक विशेष पहलू में विशेषज्ञ बनना आरम्भ कर दिया है। कुछ मुख्य क्षेत्र जैसे परपोषी एवं रोगजनक के बीच रसायनिक, आण्विक तथा आनुवंशिक स्तरों पर होने वाली पास्परिक

क्रियाएँ पादप विषाणुविज्ञान, कवकआविषालुकता का रसायनशास्त्र तथा रोग पूर्वानुमान प्रणालियाँ इत्यादि में बहुत अधिक प्रगति की गई है। व्यावहारिक दृष्टि से पादप रक्षण रसायनों का विकास तथा रोग प्रतिरोधी किस्मों के प्रजनन के कार्य में बहुत अधिक उन्नति हुई है।

वर्ष 1993 में समस्त विश्व की जनसंख्या लगभग 5.57 अरब थी, जो वर्ष 2000 तक बढ़कर 6.2 अरब हो गयी। समस्त विश्व की वर्तमान जनसंख्या लगभग 6.6 अरब है जो 1.70 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि की दर से बढ़ रही है तथा अनुमान हे कि विश्व की जनसंख्या वर्ष 2010 तक 7.1 अरब एवं वर्ष 2025 तक 8.5 अरब से भी ऊपर हो जायेगी। समस्त विश्व की वर्तमान जनसंख्या प्रत्येक 11 वर्षों में 1 अरब बढ़ जाती है। संयुक्त राष्ट्रों में ,खाद्य और कृषि संगठन (Food and Agricultural Organization = FAO) द्वारा वर्ष 1993 में किए गये सर्वेक्षण के अनुसार विश्व के विकसित देशों की कुल जनसंख्या लगभग 1.31 अरब थी जिसमें से 8.8 प्रतिशत जनसंख्या कृषि में लगी थी तथा उनके पास कृष्य भूमि 6.17 अरब हैक्टेयर थी, जिस पर समस्त विभिन्न फसलों का कुल उत्पादन 25.54 अरब टन हुआ था। इसी प्रकार विश्व के समस्त विकासशील देशों की कुल जनसंख्या 4.26 अरब थी, जिसमें से 56.8 प्रतिशत जनसंख्या कृषि के ऊपर निर्भर थी तथा उनके पास कुल कृष्य भूमि 7.29 अरब हैक्टेयर थी, जिस पर समस्त विभिन्न फसलों का कुल उत्पादन 30.43 अरब टन हुआ था। इस प्रकार विकासशील देशों की लगभग 50 से 80 प्रतिशत (औसत 56.8 प्रतिशत) आबादी कृषि में लगी है, जबकि इन देशों का कृषि उत्पादन अपेक्षाकृत बहुत ही कम तथा जनसंख्या वृद्धि दर बहुत अधिक(2.64 प्रतिशत वार्षिक) है, जिस कारण से यहां के लोग अल्प एवम् निम्न स्तर के भोजन पर जीवित हैं। एक अनुमान के अनुसार आज भी विश्व के विभिन्न भागों (अधिकांश अविकसित एवम् विकासशील देशों) में लगभग 2 अरब लोग भूख अथवा कुपोषण या दोनों से ही पीड़ित हैं। इतने लोगों को तथा आगे आने वाले वर्षों में करोड़ो लोगों को भोजन खिलाने के लिए विश्व खाद्य आपूर्ति को बढ़ाने वाली संभव विधियों को बनाये रखना नितांत आवश्यक है। कृषि उत्पादन बढ़ाने वाली प्रमुख विधियाँ: 1 फसल क्षेत्रों का विस्तार 2. खेती की उन्नत विधियाँ 3. अर्वरकों का पर्याप्त उपयोग 4. फसों की उन्नत किस्मों का प्रयोग 5 सिंचाई के साधनों का विस्तार तथा 6 उन्नत फसल सुरक्षा इत्यादि हैं। यद्यपि इसमें कोई सन्देह नहीं है कि इनमें से प्रथम पांच उपायों द्वारा कृषि उत्पादन में वृद्धि होती है परन्तु पादप रोग एवम् नाशकजीवों से फसल सुरक्षा किये बिना सम्भावित खाद्य उत्पादन की मात्रा बहुत घट जाती है।

रोगों, कीटों एवम् खरपतवार से फसल हानि - संयुक्त राष्ट्रों के खाद्य और कृषि संगठन द्वारा वर्ष 1993 में किये गये सर्वेक्षण के अनुसार विश्व फसल उत्पादन का 33.7 प्रतिशत औसत भाग अथवा विश्व के कुल उत्पादन का एक तिहाई भाग कटाई पूर्व ही फसल उत्पादन के समय रोगों, कीटों एवम् खरपतवारों द्वारा नष्ट कर दिया जाता है अर्थात् वर्ष 1993 में विकसित देशों के कुल वास्तविक फसल उत्पादन 25.54 अरब टन में से 6.05 अरब टन या 23.79 प्रतिशत हानि तथा विकसित देशों के कुल वास्तवित फसल उत्पादन 30.43 अरब टन में 11.3 अरब टन या 37.18 प्रतिशत हानि रोगों, कीटों एवम् खरपतवारों के द्वारा हुयी थी। इसके

अतिरिक्त फसल की कटाई के पश्चात नाशकजीवों द्वारा खद्यान्नों की 9 से 20 प्रतिशत तक भंडारण क्षति या हानि हो जाती है। इस प्रकार सम्पूर्ण विश्व में समस्त खाद्य फसलों का 48 प्रतिशत भाग कटाई से पूर्व खेत में तथा कटाई के बाद भंडारण में नाशकजीवों द्वारा नष्ट कर दिया जाता है।

खाद्य और कृषि संगठन की उत्पादन वार्षिक पत्रिक (FAO Production Year 1993) में आंकलित विश्व फसल उत्पादन तथा रोगों, कीटों एवम् खरपतवारो से विश्व उत्पादन में हुयी कटाई से पूर्व हानियों को सारणी: 1.1 में दर्शाया गया है। सारणी में दिये गये आंकड़ों से सिद्ध होता है कि विश्व फसल उत्पादन की 11.8 प्रतिशत औसत उपज कटाई पूर्व रोगों द्वारा नष्ट कर दी जाती है तथा साथ ही कीटों एवम् खरपतवारों द्वारा क्रमशः 12.2 प्रतिशत एवम् 9.7 प्रतिशत औसत उपज की हानि होती है। इस प्रकार खाद्य एवम् कृषि संगठन की कृषि उत्पादन वार्षिक पुस्तक 1993 के उत्पादन आंकड़ों तथा क्रैमर 1967 और ओकें एवम् सहयोगी 1994 द्वारा दिये गये हानियों के प्रतिशत के अनुसार विश्व के सभी विकसित देशों में सम्भावित कुल फसल उत्पादन की 2.28 अरब टन त्र 12.14 प्रतिशत औसत उपज की कटाई पूर्व हानि अकेले रोगों द्वारा होती है, जबकि विश्व के समस्त विकासशील देशों में अकेले रोगों द्वारा होने वाली हानि 9.26 अरब टन त्र 23.98 प्रतिशत औसत उपज की बैठती है।

भारत की वर्तमान जनसंख्या 102.70 करोड़ से भी अधिक है अर्थात् सम्पूर्ण विश्व की सर्वाधिक जनसंख्या वाले देशों में भारत का दूसरा स्थान (प्रथम स्थन चीन, जनसंख्या 127.6 करोड़) है तथा संपूर्ण विश्व की आबादी का लगभग 1/6 भाग भारत में निवास करता है और लगभग 70 प्रतिशत आबादी कृषि के ऊपर निर्भर है। भारत ने गत वर्षों में कृषि के क्षेत्र में बहुत अधिक उन्नति की है, जो खाद्यान्न उत्पादन में कौतुकपूर्ण वृद्धि द्वारा स्पष्ट हो चुकी है। जहां वर्ष 1950-51 में भारत का कुल खाद्यान्न उत्पादन 5 करोड़ 8 लाख टन था, वह वर्ष 1970-71 से बढ़कर 10 करोड़ 8 लाख टन, पूर्व 1990-91 में 17 करोड़ 6 लाख टन, वर्ष 2001-2002 में बढ़कर 20 करोड़ 98 लाख टन पर पहुंच।

भारत में भी गत वर्षों पहले 'हरित क्रान्ति' के रूप में हुए कृषि रूपान्तर के कारण देश खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भर हो गया है। परन्तु यह कृषि रूपान्तरण केवल गेहूं में ही अधिक सफल हुआ है क्योंकि फसल के वृद्धि के समय में रोगों एवम् नाशकजीवों द्वारा हानि या क्षति कम पहुंचायी जाती है। इसके अतिरिक्त इस क्रान्ति का प्रसार अन्य दूसरी फसलों एवम् देश के सभी क्षेत्रों में नहीं हो पाया है। फसल की उपज को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों ' जैसे मृदा में नमी का अभाव मृदा की निम्न उर्वरता, फसल की अनुचित किस्म इत्यादि के अतिरिक्त रोगों, हानिकारक कीटों एवम् खरपतवारों द्वारा सम्भावित फसल उत्पादन को गम्भीर रूप से सीमित कर दिया जाता है। रोगों एवम् कीट व्याधियों की मार से कोई भी फसल: अनाज, दलहन, तिलहन, सब्जी, फल, मसाले एवम् जडी -बूटियों अछूती नहीं रहती है। भारत में पी.आर. मेहता ;च्ण्त्ण् डमीजं पद च्मेजपबपकमे ।ददनंसए 1976द्ध के अनुसार संपूर्ण फसल उत्पादन का 18 प्रतिशत भाग प्रतिवर्ष खेत (कटाई पूर्व) एवम् भंडारण में विभिन्न पादप रोगों, कीट-नाशकजीवों

एवम् खरपतवारों द्वारा नष्ट कर दिया जाता है जिसका मूल्य 5000 करोड़ रूपये, वर्ष 1976 के मूल्यों के आधार पर बैठता है।

सारणी 1.2 सारणी में विभिन्न नाशकजीवों द्वारा समस्त फसलों में होने वाली हानि का मूल्य एवम् प्रतिशत

नाशकजीवा (Pest)	हानि का मूल्य (Loss in Value)	प्रतिशत हानि (% Loss)
1 खरपतवार (Weeds)	1650 करोड़ रुपये	33%
2 रोग (Diseases)	1300 करोड़ रुपये	20%
3 कीट (Insects)	1000 करोड़ रुपये	20%
4 भंडारण नाशकजीव	350 करोड़ रुपये	7%
5 कृंतक जन्तु (Rodents)	300 करोड़ रुपये	6%
6 अन्य नाशकजीव (Other Pests)	400 करोड़ रुपये	8%
योग (Total)	5000 करोड़ रुपये	100%

भारत में फसल उत्पादन की विभिन्न नाशकजीवों द्वारा होने वाली हानि के उपरोक्त आंकड़े वर्ष 1976 के मूल्यों पर आधारित हैं तथा आजकल के मूल्यों को देखते हुए यह हानि तीन चार गुना से कम नहीं होनी चाहिये।

आज जबकि जनसंख्या में वृद्धि तीव्र गति से हो रही है तथा उपरोक्त वर्णित पादप रोगों एवं अन्य नाशकजीवों द्वारा किया जाने वाला विनाश कृषकों, वैज्ञानिकों एवं शासकों के समक्ष एक गम्भीर समस्या बना हुआ है। इस अवस्था में यह आवश्यक है कि हमारा ध्येय, कृषि के लिये उपलब्ध सीमित भूमि पर अधिक से अधिक उत्पादन करना होना चाहिये। ऐसा उस समय ही हो सकता है जबकि उत्पादन प्रोद्यौगिकी का मेल रक्षण प्रोद्यौगिकी के साथ कराया जायेगा। यदि हमने अपना ध्यान फसलों की उनके शत्रुओं से सुरक्षा किये बिना केवल उनके उत्पादन पर ही लगाया तो भोजन में आत्मनिर्भर होना हमारे लिये सदैव एक स्वप्न ही रहेगा। भारत में जहां कृषि भूमि सीमित है तथा जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ रही है, फसलों को यदि रोगों, हानिकारक कीटों एवं खरपतवारों द्वारा हानि से बचा लिया जाये तो हमारे देश में आगे आने वाले वर्षों तक अनाज की कमी नही होगी। इस हानि का प्रभाव हमारे ऊपर केवल आर्थिक रूप से ही नहीं पड़ता अपितु फलस्वरूप अनेक दूसरी राजनैतिक एवं सामाजिक समस्यायें भी उत्पन्न हो जाती है। अतः मानव जाति के कल्याण के लिये तथा देश को समृद्धिशाली एवम् आत्मनिर्भर बनाने के लिये आधुनिक कृषि में पादप रोगविज्ञान का अध्ययन एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि पादप रोगविज्ञान, एक विज्ञान के रूप् में पादप रोगों के विकास एवं उनके कारणों को जानने में हमारी ज्ञान वृद्धि के प्रयास करता है, परन्तु इसके अतिरिक्त भी यह एक अधिक व्यावहारिक लक्ष्य वाली विज्ञान है, जिसका प्रमुख उद्देश्य समस्त पादप रोगों की नियंत्रण विधियों को विकसित करना है जिससे कि पादप रोगों से नष्ट होने वाले अनाज, सब्जियों, फलों एवं दूसरी खाद्य वस्तुओं से बचाया जा सके तथा इन्हें संसार के विभिन्न भागों में करोड़ों भूखे लोगों को उपलब्ध कराया जा

सके। अतः इस पृथ्वी पर जब तक मनुष्य भूखा है तब तक पादप रोगविज्ञानी का मुख्य कर्तव्य है कि वह मानव कल्याण के लिए सभी को पर्याप्त भोजन, रेशा एवं ईधन उपलब्ध कराये।

10.4 पादप रोगविज्ञान का उत्तरदायित्व

पादप रोगविज्ञान की निम्नलिखित जिम्मेदारियाँ है -

1. नई - नई पादप रोग समस्याओं का मूल्यांकन करके उनका समाधान करना।
2. अनुसंधान कत्र्ताओं और प्रसार विशेषज्ञों को प्रशिक्षित करना।
3. पादप रोगों के प्रबन्ध की व्यावहारिक विधियों को ज्ञात करना, जिनको किसान अपने खतों में सुगमता से प्रयोग कर सकें।

10.5 पौधों में रोग की धारणा

हम एक पौधे को स्वस्थ उस समय तक ही कहते हैं, जब तक वह अपने समस्त सामान्य शरीर-क्रियात्मक कार्यो को निरन्तर पूरा करता रहता है और अपनी जननिक शक्ति के अनुसार अनुमानित पैदावार देता रहता है। पौधों के मुख्य शरीर क्रियात्मक कार्यों में सूर्य के प्रकाश से भाजन संश्लेषण करना, भोजन एवंज ल का आवश्यकतानुसार विभिन्न भागों में स्थानान्तरित करना तथा संश्लेषित पदार्थों का उपाचयन एवं जनन इत्यादि क्रियायें आती है। रोगी पौधा इन क्रियाओं में से एक अथवा अधिक को पूरी करने में असमर्थ रहता है जिसके परिणाम-स्वरूप वह अपनी ही जाति के अन्य दूसरे पौधों से भिन्न दिखाई देता है। इस असामान्यता के कारण ही रोगी पौधे के रोगी अंग की अथवा सम्पूर्ण पौधे की मृत्यु हो जाती है। पौधे के किसी एक अंग की क्रिया पर रोग का प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि रोगजनक ने सबसे पहले कौन सी कोशिकाओं अथवा ऊतकों पर आक्रमण किया था। मूल ऊतकों में होने वाली विकृत क्रियाओं अथवा विगलन द्वारा मृदा से जल एवं पोषक तत्वों के अवशोषण पर प्रभाव पड़ेगा और संवहनी ऊतकों पर प्रभाव पड़ने से इन पदार्थों का स्थानान्तरण घट जायेगा अथवा बन्द हो जावेगा, जिसके परिणामस्वरूप पौधों के वायव भागों पर क्षुधा एवं व्यास के चिन्ह दिखाई देंगे। इस अवस्था में इन भागों के ऊतक विकसित नहीं हो सकते है, अथवा अन्त में इनका विघटन भी हो सकता है। इसी प्रकार यदि किसी रोगजनक का आक्रमण पत्तियों के ऊतकों पर होता है तो प्रकाश संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है और पौधों में कार्बनहाइड्रेटस की कमी हो जाती है।

रोग की अभिव्यक्ति का सम्बन्ध पादप अंगों की दुर्बल अथवा निक्रिय अवस्था से होना भी आवश्यक नहीं होता है। अनेक रोगों में पौधों के रोग से प्रभावित ऊतकों उद्वृद्धियां दिखाते है, जिनेक परिणामस्वरूप पिटिकायें एवं गुल्म या अर्बुद विकसित हो जाते हैं, परन्तु यह अवस्थायें पौधें के लिये प्रतिकूल और रोगजनक के लिये अनुकूल होती है।

पादप रोगों को उनके द्वारा उत्पन्न किये गये लक्षणों द्वारा अथवा पौधे की बीमार अवस्था द्वारा पहचाना जाता है। रोग और लक्षण दोनों अलग-अलग अवस्थायें होती है। आधुनिक वैज्ञानिक विचारधार के अनुसार - ''पौधे एवं रोगजनक के बीच हुई पारस्परिक क्रियाओं को रोग कहते है।'' दूसरे शब्दों में रोग वह अभिव्यक्ति है, जिसमें पौधे के किसी अंग की कोशिकाओं और रोगजनक अथवा उससे उत्पन्न एन्जाइम, आविष, एवं वृद्धि नियंत्रकों के बीच जैव रासायनिक

क्रियायें होती है। इन क्रियाओं के फलस्वरूप पौधे की आकृति एवं सक्रियता में परिवर्तन आ जाता है यह परिवर्तन ही पौधे पर रोग लक्षणों के रूप में प्रकट होते हैं।

10.6 पौधों में रोग की परिभाषा

विभिन्न लेखकों ने पौधों में रोग की अलग-अलग परिभाषा दी है, जिनमें से निम्नलिखित मुख्य है -

1. एच.एच. व्हेटजल (H.H. Whetzel, 1935) के अनुसार - ''पौधों में रोग हानिकारक शरीरक्रियात्मक क्रिया है, जो एक प्राथमिक रोगकारी कारक की निरंतर हो रही उत्तेजना के कारण होता है तथा अपसामान्य कोशिकीय क्रिया के द्वारा प्रदर्शित होता है और विशिष्ट विकृति अवस्थाओं, जिन्हें रोग लक्षणों के नाम से पुकारा जाता है, के रूप् में प्रकट होता है।'' ("Disease in plant is injurious physiological activity, caused by continued irration of primary causal factor, exhibited through abnormal cellular activity, and expressed in characteristic pathological conditions called symptoms.")
2. जे.जे. हार्सफाल एवं ए.ई. डाइमंड (J.G Horsfall and A.E Dimond 1959)के अनुसार - ''रोग एक अवस्था नहीं हे, रोग रोगजनक नहीं हैं, रोग क्षति के समान नहीं है रोग निरंतर उत्तेजना के परिणामस्वरूप होता है रोग एक कुक्रियात्मक या हानिकारक प्रक्रम है''।("Disease in not in condition..disease is not the pathogen..disease is not the same as injury...disease Reasult from condition irritation ...disease is a mafunctiong process...")
3. जी.सी. कैन्ट (D.C. Kent, 1973)के अनुसार ''एक विशिष्ट जीव के भीतर ऊजा के उपयोग से परस्पर सम्बन्धित एक रोगजनक की निरन्तर हो रही उत्तेजनाओं के परिणामस्वरूप योग्यता के ह्यास अथवा हानि को रोग कहते है।'' ("Disease is the diminution or loss of the ability to correlates the utilization of energy within an individual as a result of the continued irritations of pathogen")
4. अमेरिकन फाइटोपैथेलोजिकल सोसायटी एवं बिटिश माइकोलोजिकल सोसाइटी द्वारा स्वीकृत रोग की परिभाषा इस प्रकार है - ''रोग एक कुक्रियात्मक या हानिकारक प्रक्रम है जो निरन्तर उत्तेजना के कारण होता है जिसके परिणामस्वरूप कुछ पीड़ा उत्पन्न करने वाले लक्षण उत्पन्न होते है।'' ("Diseas is malfunctioning process that is caused by continuous irritation which results in some suffering producing sumptms.")
5. दास गुप्ता (Das Gupta, 1977) ने समाजवाद के सिद्धान्त ''न्यायियिक जड़वाद ("Dialectical Materilism") की धारणा के आधार पर रोग को इस रूप में परिभाषित किया है ''रोग एक कुक्रियात्मक या हानिकारक प्रक्रम है जिसमें प्रायः परपोषी एवम् रोगजनक

के बीच लगातार पारस्परिक क्रिया होती है, जिसके द्वारा स्वस्थ एवम् रोगग्रस्त अवस्थाओं की गुणात्मक स्थितियों के बीच अनेक मात्रात्मक परिवर्तन होते है।''

सिंह एवम् सहयोगी (Singh et al. 1989) ने उपरोक्त परिभाषाओं एवम् अन्य वैज्ञानिकों द्वारा प्रकट किए गये विचारों के आधार पर रोग की परिभाषा इस रूप में दी है। ''रोग एक पौधे या उसके किसी भाग के तंत्र में किसी जीविय (जैविक) या मध्यजीवीय अथवा अजैव कारक या कारकों द्वारा लायी गयी परिवर्तित एवम् जैव रसायनिक अभिक्रियाओं का एक संपूर्ण योगफल है जो इसके शरीर क्रियात्मक प्रक्रमों को कुक्रियात्मक की ओर आगे बढ़ाता है और अंत में धीरे-धीरे यह परिवर्तन कोशिकीय एवम्/अथवा आकारिकीय स्तर पर स्पष्ट रूप से प्रकट होते है। यह सभी परिवर्तन इतने अधिक परिणाम होने चाहिए कि पौधे की सामान्य एवम् जनन के लिए एक बाधा (आपत्ति) बन जायें''

("A sum total of the altered and induced biochemical reactions in a system of the plant or plant part brought aboput by any biotic or mesobiotic or abiotic factor(s) learning to malfunctioning of its physiological process and ultimately manifesting at cellular and / or morphological level. All these growth and reproduction of the plant.")

उपरोक्त परिभाषाओं में वर्णित इन उत्तेजनाओं प्रक्रमों को रोगजनकों द्वारा परपोषी पौधे में भिन्न-भिन्न परन्तु परस्पर संबंधित निम्न मार्ग विधियों द्वारा लाया जाता है -

1. रोगजनक के परपोषी के सम्पर्क में आने पर परपोषी कोशिकाओं की अंतर्वस्तुओं, का उपयोग करके
2. परपोषी कोशिकाओं को मारकर अथवा अनकी उपाचयी सक्रियताओं में अपने एन्जाइमों, जीव-विषों एवं वृद्धि नियंत्रकों द्वारा बाधा पहंुचाकार
3. अपने स्वयं के लिये परपोषी कोशिकाओं से पोषक द्रव्यों के निरन्तर अवशोषण द्वारा परपोषी को दुर्बल बनाकर तथा
4. वाहिनी ऊतकों से आहार, खनिज पोषक तत्वों एवंज ल के स्थानान्तरण में बाधा पहुंचाकर।

10.7 पादप रोगविज्ञान का इतिहास

पादप रोगविज्ञान पर अब तक प्रकाशित समस्त पुस्तकें पश्चिमी देशों (विशेष रूप् से यूरोप और उत्तरी अमेरिका) द्वारा एकत्र किये गये ज्ञान पर आधारित है। इन पुस्तकों को पढ़ने के बाद कुछ ऐसा आभास होता है कि पौधों के रोगों की ओर सबसे पहले केवल पाश्चात्य देषों के लोगों ने ही ध्यान दिया था। जबकि इन पुस्तकों में यह चर्चा कहीं नहीं मिलेगी कि प्राचीन भारत में पादप रोगविज्ञान के विषय में वस्तु स्थिति क्या थी? पाश्चात्य देशों की इन पुस्तकों में आज लगभग 2400 वर्ष पहले यूनानी दार्शनिक थियोफ्रेस्ट (Theophrastus, 370-286 B.C.) ठण्ब्ण्द्ध द्वारा पौधों के रोगों पर किये गये निरीक्षणों की चर्चा की गई है। जबकि हमारे अपने देश में जहां पर कि कृषि लगभग 4000 वर्ष पुरानी है, अनेक भारतीय प्राचीन ग्रंथों जैसे - ऋग्वेद, अर्थर्ववेद, (1500-500 B.C.) कौटिल्य का अर्थशास्त्र (321-186 B.C.) शश्रुता संहिता (200-

500 A.D.) विष्णु पुराण (500 A.D.) अग्नि पुरान (500-700 A.D.) विष्णु धर्मावतार (500.700 A.D.) इत्यादि में पौधों के रोगों एवं उनके अन्य शत्रुओं तथा उनकी रोकथाम के उपायों का वर्णन बहुतायत में मिलता है। ऋग्वेद में केवल पादप रोगों का वर्गीकरण ही नहीं किया गया है अपितु रोग के जीवाणु सिद्धान्त का भी समर्थन किया गया है। ईसा से चार सौ वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध ने अपने प्रिय शिष्य आनन्द से कहा था - ''आनन्द जब धान में झुलसा या अंगमारी (ब्लाइट) नामक रोग का प्रकोप हाता है तो पूरी फसल चैपट हो जाती है तथा जब गन्ने में झुलसा रोग लगता है तो गन्ने की पूरी फसल नष्ट हो जाती है।'' बुद्ध के इस कथन से सिद्ध होता है कि उस समय भी भारतीयों को पौधों में रोग लगने का ज्ञान था। बराहमिहिर ने अपनी 'बृहत् संहिता' में पादप रोगों की रोकथाम के विषय में लिखा है -

शीत वाता तपे रोगों जायते पाण्डु शुक्तला,
अवृद्धिच प्रवालनां शाखा सोपा रस स्त्रुतिः।।
चिकित्सक मैथेनेष शस्त्रै नदौ विशेषनम्,
विडंग घृत पकत्कन् सेचुयुतु क्षीरववारिणा।।

''वृक्ष शीतलहर सूर्य की तीव्र तपन से झुलस जाते हैं। इन वृक्षों के पत्ते पीले सफेद हो जाते हैं अंकुर कम हो जाते हैं तथा शाखायें सूखने लगती है। दूध जैसा पदार्थ रोगी पौधे निकलने लगता है। रोगी भाग को कलम करके विदंग (एम्बेलिया इाइबीज), घी एवं माटी (सिल्ट) का लेप करना चाहिये, तत्पश्चात रोगी वृक्षों पर जल और दूध का मिश्रण छिड़कना चाहिये। ''वैदिक काल में भी लोगों को यह ज्ञान था कि पौधों को यह ज्ञान था कि पौधों मे ंरोग सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पन्न होते है जबकि पाश्चात्य यूरोप के अधिकांश वैज्ञानिक को इस तथ्य की जानकारी केवल आज से लगभग 150 वर्ष पहले ही हो सकी थी।

प्राचीन भारत में सर्पला द्वारा लिखी गई 'वृक्षायुवेंद' प्रथम पुस्तक है जिसमें पौधों के रोगों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। समस्त पादप रोगों को दो मुख्य समूहों (अ) आन्तरिक रोग (ब) बाह्य रोग में विभक्त किया गया था। आन्तरिक रोग के विषय में अनुमान लगाया गया था कि यह पौधे के तन्त्र में अव्यवस्था के कारण और बाह्य रोग सूक्ष्मजवों एवं कीटों के लिये अनेक उपचार विधियों को भी सुझाया गया था जो अन्धविश्वास के साथ-साथ वैज्ञानिक निरीक्षणों पर आधारित थी। वृक्ष शल्यचिकित्सा, बीज उपचार, पादप धूमन, लेपों द्वारा आवरण, पौधों के विशिष्ट संवर्धन इत्यादि क्रियाओं का प्राचीन भारत मे ंपूर्ण ज्ञान था और आज भी इन विधियों का प्रयोग अनेक रोगों को नियंत्रित करने के लिये मृदा सुधारकों के रूप् में इन पदार्थों को मान्यता दी है। इससे प्रतीत होता है कि पौधों के रोगों की रोकथाम की ऐसी विधियों का प्राचीन भारतीयों को पूर्ण ज्ञान था।

जिस प्रकार पौधों के रोग लक्षणों का वर्णन बाइबिल, शेक्सपियर की कविताओं और नाटकों में मिलता है, इसी प्रकार हिन्दू पुरान शास्त्र, कालिदास के रघुवंश और अन्य प्राचीन भारतीय साहित्य में भी इनका वर्णन मिलता है। बाइबिल में किट्ट कंड मुदुरोमिल और चूर्णिल आसिता, अंगमारी इत्यादि रोगों का उल्लेख किया गया है। थियोफ्रेस्टस ने अपनी पुस्तक ("Enquiry into Plants") पौधों में अन्वेषण'' में पादप रोगों के विषय में न कि प्रयोगों पर।

उसने उल्लेख किया है कि विभिन्न समूह के पौधों पर भिन्न भिन्न रोग उत्पन्न होते हैं जो आत्मग या स्वतः होते हैं अर्थात् कोई बाह्य कारण इनसे सम्बन्धित नहीं होता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि उस समय भी भारतीयों को इस तथ्य की जानकारी थी कि रोग बाह्य कारणों अर्थात् सूक्ष्मजीवों द्वारा उत्पन्न होते हैं। यूरोप और अन्य पाश्चात्य देशों में थियोफ्रेस्ट के बाद अगले 1000 वर्षों तक की पादप रोगों के विषय में कोई निश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकी थी। जबकि रोगों द्वारा फसलों की बहुत अधिक हानि होती रही औश्र उस समय के वैज्ञानिकों के समक्ष यह एक कठिन समस्या बनी रही। उस समय पादप रोगों के लिये अनेक कारणों जैसे देवी शक्ति, जादुगरी, अन्धविश्वास, सितारों व चांद का प्रभाव, गंदी वायु, ईश्वर का कोप इत्यादी उत्तरदायी माना जाता रहा है।

लगभग सत्रहवीं शताब्दी के मध्य संयुक्त सूक्ष्मदर्शी की खोज के पश्चात जीव विज्ञानों के लिये एक नया युग आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम सन् 1675 में हालैंड निवासी ल्यूवेनहॉक ने पहला सूक्ष्मदर्शी यंत्र बनाया और सन् 1883 में उसने इसकी सहायता से जीवाणुओं को देखकर उनका वर्णन किया। जब इन सूक्ष्मजीवों को रोगी पौधों के साथ सम्बन्धित पाया गया जब उस समय यह सुझाव दिया गया था कि राग इन जीवों से पैदा नहीं होता है अपितु यह जीव ही रोगी में स्वतः उत्पन्न हो जाते हैं । इटलर का वानस्पविज्ञ माईकेली (Micheli 1676-1737) सबसे पहला वैज्ञानिक था, जिसने 1729 में कवको का अध्ययन किया और उनके बीजाणुओं को देखा। सन् 1976 में फ्रांस के वानस्पतिविज्ञ टिलेट ने गेहूं के बंट तथा दुर्गन्ध कंड रोग पर एक पत्र प्रकाशित किया, जिसमें उसने प्रयोगों द्वारा सिद्ध किया कि गेहूं के बीजों की सतह पर चिपके ह्युये काले वाले बीजों में स्वच्छ बीजों की अपेक्षा अधिक रोग उत्पन्न होता है। यद्यपि टिलेट को उस समय यह ज्ञान नहीं था कि यह चूर्ण वास्तव में कवक के बीजाणुओं का समूह है, परन्तु फिर भी उसने इस बात पर बल दिया था कि यह रोग काले चूर्ण से निकले कुछ विषैले पदार्थों से उत्पन्न होता है और यदि बीजों को उपचारित करके बोया जाये तो रोग कम उत्पन्न होता है।

आधुनिक पादप रोगविज्ञान की एक विज्ञान के रूप् में आधारशिला उन्नसवीं शताब्दी के आरम्भ में रखी गई थी। यद्यपि उस समय के बहुत पहले परसून (Persoon 1801) ओर फ्रीज़ (Fries 1821) जैसे कुछ वैज्ञानिक कवकों का वर्गीकरण और नामकरण करने में व्यस्त थे, परन्तु इन दोनों का विश्वास था कि किट्ट एवं कंड कवक वास्तव में रोगी पौधों से उत्पन्न होते हैं, भिन्न भिन्न सूक्ष्मजीवों से नहीं। सन् 1807 मे ंप्रिवोस्ट ने सिद्ध किया कि गेहूं का बंट रोग एक कवक के कारण पैदा होता है। उसने बंट कवक के बीजाणुओं और उनके अंकुरण का अध्ययन किया और बताया कि गेहूं के बीजों को नीले थोथे के घोल में भिगोकर बोने से इस रोग को नियंत्रित किया जा सकता है।

जब सन् 1830 और सन् 1845 के बीच आलू का पछेती अंगमारी रोग इंग्लैंड, आयरलैंड और यूरोप में शीघ्रता से फैल रहा था तब रोगों एवं कवकों के आपसी संबंध के विष्सय में वैज्ञानिकों के बीच कोई एक निश्चित मत नहीं था। बर्कली (Berkeley 1846), मॉरेन (Morren 1845) और वॉन मार्शिअस (Von Martius, 1842) जैसे कुछ वैज्ञानिकों का ही यह विश्वास था कि आलू की पछेती अंगमारी रोग कवक से उत्पन्न होता है, परन्तु इन वैज्ञानिकों के

पास अपनी बात उचित सिद्ध करने के लिये प्रायोगिक प्रमाण नहीं थे। आधुनिक प्रयोगात्मक पादप रोगविज्ञान की आधारशिला जर्मन वैज्ञानिक एन्टन डी बैरी (Anton de Bary, 1831-1888)ने रखी थी। उसने सन् 1853 में प्रिवोस्ट द्वारा की गई खोजांे की पृष्टि कर दी थी। इससे पहले फ्रांस के तुल्सने बन्धुओं (R.L. Tulasen and C. Tulasne) ने किट्ट और कंड उत्पन्न करने वाले कवकों का चित्रों सहित वर्णन किया और प्रिवोस्ट के कार्य की भी पृष्टि की। डी बैरी ने आलू का पछेती अंगमारी रोग पैदा करने वाले कवक का विस्तृत अध्ययन करके उसका नामकरण किया और पादप रोगजनकों के रूप् में जीवों के निश्चित प्रमाण दिये। उसने अन्य दूसरे रोगों जैस किट्ट, कंड, मृदुरोमिल आसिता और विगलन इत्यादि का भी अध्ययन किया था। जूलियस कूल ने सन् 1858 मे ंपादप रोगविज्ञान पर सबसे पहली पुस्तक लिखी थी, जिसमे ंउसने रोग के विकास में कवकों के कार्यो का सूम्पूर्ण ज्ञान दिया था। जूलयस कून को ही आधुनिक पादप रोगविज्ञान का जनक समझा जाता है। डी बैरी के सहकर्मी जर्मन के बे्रफेल्ड ने सन् 1875 और 1912 के मध्य सूक्ष्मजीवों के कृत्रिम संवर्धन विधियों की खोज की जिनसे संक्रामक सूक्ष्मजीवों का अध्ययन सरल हो गया।

सन् 1878 में अंगूरों के मृदुरोमिल आसिता रोग ने अमेरिका से यूरोप में प्रवेश किया। उस समय फ्रांस में शराब बनाने के लिये अंगूरों की खेती मुख्य रूप में की जाती थी। डी बैरी द्वारा ही प्रशिक्षित फ्रांस के प्रो. मिलार्डे ने इस रोग के नियंत्रण के लिये बोर्डो मिश्रण खोजा था। उस समय के दो मुख्य आलू का पछेती अंगमारी और अंगूरों के मृदुरोमिल आसिता का नियंत्रण इस मिश्रण द्वारा सफलतापूर्वक किया गया। यद्यपि इस मिश्रण की खोज आकस्मिक रूप से हुई थी, परन्तु सन् 1885 से लेकर आज तक इसके द्वारा अनेक पादप रोगों को नियंत्रित किया जाता है।

बींसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में पादप-वैज्ञानिकों का ध्यान पादन रोगरोधित की आनुवंशिकी का ओर खींचा गया था। सर्वप्रथम बिफ्फेन (Biffen, 1905, 1912) एवं आर्टन (Orton 1900, 1909) ने धान्य किट्टों और कपास, तरबूज, लोबिया इत्यादि के म्लानि रोगों का नियंत्रण रोगरोधी किस्मों को विकसित करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

पादप रोगविज्ञान के विकास के प्रारम्भिक दिनों में वैज्ञानिकों ने केवल कवकों द्वारा उत्पन्न रोगों में ही अधिक रूचि ली थी। परन्तु कवकों की अपेक्षा बहुत छोटे जीवाणुओं का किसी पादप रोग के साथ संबंधित होने पर विचार नहीं किया गया था। सन् 1876 में लुई पास्तेर एवं रॉबर्ट कॉख ने सिद्ध किया कि पशुओं का गिल्टी रोग एक जीवाणु पैदा करता है। इसके शीघ्र बाद सन् 1878 में अमेरिका के पादप रोगविज्ञानी प्रो. टी.जे. ब्यूरिल ने बताया कि नाशपाती और सेब का दग्ध अंगमारी रोग एक जीवाणु के कारण होता है। बाद में अनेक पौधों के जीवाणु रोगों को खोजा गया और सन् 1895 तक अमेरिका के ई.एफ. स्मिथ ने पौधों के जीवाणु रोगों पर अध्ययपन करके जीवाणुओं के महत्व को पादप रोगजनको के रूप में सिद्ध किया।

सर्वप्रथम सन् 1743 में इंग्लैण्ड के नीधम ने पादप परजीवी सूत्रकृमि को गेहूं की पिटिका में हजारों की संख्या में पाया था परन्तु नीधम की खोज के लगभग 100 वर्ष बाद तक भी पादप रोगों में सूत्रकृमि के महत्व की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। सन् 1857 में बर्कली एवं

शाक्त ने चुकन्दर के मूल गांठ (root knot) और पुटी सूत्रकृमि (Cyst memattode) को खोजा था। सन् 1913 से लेकर सन् 1932 तक कौब ने अनेक पादप परजीवी सूत्रकृमियों की संरचना का अध्ययन किया और उनको वगीकृत किया।

विषाणु के विषय में हमारा ज्ञान 70 वर्षों से भी कम पुराना हे, जबकि पौधों में विषाणु जनित रोग हजारों वर्षों से उत्पन्न हो रहे हैं। हॉलैंड निवासी मेयर (Mayer, 1886) पहला व्यक्ति था, जिसने पोधे का विषाणु जनित रोग तम्बाकू मोजेक खोजा था। मेयर ने मोजेक रोग के लक्षण दिखाने वाली तम्बाके की पत्तियों को मसलकर रस निकाला ओर इसको स्वस्थ पत्तियों की मध्यशिरा में संचरित करने से दस दिनों में ही रोग लक्षण प्रकट हो गये। अमेरिका के ई.एफ. स्मिथ ने सन् 1891 में आडू पीत रोग पर कार्य करते हुये दिखाया कि यह एक संक्रामक रोग है और इसका संचरण रोगी पौधे से स्वस्थ पौधे में मुकुलन अथवा कलमन द्वारा हो जाता है। परन्तु वह इस रोग का कोई कारण निर्धारित नहीं कर सका तथा उसने इसको तम्बाकू मोजेक के समान ही बताया था।

पादप विषाणु की प्रकृति पर अध्ययन आरम्भ करने वालों में इवानोव्स्की और बीजेरिन्क के नाम उल्लेखनीय हैं। रूसी अनुसंधाना इवानोव्स्की ने बताया कि तम्बाकू मोजेक उत्पन्न करने वाला रोगकारक चेम्बरलैंड फिल्टर द्वारा छानने पर नीचे निकल जाता है, जबकि इस फिल्टर में जीवाणु ऊपर ही रह जाते हैं। इस बात से उसने निष्कर्ष निकाला कि रोग का कारण जीवाणु से निश्रावित कोई जीव विष अथवा सूक्ष्म जीवाणु था जो फिल्टर छिद्रों से छन कर रस में पहुंच गया था। डच जीवाणु वैज्ञानिक बीजेरिन्क (Beijerink, 1898) प्रथम व्यक्ति था जिसने सिद्ध किया कि तम्बाकू मोजेक रोग किसी सूक्ष्म जीव से उत्पन्न नहीं होता अपितु यह कन्टेजियम विवम फ्लूइडम या संक्रामक जीवित तरल से उत्पन्न होता है, जिसको उसने वाइरस या विषाणु नाम दिया। बीजेरिन्क ने यह भी बताया कि विषाणु पौधे के पुराने ऊतकों की अपेक्षा नये वृद्धि करते हुये ऊतकों में गति करता है तथा सूखी पत्तियों एवं मृदा में भी जीवित रह सकता है। विषाणु की प्रकृति के विषय में एक मुख्य खोज सन् 1953 में स्टेनली ने प्रकाशित की थी। उसने रोगी तम्बाकू की पत्तियों के रस को अमोनियम सल्फेट से उपचारित करके एक क्रिस्टलीय प्रोटीन के रूप में प्राप्त किया और जब इस प्रोटीन को तम्बाकू की स्वस्थ पत्तियों पर पहुंचाया तो पुनः रोग उत्पन्न हो गया। इस प्रकार उसने निष्कर्ष निकाला कि विषाणु को एक स्वोत्प्रेरक प्रोटीन माना जा सकता है, जो कि जीवित कोशिकाओं में गुणन करने की क्षमता रखता है। सन् 1936 में बाॅडन एवं उसके सहयोगियों ने पाया कि विषाणु का क्रिस्टलीय चूर्ण वास्तव में प्रोटीन और न्यूक्लीक अम्ल का बना होता है। सन् 1936 में इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी की खोज के पश्चात् सन् 1939 में काउशी और उनके सहयोगियों ने इस यंत्र की सहायता से विषाणु की आकृति और नाप आदि का अध्ययन किया। जीरर और श्राम ने सन् 1956 में दिखाया कि विषाणु कण से प्रोटीन को अलग किया जा सकता है और अकेला न्यूक्लीक अम्ल ही पौधे में संक्रमण करके पुनः विषाणु बना सकता है।

सन् 1971 में डाइनर ने निश्चित किया कि आलू का तर्कु कंद रोग संक्रामक आर.एन.ए. के एक छोटे एकल सूत्रकीय, वर्तुल अणु द्वारा उत्पन्न होता है, जिसे उसने वाइरॉयड के नाम से

पुकारा था। उस समय से लेकर अब तक दो दर्जन से अधिक दूसरे वाइरायड्स जो पौधों की विभिन्न किस्मों में रोग उत्पन्न करते हैं, को पृथक किया जा चुका है।

सर्वप्रथम सन् 1909 में लैफोन्ट ने यूफार्बिएसी कुल के लैटक्सधर पौधों की लैटेक्स उत्पन्न करने वाली कोशिकाओं में काशाभी प्रोटोजोआ को पाया था। उसके पश्चात सन् 1931 व 1933 में स्टेहेल ने कॉफी वृक्षों के फ्लोएम निर्माण तथा म्लानि उत्पन्न हो जाती है। सन् 1976 में दक्षिण अमेरिका एवं अफ्रीका में नारियल एवं तेल ताड़ वृक्षों के अनेक रोगों के साथ कशाभी प्रोटोजोआ को सम्बन्धित पाया गया है।

सन् 1967 से पहले तक केवल कवक जीवाणु सूत्रकृमि एवं विषाणु को ही पौधों मंे रोग पैदा करने वाले कारण माना जाता रहा था। परन्तु सन् 1967 में कुछ जापानी वैज्ञानिकों ने बताया कि पौधों के कुछ पीत रोग, जो अब विषाणु से उत्पन्न माने जाते थे, वास्तव में माइकोप्लाज्मा सदृश जीवों से उत्पन्न होते हैं। माइकोप्लाज्मा वह सूक्ष्म जीव हैं, जो माप में विषाणु से बड़े और जीवाणु से छोटे होते हैं। न्यूयार्क स्थित बोइस थॉमसन इन्स्टीट्यूट के डॉ. कार्ल मार्मरोश का कहना हे कि माइकोप्लाज्मा सदृश सजीव पिंडों का अनेक पादप रोगों से सम्बन्ध है। पिछले पांच वर्षों में 200 से भी अधिक पादप रोग माइकोप्लाज्मा से संबंधित पाये गये हैं, जबकि यह अब तक विषाणु द्वारा उत्पन्न रोग ही माने जाते थे। माइकोप्लाज्मा अनिश्चित आकार के भित्तिहीन होते हैं और इनके चारों और एक पतली झिल्ली होती है। इनमें राइबोसोम और केन्द्रकीय द्रव्य तो पाये जाते हैं, परन्तु केन्दिक ओर केन्द्रकीय झिल्ली अनुपस्थित होती है। यह रोगी पौधे के फ्लोयम ऊतकों में पाये जाते हैं और पोधांे में रोगवाहक कीटों द्वारा फैलाये जाते हैं। सन् 1972 में डैविस एवं सहयोगियों ने मक्का के कुंठ रोग के साथ एक गतिशील कुंडलाकार सूक्ष्मजीव को देखा था जिसे उन्होंने स्पाइरोप्लाज्मा के नाम से पुकारा था। इनमें भी कोशिका भित्ति का अभाव होता है, अतः इन्हें कुण्डलाकार माइकोप्लाज्मा के नाम से भी पुकारा जाता है।

10.8 आधुनिक भारत में पादप रोगविज्ञान का इतिहास

प्राचीन भारत में पादप रोगों के ज्ञान के विषय में पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। इस देश में आधुनिक पादप रोगविज्ञान का इतिहास अधिक पुराना नहीं है। वास्तव में भारत में इस विज्ञान का श्रीगणेश उन्नीसवीं शताब्दी में ही हुआ था। पाश्चात्य देशों के समान ही हमारे देश में भी इस विषय का विकास कवकविज्ञान के साथ हुआ है। यहां पर सन् 1930 तक पादप-रोगों की अपेक्षा कवकों के अध्ययन पर ही अधिक ध्यान दिया था। उन्नसवीं शताब्दी के मध्य में कुछ यूरोपीय वैज्ञानिकों ने कवकों का अध्ययन आरम्भ किया जो यहां से कवकों को एकत्र करके यूरोप की प्रयोगशालाओं में पहचान हेतु भेजते थे। परन्तु बाद में डी.डी. कनिघम एवं ए. बार्कले ने यहीं पर कवकों का अध्ययन और उनकी पहचान का कार्य आरम्भ किया और इनको बाहर भिजवाना बन्द कर दिया। बार्कले ने शिमला के आस-पास के कंड एवं किट्टों का विशेष रूप से अध्ययन किया। श्री के. आर. कीर्तिकर प्रथम भारतीय वैज्ञानिक थे जिन्होंने यहां कवकों को एकत्र करके उनकी पहचान का कार्य प्रारम्भ किया था।

भारत में कवकों और पादप रोगों पर संगठित अनुसंधान कार्य इस शताब्दी के प्रथम दशक में ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित 'इम्पीरियल एग्रीकल्चुरल रिसर्च इन्स्टीट्यूट' पूसा (बिहार) में आरम्भ किया गया था। आजकल यह संस्थान भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (I.A.R.I) के नाम से नई दिल्ली में स्थित है। पूसा संस्थान में सन् 1910 से पहले ई.जे. बटलर (E.J. Butler) ने भारतीय कवकों ओर उनसे उत्पन्न रोगों का विस्तृत अध्ययन किया। बटलर को भारत में आधुनिक पादप रोगविज्ञान का जनक माना जा सकता है। इस देश में अपने बीस वर्षों के प्रवास काल में उन्होंने उस समय मिलने वाले अधिकांश पादप रोगों का अध्ययन किया और साथ ही पादप रोगविज्ञानिकों के एक दल को भी प्रशिक्षित किया, जिन्होंने इस दिशा में यहां कार्य को आगे बढ़ाने में सहयोग दिया। बटलर ने जिन रोगों का विस्तृत लेखा दिया है, उनमें कपास, अरहर, के म्लानि रोग, गन्ना, आलू, ताड़ी, के विभिन्न रोग ओर धान्यों के किट्ट इत्यादि प्रमुख हैं। उन्होंने 'पिथिएसियस' एवं समवर्गी कवकों का विस्तृत अध्ययन करके उन पर एक मौलिक गं्रथ लिखा तथा आज भी भारत में उनके द्वारा लिखी गई पुस्तक 'फंजाई एण्ड डिसिजेज़ इन प्लान्ट्स (Fungi and Disease in Plants) पादप रोगविज्ञान के लिये एक महान अंशदान के रूप में उपस्थित है।

बटलर के ही एक सहयोगी जे.एफ. दस्तूर (1886.1971) प्रथम भारतीय पादप रोगविज्ञानी थे, जिन्हें कवकों और पादप रोगों के विस्तृत अध्ययन करने का श्रेय जाता है। उनके अध्ययन का विशिष्ट क्षेत्र वंश फाइटोफ्थोरा एवं इसकी जातियों से उत्पन्न एरन्ड एवं आलू के रोग थे। जी.एस. कुलकर्णी ने ज्वार और बाजरा के मृदुरोमिल आसिता एवं कंड रोग पर विस्तृत अध्ययन प्रकाशित किये। एस.एल. अज़रेकर ने कपास का म्लानि, गन्ने का कंड और ज्वार का अर्गट इत्यादि रोगों का अध्ययन किया। उस समय भारत के पादप रोगविज्ञानिकों का झुकाव रोगों के वर्णनात्मक पहलू की ओर अधिक था और उन्होंने रोगों के नियंत्रण उपायों की ओर अधिक ध्यान नहीं दिया था।

बटलर ने सन् 1920 में भारत छोड़ने के पश्चात जिन पादप रोगविज्ञानिकों ने कार्य भार सम्भाला उन्होंने पादप रोगों के अन्य पहलूओं पर भी अध्ययन करना आरम्भ किया। बी.बी. मुन्दकर ने कपास के म्लानि रोग का नियंत्रण करने के लिये रोगरोधी किस्मों के प्रयोग पर कार्य सफलता प्राप्त की। भारत में मिलने वाले अनेक कंड कवकों की पहचान और उनका वर्गीकरण करने का श्रेय भी मुन्दकर को ही जाता है। उन्होंने ही ''भारतीय पादप रोगविज्ञान संस्था'' की स्थापना करके सन् 1948 में इंडियन फाइटोपैथोलोजी का प्रकाशन प्रारम्भ किया। भारत में आगरा कॉलिज के डॉ. कर्मचन्द मेहता का नाम धान्य किट्टों के रोग चक्र की खोज करने में सर्वोपरि है। उनके बाद सबसे विशेष खोज विशेष रूप से एकान्तर परपोषियों के विषय में डॉ. प्रसाद ने की है। किट्ट शोधकर्ताओं में अन्य नाम उप्पल ओर गोखले, दस्तूर ओर पाल, गतानी, रामकृष्ण, सोमानी, वर्मा और गोस्वामी इत्यादि उल्लेखनीय है प्रो. जयचन्द लूथरा एवं उनके सहयोगियों ने अनावृत कंड को रोकने के लिये गेहूं के बीजों की सौर ऊर्जा उपचार विधि को विकसित किया। अन्य कंड को रोकने के लिये गेहूं के बीजों की सौर ऊर्जा उपचार विधि से विकसित किया। अन्य कंड शोध कर्ताओं में बटलर ओर मुन्दकर, सत्तार, एन. टन्डन ने अनेक कवक विज्ञानियों को प्रशिक्षित

किया, जिन्होंने पादप रोगजनक कवकों की कार्यिकी, विशेष रूप से फल विगलनों के ज्ञान को बढ़ाया। कपास के रोगों पर खोज करने वालों में वासुदेव, लूथरा, लिखिते और कुलकणी सिक्का एवं प्रसाद इत्यादि के नाम उल्लेखनीय है। आलू के रोगों पर कार्य करने वालों में एम.के. पटेल, बी.पी. भिड़े ओर जी. रंगास्वामी इत्यादि के नाम उद्धत किये जा सकते हैं। थिरूमलाचार ने किट्टों एवं कंड रोगों पर गहन अध्ययन किया और 'हिन्दूस्तान ऐन्टीबायोटिक्स' में चले जाने के पश्चात् ऑरियोफन्जिन और स्ट्रैप्टोसाइक्लीन प्रतिजैविक पदार्थों को विकसित किया तथा इनके प्रयोग को पादप रोग नियंत्रण में सफलता पूर्वक प्रवेश कराया। एस.पी. रायचैधरी ने विषाणुओं एवं कवकों से उत्पन्न रोगों का विस्तृत अध्ययन किया। उनका विषाणुओं के लाक्षणिक गुण, संचरण तथा उनके नियंत्रण पर किया गया कार्य तो बहुत महत्व का है। इन्होंने कई नये विषाणुआं को भी खोजा है। पादप रोगों पर अनुसंधान करने वाले वैज्ञानिकों न डॉ. एच.के. सक्सेना का विशिष्ट स्थान है। इनके द्वारा संपादित राजजोक्टोनिया वंश का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन्होंने पौधों में रोग उत्पन्न करने वाले कवकों की परजीविता पर मृतजीवी उत्तरजीविता तथा राइजोक्टोनिया वंश के कवकों का वर्गीकरण, कोशिका अध्ययन, परजीविता एवं उनके नियंत्रण पर विशेष कार्य किया है। डी.एन. श्रीवास्तव ने विभिन्न कवकों एवं जीवाणुओं से उत्पन्न रोगों पर अनुसंधान किया जिसमें धान के जीवाणुज अंगमारी रोग का कार्य तो बहुत महत्व का है। इसके अतिरिक्त इन्होंने संक्रमण की प्रक्रिया रोगजनकजनन तथा रोग प्रतिरोधिकता पर भी उल्लेखनीय कार्य किया है।

भारतीय विश्वविद्यालयों में पादप रोग विज्ञान के शिक्षण का कार्य एक मुख्य विषय के रूप में बहुत देर से आरम्भ हुआ था। सर्वप्रथम सन् 1857 में तीन भारतीय विश्वविद्यालयों कलकता, बम्बई, मद्रास की स्थापना की गई थी। आरम्भ में इन विश्वविद्यालयों में कवकीय वर्गिकी के अध्ययन को ही अधिक महत्व दिया गया था। सम्भवतः सर्वप्रथम मद्रास विश्वविद्यालय ने पादप रोगविज्ञान को एक विश्वविद्यालय के रूप में मान्यता प्रदान की थी। इलाहाबाद (1887 में स्थापित) एवं लखनऊ (1921 में स्थापित) विश्वविद्यालय ने भी पहले कवकविज्ञान एवं पादप रोगविज्ञान के व्यवस्थित शिक्षण कार्य का ''भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान'' द्वारा मार्ग प्रशस्त किया गया जो बाद में विकसित हुआ और इस संस्थान ने इस विषय में उपाधि देना प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि आगरा विश्वविद्यालय ने इससे पहले ही सन् 1945 में राजकीय कृषि महाविद्यालय, कानपुर (अब चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रावैधिक विश्वविद्यालय, कानपुर) में पादप रोगविज्ञान में स्नातकोत्तर कार्यक्रम का प्रवेश करा दिया था। सन् 1960 में और उसके बाद अनेक कृषि विश्वविद्यालयांे की स्थापना के पश्चात् पादप रोगविज्ञान एवं इसके सहायक पाठ्यक्रम जैसे कवकविज्ञान, जीवाणुविज्ञान, विषाणुविज्ञान, जीवरसायनविज्ञान, इत्यादि के शिक्षण का कार्य कृषि में स्नातक एवं स्नातकोत्तर कार्यक्रमों क एक महत्वपूर्ण अंग बन गये। अब यह कृषि विश्वविद्यालय ही पादप रोगविज्ञान में अनुसंधान एवं शिक्षण कार्य का नेतृत्व कर रहे हैं।

आज भारत में अनेक पादप रोगविज्ञानिकों एवं कवकविज्ञानिकों की एक सुसंगठित श्रृंखला है जो दिनांे दिन अनेक पादप रोग समस्याओं और उनके नियंत्रण उपायों पर शोध कर्य करने में संलग्न है तथा भारतीय कृषि को प्रगति के मार्ग की ओर अग्रसर करने में सहयोग दे रहे हैं।

10.9 पादप रोग प्रबंध के सामान्य सिद्धान्त

सर्वप्रथम ह्वीटजेल (Whetzel, 1929) ने पादप रोग नियंत्रण (प्रबन्ध) की विधियों या सिद्धान्तों को चार मुख्य समूहों (1) अपवर्जन (2) उन्मूलन (3) रक्षण (4) प्रतिरक्षण या असंक्रमीकरण के रूप में वर्गीकृत किया था। परन्तु पादप रोगविज्ञान में उन्नति के फलस्वरूप तथा पादप रोग नियंत्रण (प्रबंध) के नये विकसित एवम् उपचार या चिकित्सा को भी सम्मिलित कर लिया गया। इस प्रकार रोग प्रबन्ध निम्न छः सामान्य सिद्धान्तों पर आधारित होता है -

1 रोगजनक का पलायन अथवा परिहार या परिवर्जन

2 निवेशद्रव्य सा संरोप का अपवर्जन

3 रोगजनक का उन्मूलन

4 रक्षी या संरक्षी उपाय अथवा रक्षण

5 परपोषी में रोग प्रतिरोध का विकास

6 रोगी पौधे की चिकित्सा या उपचार

उपरोक्त सिद्धान्तों में से प्रथम पांच सिद्धान्त मुख्य रूप से निरोधक अथवा रोगीनिरोधी उपाय होते हैं तथा पादप रोग प्रबंध की प्रमुख प्रक्रियाओं का निर्माण करते हैं। इनका व्यावहारिक प्रयोग पादप समष्टियों अर्थात् सामूहिक पौधों अथवा फसलों पर किया जाता है, जबकि अंतिम सिद्धान्त 'रोगी पौधे की चिकित्सा या उपचार' एक रोगहर विधि है और ''रोग प्रबंध'' की धारणा के अन्तर्गत इसे केवल अकेले पौधों पर ही प्रयोग किया जाता ह ।इन सभी सामान्य सिद्धान्तों को निम्न पांच संवर्गों में वर्गीकृत किया गया है (Horsfall and Cowling, 1977)

(i) कर्षण नियंत्रण सहित भौतिक पर्यावरण (वातावरण) का प्रबंध

(ii) संबद्ध सूक्ष्मजीविता का प्रबंध जिसमें विरोध शामिल है

(iii) परपोषी जीन का प्रबंध

(iv) रसायनों से प्रबंध

(v) चिकित्सा या उपचार, विकिरण एवम् विभज्योतक संवर्धन से प्रबन्ध

पादप रोग प्रबन्ध के छः सिद्धान्त जो पादप रोग प्रबंध की आधुनिक अवधारणा के लक्षणों का वर्णन करते हैं को निम्न तीन आधार बिन्दुओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

अ या तो वह प्रारम्भिक निवेशद्रव्य (संरोपण) को कम करने अथवा रोग विकास को दर को घटाने से सम्बन्ध रहते है;

चार्ट 18.2 : पादप रोग प्रबंध के सिद्धान्तों, प्रक्रियाओं तथा रोग पिरामिड के घटकों एवम् रोगजनन के तत्वों के बीच सम्बंध

(The Relationship between Principles, Practices of Plant Disease Management and Components of Disease Pyramid and Elements of Pathogenesis)

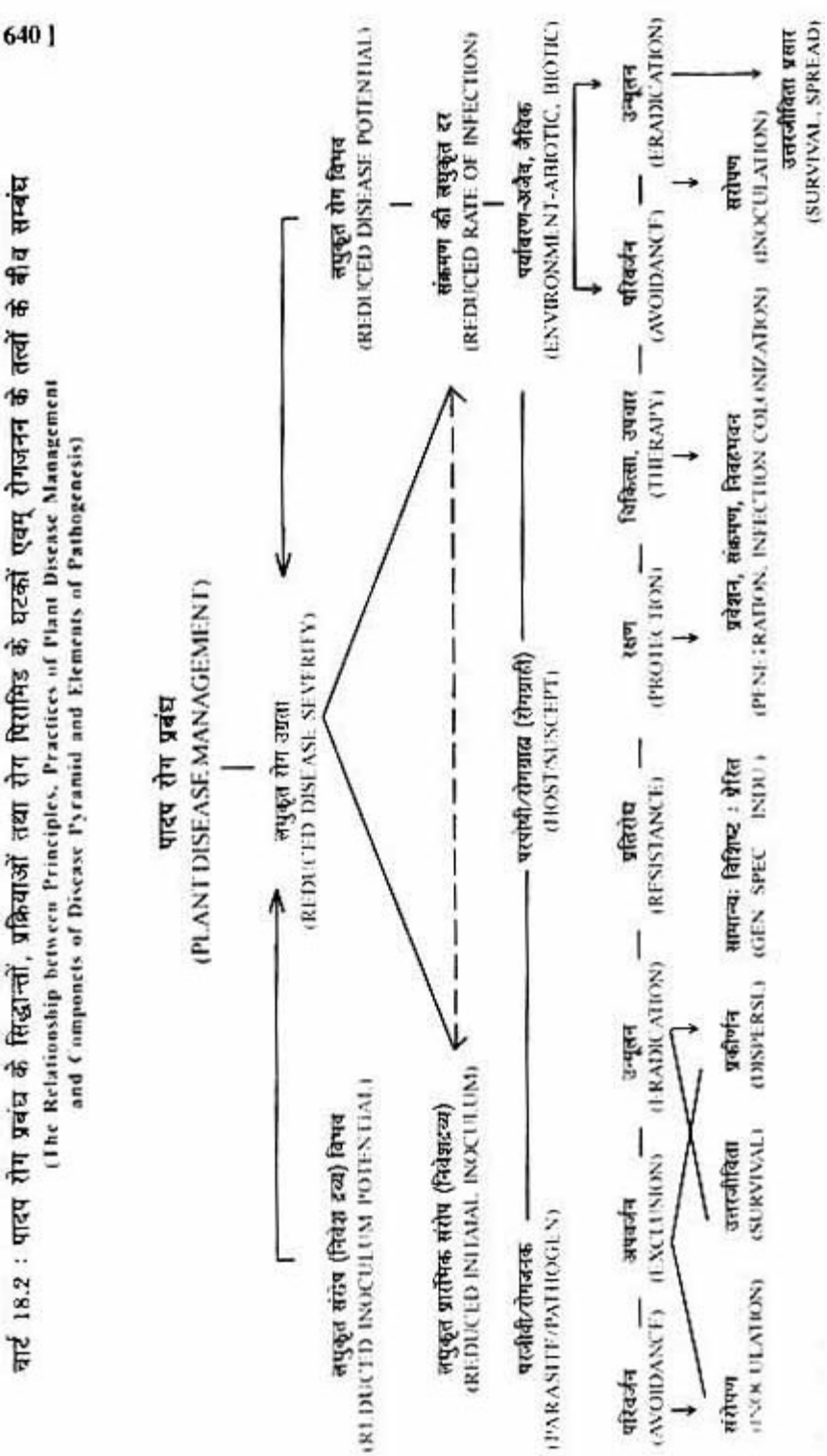

ब या फिर वह मुख्य रूप से रोगजनक की संख्या को नियंत्रित करने, रोगग्राही पौधे की रोगमुक्ति एवम् प्रतिरक्षा करने अथवा रोग विकास में सहायक पर्यावरण से पौधे की रक्षा करने से सम्बद्ध रहते है, और

स या फिर वह रोग के रोगजनक की उत्तरजीविता, प्रकीर्णन, निवेशन (संरोपण), प्रवेशन या संक्रमण में बाधा पहुंचाने में सम्बद्ध रहते हैं।

पादपरोग प्रबन्ध के सिद्धान्तों की इन सभी पारस्परिक क्रियाओं को मूल रूप से बेकर (Baker, 1968) तथा राबर्ट एवं बूथरायड (Robert and Bothroyd, 1972) द्वारा प्रस्तावित किया गया है, तथा चार्ट 18.2 में परिवर्तन रूप में दिखाया गया है।

1. रोगजनक का पलायन या परिवर्जन

रोगजनक के पलायन या परिवर्जन के अन्तर्गत रोग प्रबन्ध के वह उपाय आते हैं जिनका मुख्य ध्येय परपोषी पोधे को रोगजनक के सम्पर्क में आने से बचाना है, जिससे कि पौधे की रोगग्राही अवस्था एवम् रोगजनक के अनुकूल अवस्थाएं एक साथ न मिल पायें। इस समूह के अन्तर्गत निम्न सिद्धान्त आते है -

1. **भौगोलिक क्षेत्र का चुनाव** - किसी फसल के लिये भौगोलिक क्षेत्र का चुनाव उस क्षेत्र में फसल के लिये उपस्थित तापमान एवं आर्द्रता की अनुकूलता पर आधारित होता है। इन कारकों के द्वारा पौधों में उत्पन्न होने वाले रोग भी प्रभावित होते हैं। अनेक कवकों एवं जीवाणुओं से उत्पन्न रोग शुष्क क्षेत्रों की अपेक्षा आर्द्र क्षेत्रों में अधिक उग्र रूप से उत्पन्न होते हैं। बाजरे में कंड एवं अर्गट रोग उन आर्द्र क्षेत्रों में अधिक उत्पन्न होते हैं, जहां फसल में पुष्पन अवस्था के समय बहुत दिनों तक वर्षा होती रहती है। अतः यदि इन फसलों को शुष्क क्षेत्रों में सिंचाई के साधन बढ़ाकर उगाया जाये तो इनका रोगी से बचाव किया जा सकता है।
2. **खेत का चयन** - अनेक मृदोढ़ रोगों का प्रबंध उपयुक्त खेत का चयन करके भी किया जा सकता है। यदि एक खेत में किसी फसल के मृदोढ़ रोग का रोगजनक उपस्थित होता है, तब यह उपयुक्त होगा कि उस खेत में कुछ वर्षों के लिये उस फसल को न बोया जाये। गन्ने के लाल सड़क रोग का रोगजनक कोलेटोट्राइकम फालकेटम मृदा में कुछ महीनों के लिये जीवित रह सकता है। अतः यदि रोगी फसल काटने के पश्चात् द्बारा उसी खेत में गन्ना बोया जाता है, तब रोग के उग्रता से उत्पन्न होने के अवसर बढ़ जाते हैं, अतः रोगग्राही फसलों के लिये इस प्रकार के खेतों का चुनाव नहीं करना चाहिये। खेतों का चयन में जल निकास का प्रबन्ध भी एक मुख्य स्थान रखता है, अनेक रोग जैसे गन्ने का लाल सड़न, बाजरे का मृदुरोमिल आसिता इत्यादि उन खेतों में अधिक उत्पन्न होते हैं, जहां भूमि जलाक्रांत होती है। फलोद्यानों को लगाते समय भी स्थान का चयन महत्वूपर्ण स्थान रखता है।
3. **बोने के समय का चुनाव** - कुछ रोग उस समय अधिक उग्र रूप में उत्पन्न होते हैं, जब पादप वृद्धि की रोगग्राही अवस्था एवं रोगजनक के लिये अनुकूल अवस्थायें एक ही समय में एक साथ मिल जाती है। बोने के समय में परिवर्तन करके रोगजनक के लिये अनुकूल अवस्था में फसल को बचाया जा सकता है।
4. **रोग पलायन किस्में** - विभिन्न फसलों की कुछ किस्में अपने वृद्धि गुणों के कारण रोग उत्पन्न होने वाली हानि से बचाव करती हैं। इन किस्मों में रोग बचाव का गुण उनकी

आनुवंशिक रोग प्रतिरोध के कारण नहीं होता अपितु यह उनके वृद्धि गुणो एवं पकने के समय के कारण होता है। उदाहरण के लिए मटर की शीघ्र पकने वाली किस्में (जनवरी) चूर्णिल आसिता एवं किट्ट रोगों से बचाव करती है, क्योंकि इन रोगों से हानि जनवरी माह अथवा उसके बाद में बहुत अधिक होती है। यदि रोग के उग्र रूप में उत्पन्न होने से पहले ही फलियां पूर्ण रूप् से विकसित हो जाती है, तब हानि बहुत घट जाती है।

5. **बीज का चयन -** फसलों में अनेक रोग केवल बीज अथवा दूसरे रोपण पदार्थों जैसे कलमों, कंदों, शल्ककंदों इत्यादि द्वारा उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के रोगों का प्रबन्ध केवल रोग मुक्त बीजों एवं रोपण पदार्थों का उचित चयन करके किया जा सकता है।
6. **कर्षण प्रक्रियाओं का परिवर्तन -** विभिन्न कर्षण क्रियायें जैसे पौधों के बीच की दूरी, सिंचाई का समय एवं संख्या, रोपण का समय एवं विधि, मिश्रित फसल, उर्वरकों अथवा जैव खादों की मात्रा एवं गुण, बोते समय बीज की गहराई इत्यादि भी अनेक रोगों के उत्पन्न होने एवं उनकी उग्रता पर प्रभाव डालती है। इन प्रक्रियाओं में आवश्यक परिवर्तन करके फसलों में रोगों द्वारा होने वाली हानि को कम किया जा सकता है।

2 निवेषद्रव्य संरोप का अपवर्जन

निवेशनद्रव्य या संरोप का अपवर्जन निम्न विधियों द्वारा किया जा सकता है -

बीज उपचार - फसलों के बीजों, कंदों, शल्ककंदों, कलमों एवं अन्य रोपण पदार्थों के भीतर अथवा उसके सतह पर उपस्थित रोगजनक का उष्मा, गैस अथवा रसायनों द्वारा उपचारित करके अपवर्जन किया जा सकता है। इस विधि में रोगजनक के उन्मूलन द्वारा अपवर्जन के लिये किया जाता है तथा इन उपचारों द्वारा रोगजनकों को नये क्षेत्र में प्रवेश करने से रोका जा सकता है।

3 **पादप या पौध संगरोध -** पादप संगरोध का उद्देश्य रोग्रस्त क्षेत्रो से रोगरहित क्षेत्रों में रोगजनको के प्रवेश को रोकना होता है। यदि किसी विशेष क्षेत्र मे फसल का कोई रोग उग्रता से उत्पन्न होता है और उसके रोपण पदार्थों द्वारा फैलने की सम्भावना रहती है, तब किसी देश या राज्य की सरकार द्वारा आवश्यक अधिनियमों को पारित करके रोगग्रस्त क्षेत्रों से इन पदार्थों के प्रवेश पर रोक लगा दी जाती है। संगरोध विनियम केवल उस समय ही प्रभावी हो सकते हैं, जबकि किसी भयंकर रोग का आयात किये गये परपोषी पदार्थों द्वारा होता है। परन्तु यदि निवेशद्रव्य का प्रकीर्णन प्राकृतिक साधनों, जैसे वायु, जल इत्यादि द्वारा होता है, तब यह प्रभावी नहीं होते हैं। इस प्रकार के विनियम उस समय भी आवश्यक होते हैं, जब किसी रोगजनक के प्रसुप्त अंगों की निष्क्रिय पदार्थों जैसे बोरे, टोकरी, लकड़ी की पेटियाँ या पैकिंग सामग्री इत्यादि द्वारा नये क्षेत्र मंे प्रवेश करने की सम्भावना रहती है।

4 **रोगवाहक कीटों का उन्मूलन -** अनेक रोगों को कीटों द्वारा फैलाया जाता है। यह कीट निवेश द्रव्य या संरोप को एक क्षेत्र से दूसरे में फैला देते हैं। अतः किसी नये रोगजनक के प्रवेश को रोकने के लिये इन कीटों का उन्मूलन होता है।

3 रोगजनक का उन्मूलन

रोगजनक के उन्मूलन के अन्तर्गत निम्न सिद्धान्त आते हैं -

1 पादप रोगजनको का जैव या जैविक नियंत्रण - जैव नियंत्रण का मुख्य ध्येय अन्य दूसरे सूक्ष्मजीवों की क्रियाओं द्वारा रोगजनकों का उन्मूलन और नियंत्रण करना है। इस विधि के अन्तर्गत वह उपाय आते हैं, जो मृदा में अथवा संक्रमण के स्थान पर सूक्ष्मजीवों की क्रिया को बढ़ा देते हैं। सूक्ष्म जीवों द्वारा विरोध का प्रभाव जीवनाशी अथवा जैव रोधक हो सकता है। जीवनाशी में एक सूक्ष्मजीव, दूसरे रोगजनक सूक्ष्मजीव को मार देता है, जबकि जैव रोधक में किसी रोगजनक की वृद्धि को दूसरे सूक्ष्मजीव द्वारा रोक दिया जाता है। कार्बनिक पदार्थों से मृदा सुधार इस विधि के अन्तर्गत ही आता है। मृदा में जैव या कार्बनिक पदार्थों के विघटन से सूक्ष्मजीवों क्रियाओं को बढ़ावा मिलता है, जिससे कि इन सूक्ष्मजीवों के कुछ सदस्य रोगजनक जीवों का दमन करते हैं अथवा उनको मार देते हैं। भारत में मृदा के कार्बनिक सुधारक पदार्थों द्वारा मूल-गांठ सूत्रकृमि और आलू के काली पपड़ी रोग का प्रबन्ध करने में सफलता मिली है। इसी प्रकार कार्बनिक मृदा सुधारकों द्वारा अनेक मृदोढ़ रोगों का नियंत्रण किया गया है।

2 सस्यावर्तन या फसल चक्र - फसलों की खेती करने में भूमि विकार एक मुख्य समस्या रही है। जब एक खेत में निरन्तर एक ही फसल ली जाती है, तब उस फसल के मृदोढ़ रोगजनक भूमि में सुगमता से चिरकालिक बने रहते है और उनकी संख्या में अधिक वृद्धि होती रहती है। कुछ समय पश्चात् भूमि इतनी अधिक ग्रस्त या बाधित हो जाती है कि उसमे उस विशेष फसल की खेती करना कठिन हो जाता है। अतः रोगग्रस्त खेत में फसलों को हरे-फेर कर बोने से अनेक मृदोढ़ रोगों का प्रबन्ध किया जा सकता है।

3 रोगी पौधों या पादप अंगों को हटाना एवं नष्ट करना - रोगी पौधों या उनके अंगों को निम्न विधियों द्वारा हटाकर एवं नष्ट करके रोगजनक का उन्मूलन किया जा सकता है -

अ अवांछित का निष्कासन या अपावांछन - इस विधि में खेत से रोगी पौधों को उखाड़ कर अथवा उनके रोगग्रस्त भागों को काट कर नष्ट कर दिया जाता है। ऐसा करने से रोगी पौधो से स्वस्थ पौधों में रोग का प्रसार रूक जाता है तथा रोग मुक्त बीजों का उत्पन्न करने में सहायता मिलती है। अपावांछन विधि का प्रयोग कुछ रोगों जैसे गेहूं का अनावृत कंड, जौ, मक्का इत्यादि के अनावृत एवं आवृत कंड, गन्ने का लाल विगलन, अरहर की म्लानि इत्यादि में किया जा सकता है।

ब एकान्तर एवं संपाश्विक परपोषियों का उन्मूलन - अनेक पादप रोग जो विशेष रूप् से निरन्तर संक्रमण श्रृंखला वाले होते हैं, अपने रोगजनकों के एंकातर या संपाश्विक परपोषियों द्वारा चिस्थायी रहते है। इन परपोषी पर प्राथमिक निवेशद्रव्य का उत्पादन होता है तथा इन्हीं से उसका प्रर्कीणन फसल पर होता है। यदि रोगजनकों के इन जंगली अथवा अलाभकर परपोषियों को नष्ट कर दिया जाये तो प्राथमिक निवेशद्रव्य का साधन दूर हो जाता है तथा फसल पर रोग लगने के अवसर कम हो जाते हैं। संसार के कुछ भागों में धान्य किट्ट अपने एकान्तर परपोषी पर जीवित रहते हैं। इन परपोषियों को नष्ट करके

रोगजनकों के जीवन चक्र अथवा संक्रमण श्रंृखला को तोड़ा जा सकता है। खेतों के आस पास उगने वाले खरपतवारों पर भी अधिक रोगजनक चिरकालिक बने रहते हैं। इन खरपतवारों में से रोगजनक के सम्भव परपोषी को खोजना और नष्ट करना भी पादप रोग प्रबन्ध में एक महत्वपूर्ण कदम होता है।

स सफाई - पौधे की सफाई के समान ही खेत की सफाई भी अनेक मृदोढ़ एवं विकल्पी या मृतजीवी रोगजनक का प्रबन्ध करने में बहुत आवश्यक होती है। अनेक अविकल्पी परजीवी भी मृदा में पड़े पौधे के भागों में प्रसुप्त संरचनाआंे द्वारा चिरकालिक बने रहते हैं। खेत में पड़े रोगी फसल के मलबे को जलाकर नष्ट करने से इस प्रकार जीवित रहने वाले रोगजनकों को समाप्त किया जा सकता है। मिट्टी पलटने वाले हल से मलबे को अधिक गहराई में दबाना भी इसमें सहायक हो सकता है। इस विधि के द्वारा गेहूं, जौं, मटर को चूर्णिल आसिता, मटर एवं मक्का की मृदुरोमिल आसिता गन्ने का लाल सड़न इत्यादि रोगों की रोकथाम में सहायता मिल सकती है।

4 रोगी पौधों का उष्मा एवं रासानिक उपचार - पौधे अथवा इसके विशिष्ट अंगों मंे उपस्थित रोगजनक को उष्मा अथवा रासायनिक उपचारांे के द्वारा निष्क्रिय किया जा सकता है अथवा मारा जा सकता है। यह विधि मुख्य रूप में फल वृक्षों के रोगों में अधिक उपयोगी पाई गई है। इसका प्रयोग परपोषी पर उपस्थित रोगजनक की सुप्त संरचनाओं अथवा उसकी वृद्धि को नष्ट करने के लिये भी किया जा सकता है। जब यह विधियों पोधें के आन्तरिक ऊतकों में उपसिथत रोगजनक को प्रभावित करने योग्य होती है। तब इनको उष्मा चिकित्सा अथवा रसायन चिकित्सा के अन्तर्गत रखा जाता है।

5 मृदा उपचार - मृदा उपचार का मुख्य उद्देश्य मृद में उपस्थित रोगजनकों को निष्क्रिय करना अथवा उन्मूलन करना है। इसके लिये विभिन्न रसायन उष्मा अधिसिंचित या आप्लावन, परती छोड़ना इत्यादि विधियों का प्रयोग किया जाता है। आजकल भूमि के रासायनिक उपचार के लिये अनेक प्रकार के रसायनों का प्रयोग किया जाता है, धूलि या दानेदार रूप् में मिलते हैं। मृदा में इन रसायनों का प्रयोग खेत मे बीज बोते समय अथवा खाद फसल में किया जाता है ओर वह जल में घुल कर मृदा धूमक के रूप में प्रभाव डालते हैं। मृदा में उपस्थित मृदोढ़ रोगजनकों का उन्मूलन उष्मा उपचार द्वारा भी किया जाता है। इस विधि का प्रयोग गमलों, नर्सरी एवं पादप गृहों की मृदा उपचारित करने के लिये किया जाता है।

विशेष अवस्थाओं में मृदोढ़ पादप रोगजनकों का उन्मूलन खेत के आप्लान या अधिसिंचन द्वारा भी किया जाता है। यदि खेत में 12 इंच गहराई तक जल कोे कई सप्ताहों तक खड़ा रहने दिया जाता है, तब अवायुजीवी जीवाणुओं द्वारा अथवा निम्न आक्सीजन अवस्थाओं और वायुजीवी जीवाणुओं से उत्पन्न आविषों द्वारा अनेक कवकों एवम पादप परजीवी सूत्रकृमियों को नष्ट कर दिया जाता है। अनेेक रोगजनकों की सुप्त संरचनायें भी जल की सतह पर तैरने लगती है और यदि खेत में इस जल का निकास तुरंत कर दिया जाये तो यह संरचनायें भी बह जाती है। कुछ देशों में केले की फ्यूजेरियम म्लानि एवम सब्जियों के मूल गं्रथि गेंग का नियंत्रण अधिसिंचन

द्वारा किया जाता है। कृषि के प्रारम्भिक काल से ही सूक्ष्म पोषक तत्वों को मृदा में बनाये रखने के लिए भूमि को परती छोड़ने की प्रथा चली आ रही है। इस विधि में अनेक मृदोढ़ रोगजनकों के निवेशद्रव्य को कम करने में सहायता मिलती है। परन्तु जिन देशों में जनसंख्या के अनुपात में कृषि भूमि बहुत कम है वहां पर भूमि को परती छोड़ना कटिन होता है।

4 रक्षक या संरक्षी उपाय अथवा रक्षण

1 **रासायनिक उपचार** - रसायनिक छिड़काव बुरकना बीज उपचारों का मुख्य उद्देश्य परपोषी सतह पर एक रक्षी विषैली परत बनाना होता है। जिसे कि रोगजनक संरक्षी आवरण बनाने के लिये जिन रसायनों का प्रयोग मे लाया जाता है। वह रक्षी रसायन कहलाते है। परन्तु जब यह रसायन परपोषी सतह पर पहले से स्थापित करके अथवा दूसरे परजीवी को नष्ट करते है उस समय वह उन्मुलक रसायन कहलाते है एक ही रसायन रक्षी के साथ साथ उन्मूलक न हो सकता है।

2 **रोगवाहक कीटों का रासायनिक नियंत्रण** - खड़ी फसल पर कीट के आक्रमण को रक्षी कीटनाशियों के प्रयोग द्वारा रोका जा सकता है। कीटो का अनेक जातियां विषाणु जनित एवं अन्य रोगों का मुख्य रोगवाहक होता है। कुछ विषाणु जनन रोगों का संचरण केवल रोग वाहक कीटों द्वारा हो जाता है। इस प्रकार के रोग नियंत्रण इन वाहक कीटों के समय पर नष्ट करके किया जा सकता है।

3 **पर्यावरण का परिवर्तन** - पौधे की पत्तियों या दूसरे वायव भागांे वा वातन के सुधार से आर्द्रता घट जाती है, जिस कारण से आर्द्र वायुमंडल में पनपने वाले कवकों की वृद्धि रूक जाती है। इस विधि द्वारा अंगूरों के मृदुरोमिल आसिता रोग का प्रबन्ध करने की सिफारिश की जाती है। इसी प्रकार सिंचाई की संख्या एवं मात्रा में कमी द्वारा भी पर्यावरण का परिवर्तन करना कुछ रोगजनकों के विरूद्ध सहायक होता है। मिश्रित सस्यन (Mixed cropping) के द्वारा भी रोगजनक के लिये प्रतिकुल पर्यावरण बनाने में सहायता मिल सकती है। फलों एवं सब्जियों में कटाई के पश्चात् होने वाली विगलन इनको ठंठ एवंम् शुष्क कमरों में संग्रह करके कम की जा सकती है, क्योंकि विगलन उत्पन्न करने वाले कवकों के लिये गरम एवं नम अवस्थायें अनुकूल होती है। आलुओं की शीत गृहों में रखना भी रोगजनकों के विरूद्ध पर्यावरण परिवर्तन का एक प्रमुख उदाहरण है। खेत में मृदा में नमी एवम् वातन जैसे पर्यावरण कारकों का नियंत्रण अथवा परिवर्तन तापमान की अपेक्षा अधिक सुगम होता है। कुछ मृदोढ़ रोग उच्च तापमान वाली भूमि में अधिक उत्पन्न होते है, इस अवस्था में खेत की सिंचाई द्वारा मृदा का तापमान कम करके रोग से फसल की रक्षा की जाती है।

4 **परपोषी पोषक का रूपान्तरण** - पौधों के कुछ रोगों में पोषणों के प्रभाव से भी रोग तीव्रता में कमी पाई जाती है। अनेक पत्ती या पर्ण रोगों के लिये उच्च नाइट्रोजन पोषण, अनुकूल होते है, जबकि नाइट्रोजन का कम प्रयोग करने से यह रोग भी घट जाते हैं और पौधे के अंग रोग प्रतिरोधी हो जाते हैं, क्योंकि कोशिका भित्तियों में पेक्टिक तत्वों के कारण दृढ़ता आ जाती है। और इनसे रोगजनकों के पेक्टिक एन्जाइम की क्रिया में बाधा उत्पन्न होती है। इसी प्रकार सूक्ष्म - पोषक तत्वों जैसे बोरॉन, जिंक, मैंगनीज इत्यादि

द्वारा अनेक रोगों की तीव्रता को कम किया जा सकता है। फसलों पर इन पोषक तत्वों के छिड़काव द्वारा ऊतकों में इनके स्तर को बढ़ाकर पोधों की अनेक रोगों से रक्षा की जाती है।

5. परपोषी में रोग प्रतिरोध का विकास

परपोषी में रोगप्रतिरोधिता का विकास निम्न विधियों द्वारा किया जाता है -

1. **रोग प्रतिरोध के लिये चयन का संकरण** - पौधों में अनुवंशिक रोग प्रतिरोध परपोषी परपोषी की क्रियात्मक, संरचनात्मक अथवा क्रियाशीलता पर आधारित हो सकता है। शरीर-क्रियात्मक रोग प्रतिरोध परपोषी कोशिका में प्रति-संक्रमण पदार्थों के विकसित होने या इनकी उपस्थिति होने अथवा रोगजनक के लिये अनुकूल पोषकों की अनुपस्थिति होने पर आधारित होता है। संरचनात्मक रोग प्रतिरोध में रोगजनक की वृद्धि एवं संक्रमण को रोकने के लिये पौधे में विभिन्न प्रकार के संरचनात्मक अवरोध उपस्थित होते हैं अथवा इनका निर्माण हो जाता है। जबकि क्रियाशील रोगप्रतिरोध में रोगजनक के संक्रमण सूत्र उत्पन्न करने के समय रन्ध्र नहीं खुलते हैं।
2. **रसोचिकित्सा द्वारा रोग प्रतिरोध** - पौधों के अस्थाई शरीरक्रियात्मक रोग प्रतिरोध रसोचिकित्सा द्वारा विकसित किया जा सकता है। सर्वांगी कवकनाशी एवं प्रतिजैविक का पौधे पर पर्ण समूह छिड़काव करने अथवा जड़ों द्वारा देने पर यह जीव-द्रवय में कुछ समय के लिये बने रहते हैं और जब तक इनका विषैला प्रभाव रहता है, तब तक रोगजनक ऊताकें पर आक्रमण नहीं कर सकता है।
3. **परपोषी पोषण द्वारा रोग प्रतिरोध** - पौधों में मुख्य एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों का छिड़काव करके अथवा भूमि द्वारा देकर रोग प्रतिरोध विकसित किया जा सकता है। यद्यपि ऐसे उपायों का प्रभाव अभी तक संदिग्ध है, जबकि पोधों की प्रबल वृद्धि वाच्छनीय होती है। प्रबल पौधों में क्षतिग्रस्त जड़ों एवं प्ररोहों के स्थान पर नयी जड़ों एवं प्ररोह को बनाने की क्षमता होती है। अतः वह अनेक रोगों के आक्रमण को सहन करने योग्य होते हैं।

6. रोगी पौधे की चिकित्सा या उपचार

रोगी पौधों की चिकित्सा निम्न विधियों द्वारा की जाती है -

1. **रसोचिकित्सा -** रसोचिकित्सा में रोगी पौधों के ऊतकों में रासायनिक उपचारों द्वारा रोगजनक का उन्मूलन करके पौधों को ठीक करना सम्मिलित है। इस कार्य के लिये मुख्य रूप से सर्वांगी कवकनाशी एवं प्रतिजैविक का प्रयोग किया जाता है। इन रसायनों को पौधे की पत्तियों एवं जड़ों द्वारा अवशोषित कर लिया जाता है और यह कोशिका के जीव-द्रवय में पहुंचकर रोगजनक को नष्ट करके एक रासायनिक प्रतिरक्षा क्रिया विधि व्यवस्था के रूप में कार्य करते है, तथा पौधों में अस्थाई रोग प्रतिरोध उत्पन्न कर देते हैं। यह रोगजनक द्वारा उत्पन्न किये गये आविषों का निराविपिकरण करने का कार्य भी करते हैं और इस प्रकार पौधे के ऊतकों पर रोगजनक द्वारा आक्रमण नहीं हो पाता है।
2. **उष्मा चिकित्सा** - यह पौधे जो रोगजनक के तापीय निष्क्रियण मृत्यु बिन्दु को सहन कर सकते है, उनके रोगजनकों को नष्ट करने के लिए उन्हें उष्मा द्वारा उपचारित किया जाता है। इन उपचारों का प्रयोग मुख्य रूप से बीजों, कंदों, शल्ककंदों इत्यादि के लिये

किया जाता है। फल वृक्षों में अनेक विषाणुओं का निष्क्रियण करने के उन्मूलन करने के लिए उष्मा चिकित्सा का सुझाव दिया गया है। इस प्रकार गन्ने के पेड़ी कुंठन रोग, घासी प्ररोह लाल विगलन, मोजेक इत्यादि गन्ने के पेड़ों वृद्धिरोग एवं दूसरे विषाणु जनित रोगों का उन्मूलन भी पोरियों का उष्मा जल उपचार अथवा उष्मावात उपचार करके किया जाता है।

3. **वृक्ष शल्क चिकित्सा** - बड़े फल वृक्षों को रोगी शाखाओं को काट कर अथवा रोगी भागों को खुरच कर उनके घावों पर कवकनाशी पेस्ट का लेप करके संक्रमण को समाप्त किया जाता है। सेब के मुख्य रोगों जैसे काला तना, भृंग तना एवं गुलाबी गंग इत्यादि को वृक्षों की शल्य चिकित्सा करके प्रबन्ध किया जाता है।

10.10 सारांश

पादप रोग विज्ञान फसल संरक्षण की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण विषय हैं। इसमें हम पौधों से जुड़ी विभिन्न बीमारियों तथा उनके नियंत्रण के बारे में जान पाते हैं। पादप रोग से जुड़ा इतिहास भी लाभकारी हैं। पादप रोग प्रबंधन मुख्यतः छः सिद्धान्तों पर आधारित होता हैं। इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए किसी भी पौधे के रोग को नियंत्रित किया जा सकता हैं।

10.11 अभ्यास प्रश्न

1. पादप रोग विज्ञान के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।
2. पादप रोग विज्ञान क्या हैं? पादप रोग विज्ञान का कार्यक्षेत्र एवं मानव कल्याण में इसका महत्व एवं इसके उद्देश्य समझाइए।
3. पौधों मं अन्वेषण क ेलेखक कौन हैं?

   अ थियोफ्रेस्टस ब जी.सी. केन्ट

   स एच.एच. व्हेटजल द जे.सी. होर्सफाल
4. भारत में आधुनिक पादप रोग विज्ञान का जनक किसे माना जाता है?
5. पादप रोग प्रबंध के मुख्यतः कितने सिद्धान्त हाते हैं?

   अ 2 ब 4

   स 6 द 8

10.12 संदर्भ सामग्री

22. Reddy, T.Y. and Reddi, G.H.S., 200 Principles of Agronomy, kalyani Publishers, New Delhi.
23. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
24. Singh, Chhidda, 1999, modern Techniques of Raising Field Crops, Oxford & IBH publishing company private limited, new Delhi

25. Singh, S.S., 1993, Crop management under Iirrigated and Rainfed Conditions, Kalyani Publishers, New Delhi.
26. हलावत, आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलेंए रामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ.
27. सिंह, बी.पी., पादप रोग विज्ञान, रामा पब्लिषिंग हाउस, मेरठ.

इकाई 11

फसलों के मुख्य फंफूदी रोग एवं नियंत्रण

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 गेहू के मुख्य फफूंदी रोग

11.3 धान के मुख्य फफूंदी रोग

11.4 मक्का के मुख्य फफूंदी रोग

11.5 ज्वार के मुख्य फफूंदी रोग

11.6 बाजरा के के मुख्य फफूंदी रोग

11.7 सोयाबीन के मुख्य फफूंदी रोग

11.8 सरसो व तोरिया के के मुख्य फफूंदी रोग

11.9 मूंगफली के मुख्य फफूंदी रोग

11.10 अरहर के मुख्य फफूंदी रोग

11.11 मसूर के मुख्य फफूंदी रोग

11.12 चने के मुख्य फफूंदी रोग

11.13 मूंग व उड़द के मुख्य फफूंदी रोग

11.14 मटर के मुख्य फफूंदी रोग

11.15 साराश

11.16 बोध प्रश्न

11.17 संदर्भ

11.0 उद्देश्य

इस ईकाई के अध्ययन से हम जानेगें कि -

- फफूंद एवं फफूंद रोग क्या होते है?
- फफूंद रोगों का अध्ययन क्यो आवष्यक है।
- विभिन्न फफूंद जनित धान्य, तिलहन एवं दलहनी रोगों के लक्षण रोग कारक एवं नियंत्रण

11.1 प्रस्तावना

फसलों में होने वाले पौध रोगों का प्राथमिक ज्ञान अवष्य ही होना चाहिए जिससे किसान रोग नियंत्रण के लिए जागरूक हो सकें। अपेक्षित हानि का बचाव ही, रोग नियंत्रण उपाय का मापदंड होना चाहिए। यह भी ज्ञान लेना आवष्यक है कि रोग से क्षति, उपज में कमी के साथ साथ उपज के गुणों में भी कमी से होती है। इसलिए रोग नियंत्रण करना आवष्यक है क्योंकि

रोगो का प्रभाव फसल की पूरी शारीरिक क्रियाओं पर होता है जो दिखाई नहीं देती है परंतु उपाय आने पर समझ में आ जाता है। फसलों फफुंदी जन्य को पौध रोगों से अपेक्षित हानि को बचा लेने से ही 10-12 प्रतिषत उपज में वृद्धि की जा सकती है।

11.4 गेहू के मुख्य फफूंदी रोग

1. **गेरूआ या किट्ट रोग (Black Rus) :-**तने का किट्ट या काला गेरूआ (Stemor Black Rust)

रोगजनक या रोगकारक (Pathagon)-पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रिटिसाइ।

लक्षण:- गेरूआ रोग के लक्षण में प्रभावित भाग पर विषेष तरह का उभार बनता है जिसे फुन्सियों के अनुरूप भी कहा जा सकता है। इसे पौधे रोग वैज्ञानिक स्फोट कहते है। आरम्भ में ये स्फोट भूरे, लम्बें ओर पत्ती की झिल्ली के अंदर बहुत छोटे होतें है परंतु धीस्धीरे बडे होने के साथ-साथ गहरे भूरे रंग के और आपस में मिल जाते है, परिणामस्वरूप बढ़ने लगते है, और झिल्ली फट जाती है। इन स्फोटों की परिधि पर बाहय् त्वचा के अवषेष श्वेत धारियों के रूप में स्पष्ट दिखाई देते है। इस तरह के पौधे काले गेरूआ रोग से प्रभावित होने पर बिल्कुल जंग लगे से दिखाई देते हैं जिस पर कमजोर बालियाँ लगती है। रोगग्रसित फसल से दाने सिकुडे हुए एवं वजन में हल्के प्राप्त होते हैं जिनका बाजार मूल्य बहुत कम हो जाता है।

2. पीला या धारीदार गेरूआ रोग (Yellow or Stripe Rust)

रोगजनक या रोगकारक (Pathogen)- पक्सीनिया स्ट्राइफार्मिस

लक्षण(Symptoms):-पीला गेरूआ रोग का आक्रमण मुख्यतः पत्तियों पर होता है। उग्र अवस्था में रोग के लक्षण पर्णच्छद, तने और तुषों पर भी प्रदर्षित होते है। रोग की विषेष पहचान नीबू पीले रंग के छोटे-छोटे स्फोटों (Pustules) के पत्तियों पर बनने से की जा सकती है। ये स्फोट पत्तियों की नाड़ियों के बीच में धारियों या लम्बी कतारों में इस तरह से बनते है कि पत्तियों का हरा रंग लगभग गायब हुआ सा प्रतीत होता है। गेहूं के पकने का समय करीब आने के साथ साथ रोगजनक भी पत्तियों के निचली सतह पर हल्के काले रंग के स्फोट बनाता है जो अंडाकार आकार के कतारों में होते है।

3. नारंगी या भूरा गेरूआ या पत्ती गेरूआ रोगः-

रोगजनक या रोगकारक (Pathogen) -पक्सीनिया रिकान्डिटा

लक्षण (Symptoms):-भूरा गेरूआ रोग को पत्ती गेरूआ रोग भी कहते है क्योकि इसके लक्षण केवल पत्तियों पर ही बनते है परन्तु कभी कभी पर्णच्छदों और वृंतो पर दिखाई पड़ते है। आरम्भ में पत्तियों की उपरी सतह पर रोग चमकदार नारंगी रंग के उभार बनाता है, जिसे स्फोट भी कहते है। पीला गेरूआ रोग के अनुरूप न होकर ये स्फोट धारियों के बदले छोटे-छोटे समूहों में एकत्र हो अनियमित रूप से बिखरे हुए दिखाई पड़ते है। इनका आकार पीला गेरूआ रोग के स्फोटों से बड़ा होता है किन्तु काला गेरूआ रोग के स्फोटों से छोटा होता है।

गेहूँ के गेरूआ रोगों के नियंत्रण के उपाय (Contol measures)-

गेरूआ रोग विष्व भर में महामारी के रूप में प्रगट हो चुका है। इन तीनों गेरूआ रोगों का निदान फसल बुआई पूर्व एवं खड़ी फसल में कैसे किए जावें, नीचे सुझाया जा रहा हैः-

(क) बुवाई पूर्व नियंत्रण के उपायः-

1. **प्ररतिरोधी जाति का चुनाव करनाः-** तीनो गेरूआ के लिये उपलब्ध प्रतिरोधी जातियों के नाम नीचे दिये जा रहे हैः-

काला गेरूआः- सोनालिका, एच.यू.डब्ल्यू.-12, एच.डब्ल्यू.-657, एच.डी.2135, एच.डी.2204, मालविका, यू.पी.-215, यू.पी. 262,

पीला गेरूआः- छोटी लरमा, एन.पी.846, सोनालिका, शर्बती सनोरा, यू.पी. 215, यू.पी.301,

भूरा गेरूआः- यू.पी.215,एच.डी.-2122,सोनालिका, प्रताप, जनक, मालविका तीनों गेरूआ के लिये प्रतिरोधी जातियाँ-यू.पी.319,यू.पी.215,एच.डी.228,अर्जुन(HD-2009)

2. **मिश्रित फसलः-** पाँच गेहूँ की कतारों के बाद पाँच सरसों की कतारों में बुवाई करते है, जिससे रोग निदान एवं उनके उग्ररूप में प्रकोप न करने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।
3. **समय से पूर्व बुवाईः-** जल्दी पकने वाली किस्मों को उगाने तथा उनके बुवाई के समय में परिवर्तन से रोग की रोकथाम संभव है। बुवाई 15 दिन पूर्व करना उपयुक्त है।

(ख) खडी फसल में रोग नियंत्रण के उपायः-

(i) कृषि कार्यो में परिवर्तनः-

1. **उर्वरकों के संतुलन में परिवर्तनः-**खड़ी फसल में आधार मात्रा में उर्वरक देने के बाद दूसरी बार या तीसरी बार उर्वरक की मात्रा में परिवर्तन करना चाहिए। पोटाष खाद की मात्रा अधिक एवं नत्रजन खाद की मात्रा में कुछ कमी करना रोग प्रतिरोधकता फसल में उत्पन्न करती है।
2. **सिंचाई में परिवर्तनः-**जनवरी के बाद गेरूआ रोग का आक्रमण दिखाई देने पर सिंचाई कम कर देना चाहिए।

(ii) फफूंदनाष्क दवाओं का उपयोगः-

1. जिनेब या डाइथेन जेड-78(0.2 प्रतिषत) या जाइरम या कुमान एल (0.2 प्रतिषत), डाइथेन एम-45(0.2 प्रतिषत) या गंधक चूर्ण 300 मेष 18 से 20 किलो प्रति हेक्टर (भुरकाव के लिये) या घुलनषील गंधक (0.15 से 0.2 प्रतिषत) या प्लांटवेक्स 0.1 प्रतिषत (दैहिक फफूंदनाष्क दवा है)

   उपरोक्त किसी भी फफूंदनाष्क दवा का छिड़काव या भुरकाव 10-12 दिन के अंतराल से, रोग की उग्रता को ध्यान में रख, कम से कम दो बार करना चाहिए।

4. छिदरा कंडवा या अनावृत कंड रोग (Loose smut)-

रोगजनक या रोगकारक (Pathogen)- अस्टीलेगो न्यूडा ट्रिटिसाई रोग आंतरिक बीज जनित (Internally) है।

लक्षण (Symptoms)-छिदरा कंडवा रोग केवल दानों को प्रभावित करता है इसलिये रोग के लक्षण पौधों में बालियाँ निकलने पर ही दिखाई देते है। रोगजनक का विकास पौधों के आंतरिक भाग में इस विधि से होता है कि बाहय् भाग से संक्रमित या स्वस्थ पौधों में

कोई अंतर दिखाई नहीं देता है। केवल बालियाँ निकलने पर संक्रमित पौधों में दानों के स्थान पर काले चूर्ण से युक्त बालियाँ बनती है। सामान्य पौधों की अपेक्षा रोगग्रस्त बालियाँ कुछ ही समय पूर्व निकल आती है।

रोग नियंन्त्रण के उपाय (Control measures)-रोग आंतरिक बीज जनित है इसलिए रोग का खड़ी फसल में कोई निदान नहीं है तथा रोग निदान के उपाय बीज बुवाई पूर्व किये जाने चाहिये।

- **गर्म पानी द्वारा उपचारः**-बीज को 105 अंष फा.,110 अंष फा. तापमान के पानी में क्रमषः 8,6 और 4 घंटे रखने से रोग निदान पूरी तरह किया जा सकता है।
- **धूप द्वारा उपचार:-**इस विधि में सुबह 8 बजे से 12 बजे तक गेहू बीज को सादे पानी में भिगोना चाहिए इससे बीज अंकुरण क आंतरिक शुरूआत हो जावेगी साथ ही साथ रोगजनक कवकजाल का अंकुरण हो जावेगा ऐसे बीज को धूप में 4 घंटा सुखाने से अंकुरित कवकजाल पूरी तरह से नष्ट हो जाता है। इस तरह धूप द्वारा उपचार से छिदरा कंडवा रोग का शतप्रतिषत निदान किया जा सकता है।
- **फफूंदनाष्क दवा द्वारा उपचारः-दैहिक** फफूंदनाष्क दवा द्वारा बीज उपचार करने से रोग निदान 99 प्रतिषत हो जाता है। विटावेक्स, या प्लांटवैक्स या बाविस्टिन या एवं बेनलेट दवा (2.5 ग्राम दवा प्रति किलो बीज की दर से) शुष्क उपचार करने से छिदरा कंडवा रोग का निदान किया जा सकता है।
- **रोग प्रतिरोधी जातियों द्वारा:-**इन रोगरोधी जातियों के नाम है, एन.पी.710,718,798,799,809, उन्नत बोनी जातियाँ जैसे कल्याण 227,पी.वी.18, डब्ल्यू.जी. 307,सी.302 एवं नवीनतम उन्नत रोगरोधी जातियों के नाम है: डब्ल्यू.एल.1002,डब्ल्यू.एल.1010,डब्ल्यू.एल. 1562, डी.डब्ल्यू. एल. 5023 एवं मालवीय गेहूँ-55

5. करनाल बंट रोग (Karnal Bunt Disease)-

रोगजनक या रोगकारक (Pathogen)- निवोषिया इंडिका

लक्षण (Symptoms)-रोग के लक्षण बालियों में दाने बनने पर ही देखे जा सकते है। रोगग्रसित बालियों में कुछ दाने आंषिक या पूर्ण रूप से काले चूर्ण में परणित हो जाते है। यह चूर्ण फलभित्ति से ढका रहता है। बालियों पर बंट से संक्रमित दानों की स्थिति अनियमित होती है, इससे यह निष्चित किया जा सकता है कि रोगजनक का संक्रमण आंतरिक या दैहिक न होकर स्थानीय व वातोढ़ है। एक दाने का कुछ ही भाग संक्रमित होता है और शेष भाग स्वस्थ रहता है। इस रोग के बीजाणु में भी ट्राईमेथिलैमीन रसायन बनता है जिसकी दुर्गन्ध दूर से ही जानी जा सकती है।

रोग नियन्त्रण के उपाय (Control measures)-

(i) क्योंकि बीज के साथ संदूषित पदार्थ के रूप में बीजाणु मिटटी तक पहुचते है अतः बीजोपचार प्रभावषील नहीं होता है।

(ii) खड़ी फसल में किसी फफूंदनायक दवा का उपयोग से निदान नही किया जा सकता है।

(iii) उपलब्ध रोग रोधी जातियों को चुना जा सकता है, उनके नाम है:यू.पी. 310,एवं एच.डी. 1981।

(iv) डयूरम जाति के गेहूँ को रोग प्रतिरोधी पाया गया है, इस जाति को अधिक प्रभावित क्षेत्रों के लिए उपयोग किया जाना चाहिए।

6. ध्वज कंडवा रोग (Flag Smut)

रोगजनक या रोगकारक (Pathogen)-यूरोसिस्टस ट्रिटिसाइ रोग मृदा जनित एवं बीज जनित भी है। **लक्षण (Symptoms)-**इस रोग से स्तम्भ कल्म एवं पत्तियाँ ग्रसित होती है। रोग के लक्षण मुख्यतः पत्तियों व पर्णच्छद पर ही दिखाई देते है। प्रभावित पत्तियाँ ऐंठ जाती है और कलांतनत स्थिति (ध्वजरूप) होते हुए लटकने सी लगती है। और बाद में मुरझाकर सूख जाती है। पूरा पौधा धीरे-धीरे मर जाता है। प्ररोह बंध, रोग प्रकोप के कारण खाली रह जाते है। यदि दाने भरते भी है तब भी वे सिकुडें हुए व बेकार होते है।

रोग नियन्त्रण के उपाय (Control measures)-खड़ी फसल में रोग का काई निदांन संभव नही है अतः बीज बुवाई पूर्व बीजोपचार कॉपरकारर्बोनेट चूर्ण से किया जाना चाहिए। 2. ग्राम दवा एक किलो बीज उपचारित करने के लिये पर्याप्त होती है। दैहिक फफूंदनाष्य दवा जैसे-बेवस्टीन या विटावेक्स 2 ग्राम प्रतिकिलो बीज की दर से उपयोग की जा सकती है।

11.5 धान के मुख्य फफूंदी रोगः-

1. पर्णदाग या भूरा धब्बा रोग (Brown spot disease)-

रोगजनक या रोगकारक (Pathogen)- हेल्मिन्थोस्पोरियम ओराजी

लक्षण (Symptoms)-रोग के लक्षण अंकुरित बीज से प्राप्त प्रथम पत्ती या प्रांकुरचोल (coleoptile) के अतिरिक्त पत्तियों, पर्णच्छदों एवं तुर्षा पर प्रदषित होेते है। प्रांकुरचोल पर रोग के लक्षण भूरे रंग के छोटे-छोटे धब्बों के रूप में दिखाई देते है, जिनका आकार गोलाकार से अंडाकरा होता है। धब्बो का रंग गहरा भूरा व बैजनीभूरा हो जाता है। धब्बे परिधि में गहरे रंग के होते है। उग्र अवस्था में ये धब्बें आपस में मिल जाते है तथा पत्तियों भूरे रंग की होकर सूख जाती है। यदि रोग आक्रमण बालियाँ निकलने के पूर्व अधिक मात्रा में हुआ हो, तो बालियाँ निकल ही नहीं पाती है और बिना पूर्ण विकसित हुए नष्ट हो जाती है।

रोग नियन्त्रण के उपाय (Control measures)-

(क) भूरा धब्बा रोग के नियंत्रण के लिए सर्वोच्च प्राथमिकता हिनोसान दवा को दी जानी चाहिए क्योंकि इस दवा के द्वारा इस रोग के साथ-साथ झुलसन (Blast) रोग का नियंत्रण भी हो जाता है। दवा 0.1 प्रतिषत की दर से 12 से 15 दिन के अन्तराल में कम से कम दो बार अवष्य ही डाली जावें।

(ख) बुवाई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-

(i) रोग बीज जनित है, अतः स्वस्थ फसल से प्राप्त किये गए ही बीज उपयोग में लाना चाहिए।

(ii) पारायुक्त फफूंदनाष्क दवा जैसे मोनासान या सेरेसान या एग्रोसान जी.एन.आदि को 2.5 ग्राम दवा प्रति किलो बीज की दर से शुष्क उपचार विधि द्वारा उपचारित करने से बीज जनित स्त्रोत को नष्ट किया जा सकता है।

(iii) अपेक्षाकृत अधिक तापमान के समय ही बुवाई की जानी चाहिए क्योंकि कम तापमान में बीज अंकुरण व बढ़ना मंद गति से होती है जो रोग आक्रमण के लिए अनुकूल होती है।

बुवाई पूर्व ही रोग प्रतिरोधी जातियों का चुनाव किया जा सकता है। रोग प्रतिरोधी जातियाॅः-टी-498-2। सी.ओ.20,बी.ए.एम.10,टी-141,सी.एच.13 और सी.एच.45।

रोग सहनषील जातियाॅः-बाला, कृष्णा,कुसुमा, साबरमती, रूची एवं क्रांति।

2. झुलसन या सहसामारी रोग (Blast disease)

रोगजनक या रोगकारक (Pathogen)- पाइरीकुलेरिया ओराइजी

लक्षण (Symptoms)-रोग के लक्षण पत्तियों पर 1 से 4 मी.मी. व्यास की लम्बी-लम्बी नीली सी धारियों के रूप में शुरू होते है, जो शीघ्र ही भूरे रंग के धब्बों का आकार बना लेती है। ये धब्बे अंडाकार आकार के हो जाते है। जिनके रंग किनारों से भूरा तथा बीच का भाग सूखी घास के समान होता है। पुरानी पत्तियों पर धब्बें अपेक्षाकृत बडे बनते हैं जबकि नई पत्तियों में धब्बें छोटे बनते है। पत्तियों के अतिरिक्त ये अंडाकार धब्बें पर्णच्छद पर भी दिखाई देते है। रोग की उग्र अवस्था में धब्बें आपस में मिल जाते है और पत्तियाँ झूलसी हुई दिखाई देती है। रोग का प्रकोप बालियों के गर्दन पर भी होता है अर्थात बालियों के डन्ठल के सभी ओर भूरे रंग का संक्रमण दिखाई देता है। इस कारण वह भाग कमजोर पड़ जाता है और बालियाँ वहा से पकने से पूर्व ही टूट जाती है।

रोग नियन्त्रण के उपाय (Control measures)-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण:-''हिनोसान'' का पहला छिडकाव 0.1 प्रतिषत की दर से किया जाना चाहिए। दूसरा या तीसरा छिड़काव 12 से 15 दिनके अन्तराल में आवष्यकताकनुसार किया जावे। यह दवा उपलब्ध न होने पर ''किटाजिन'' 0.1 प्रतिषत या ''बेवस्टीन'' 0.1 प्रतिषत या ''डायथेन'' एम. 45 0.2 प्रतिषत या ताम्रयुक्त दवा जैसे- क्यूपरामार, ब्लिटाक्स-50,फाइटोलान,फंजीकापर को 0.3 प्रतिषत की दर से उपयोग किया जा सकता है।

(ख) बुवाई पूर्व रोग नियंत्रण के उपायः-

(1) रोग प्रतिरोधी किस्में:-जया, आर.पी.5-2,सी.ओ.25, सी.ओ.-26,

(2) दवा द्वारा बीज उपचारः-सेरेसन, मोनासान दवा से (2.5 ग्राम दवा प्रति किलो बीज की दर से)

3. आभासी कंड या झूठा कंडवा रोग (False smut)-

रोगजनक या रोगकारक (Pathogrn)- अस्टिलेजिनॉइडिया वाईरेन्स। लक्षण(symptoms)-बालियों में दानों पर रोग के लक्षण बनते है। प्रभावित दानों के अंदर

रोगजनक फफूंद अंडाषय को एक बडे कूटरूप (pseidomorph) में बदल देता है जिससे दाने स्वस्थ दानों से दुगने से भी अधिक परिधी के मखमली चमकदार नारंगी रंग के पिण्ड,दानों के बीचों बीच बनते है। ये आरम्भ में नांरगी रंग के होते है जो बाद में जैतूनी हरें रंग में बदल जाते है। एक बाली में प्रभावित दानों की संख्या 2 से 150 तक हो सकती है।

रोग नियन्त्रण के उपाय (Control measures)-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपायः-खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के लिए कोई भी उपाय नही सुझाए जाते है।

(ख) बुवाई पूर्व नियंत्रण के उपाय:-बुवाई पूर्व नियंत्रण के उपाय के लिए फीलीपाइन देष में 0.1 प्रतिषत मरकुरिक क्लोराड घोल में धान को डुबोना तथा फिर से 6 घंटे सादे पानी में रखना सुझाया है।

4. पर्णच्छद अंगमारी या शीथ ब्लाइट रोग (Sheath blight disease)

रोगजनक या रोगकारक (Pathogen)- कॉर्टिषियम ससाकी

लक्षण (symptoms)-रोग के लक्षण धान के खेत में भरे पानी की सतह से उपर दिखाई पडते है। पर्णच्छद एवं पत्तियों पर लक्षण बनते है, जोपर्णच्छद पर 2-3 से.मी. लम्बे 0.5 से.मी. चैडे भूरे से बदरंगें भाग के रूप में शुरू होते है। हरे पर्णच्छद पर स्पष्ट दिखाई देते है एवं कुछ समय पश्चात पुआल के रंग के हो जाते है। इन बदरंगे स्थलों की विषेष पहचान यह है कि इनके चारों और बैंगनी भूरे रंग के धब्बों का घेरा होता है।

रोग नियन्त्रण के उपाय (Control measures)-

(क) एक छिड़काव पॉलीऑक्सिन 0.05 प्रतिषत

(ख) बुवाई रोग नियंत्रण के उपायः-

1. जिन स्थानों पर रोग प्रकोप अधिक होता हो, वहाँ धान की फसल काटने के बाद, अवषेषों को जला देना चाहिए जिससे उनमें उपस्थित स्क्लेरोषिया नष्ट हो जावेंगें 2. प्रभावित फसल से बीज एकत्र न किए जावें 3. समस्या ग्रस्त क्षेत्र में रोग प्रतिरोधी जाति पंकज लगाई जानी चाहिए।

11.6 मक्का के मुख्य फफूंदी रोग (Important Fungal Diseases of Maize)-

I. पत्ती अंगमारी या ब्लाइट रोग (Leaf Blight disease)

लक्षण (Symptoms)-रोग जनक हेल्मेन्थास्पोरियम टर्सिकम के लक्षण बुवाई के 4-5 सप्ताह बाद दिखाई देते है। सबसे नीचे की पत्तियों पर सबसे पहले संक्रमण होता है और रोग के लक्षण उत्पन्न होते है। पत्तियों पर लम्बे, दीर्घतवृताकार अथवा नाव के आकार के धब्बे बनते है जो धूसर हरे रंग से लेकर भूरें रंग के होते है। ये धब्बे 15 से.मी. तक लम्बे ओर 3 से 4 से.मी. तक चैडे हो सकते है। रोग नीचे की पत्तियों से बढ़कर उपर की पत्तियों पर फैलता है। नीचे की पत्तियाॅ रोग द्वारा पूरी तरह सूखा दी जाती है।

रोगजनक या रोगकारक (Pathogen)- हेल्मेन्थोस्पोरियम टर्सिकम, हेल्मेंथोस्पोरियम मेडिस ।

रोग नियन्त्रण के उपाय (Control measures)-

(क) खड़ी फसल में नियंत्रण के उपायः-

1. जीनेब या डाइथेन जेड 78 या डाइथेन एम 45 (0.2 प्रतिषत की दर से) या ताम्रयुक्त फफूंद नाषक दवा जैसे ब्लिटाक्स-50, फाइटोलान, क्यूपरामार या ब्लू कापर आदि 0.3 प्रतिषत की दर से या केप्टान दवा 0.2 प्रतिषत की दर से

(ख) बुवाई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-

1. पौध अवषेषों को एकत्र कर जला देने से रोग की उग्रता कम की जा सकती है।
2. रोग नियंत्रण का सबसे उत्तम उपाय रोग प्रतिरोधी जातिओं का चुनाव करना है। इस रोग प्रति सहिष्णु कई जातियाँ उपलब्ध है उन्हें चुना जा सकता है। संकर मक्का, गंगा-2, संकरमक्का-4, संकरमक्का-5,
3. प्रमाणित बीज किसी भी विष्वसनीय स्त्रोंतो से प्राप्त करना चाहिए।

2. भूरा पत्ती दाग या फाइजोडर्मा लीफ स्पाट रोग (Physoderma leaf spot disease)-

लक्षण (symptoms)-रोग के लक्षण पत्ती, पत्तीपर्ण, डंठल एवं भूटटे के बाहरी आवरण पर बनते है। पत्ती एवं अन्य भागों पर धब्बे बनते है, जिन्हें अधिक मात्रा में पत्तियों के नीचले भाग पर देखा जा सकता है। सर्वप्रथम रोग के प्रभाव से पत्तियाँ पीली सी हो जाती है जो कुछ ही समय में भूरे से रंग में बदल जाती है। इन धब्बों के चारों ओर पीला सा घेरा बनता है। रोग के प्रभाव से पत्तियाँ बिना पूर्ण विकसित हुए ही सूख जाती है।

रोगजनक या रोगकारक (Pathogen)-फाइजोडर्मा जी मेडिस ।

रोग नियन्त्रण के उपाय (Control measures)-

(क) **खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपायः-**रोग की आरम्भिक अवस्था में मक्का की फसल को रोग प्रकोप से बचाने के लिए ताम्रयुक्त फफूंदनाष्क दवा जैसे-फाइटोलान,ब्लिटाक्स-50,ब्लूकापर आदि का 0.3 प्रतिषत की दर से छिड़काव किया जाना चाहिए अथवा बोर्डो मिश्रण दवा 4:4:50 का भी छिड़काव किया जा सकता है। आवष्यकतानुसार दो छिड़काव 15 दिन के अन्तराल से करें। अन्य दवायें जैसे जीनेब, डाइथेन-45 एवं केप्टान सभी 0.2 प्रतिषत की दर से छिड़काव की जा सकती है।

(ख) **बुवाई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-**रोग नियंत्रण का सर्वोत्तम उपाय रोगरोधी या सहिष्णु जातियाँ लगाना है।

11.7 ज्वार के मुख्य फफूंदी रोग (Important Fungal Disease of juar)-

1. आवृत कंडवा या ग्रेन स्मट रोग (Grain or Covered smut disease)

लक्षण (Symptoms)- पौधे में भुट्टें आने पर कई दाने अन्य दानों की अपेक्षा दुगने से भी अधिक बड़े दिखाई पड़ते हैं । इन बड़े दानों को जब तोड़कर देखें तो इनमें दोनों के स्थान पर बीजाणुओं का समूह काले पाऊडर के समान दिखाई देता है । एक भुट्टे में 50 से 80 प्रतिशत तक दाने इस रोग से प्रभावित होते हैं ।

रोगजनक (Casual organism) - स्फैसिलोथीका सोर्घाई

2. अनावृत या छिद्ररा कंडवा रोग Loose smut disease

लक्षण (Symptoms)- पौधों का विकास अवरूद्ध हो जाता है तथा वे अपेक्षाकृत छोटे रह जाते है । इन पौधों में भुट्टे अपेक्षाकृत 5-7 दिन पहले निकल आते हैं । भुट्टों पर कई दाने काले-काले पाऊडर द्वारा भरे दिखाई देते हैं ।

रोगजनक एवं रोगचक्र (Control measures) - स्फैसिलोथीका क्रुएन्टा से ।

3. चोटी कंडवा या हेड स्मट रोग (Head smut disease)

लक्षण (Symptoms)- फसल में भुट्टे निकलने के पूर्व इस रोग के लक्षण दिखाई नहीं देते हैं । भुट्टे आने पर उनकी पुष्पमंजरी कुरूप होकर बीजाणु पुंजों में परिवर्तित हो जाती है । रोगग्रसित भुट्टों में दानों के स्थान पर 10-12 से.मी. और 4-5 से.मी. चैडे पत्ती सरीखी रचनायें बन जाती है ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures) - पारा युक्त फफूंद नाशक दवा जैसे सेरासोन, मोनोसान, एग्रोसान जी.एन.आदि से 2.5 ग्राम प्रतिकिलो बीज की दर से बीज उपचार करना चाहिए।

रोगजनक (Casual organism) - स्फैसिलोथीका राइलियाना ।

4. मृदुरोमिल या डाऊनी मिल्डऊ रोग (Downy mildew disease)

लक्षण (Symptoms)- प्रभावित पत्तियों के ऊपरी भाग पर हल्के हरे या पीले रंग के चक्ते बन जाते हैं । ये चक्ते पत्तियों के साथ बढते हुये सभी पत्तियों पर फैल जाते है । इन चक्तों के ठीक नीचे का भाग सफेद जाले सरीखी संरचना से घिरा रहता है । यह रोगकारक फफूंद के कवकजाल, बीजाणु दंड या बीजाणुओं का समूह है।

रोगजनक एवं रोगचक्र (Casual organism) - स्केलेरस्पोरा सोर्घाई ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) **खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:-** ताम्रयुक्त फफूंदनाशक दवा का छिड़काव 15 दिन के अन्तराल से कम से कम दो बार करना चाहिए । क्यूपरामार, फाइटोलान, फंजीमार, ब्लूकापर एवं ब्लिटाक्स-50 आदि नामों से उपलब्ध है, 30 ग्राम दवा 10 लीटर पानी में मिलाकर प्रति हैक्टर कम से कम 450 लीटर दवा के घोल का छिडकाव करना चाहिए ।

(ख) **बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-**

(i) फसल कटाई के बाद पौध अवशेषों एवं गिरी हुई पत्तियों को एकत्र कर जला देना चाहिए जिससे रोगजनग के प्राथमिक संक्रमण का प्रमुख स्त्रोत नष्ट हो जावेगा ।

(ii) इस रोग से समस्याग्रस्त खेतों में मक्का, बाजरा एवं ज्वार 2-3 वर्ष तक न लगायें एवं फसल चक्र अपनायें ।

(iii) नीची जमीन में पानी इक्कठा होने के कारण रोग प्रकोप अधिक होता है इसलिए ऐसी जमीन पर ज्वार न लगावें ।

(iv) स्थानीय रोग प्रतिरोधी अथवा सहनशील जाति का चुनाव करें ।

5. श्यामवर्ण या एन्थ्रेकनोज रोग (Anthracnose disease)

लक्षण (Symptoms)- पत्तियों पर लाल रंग के बदरंगे चक्तते बनते है जो शीघ्र ही बढ़कर पूरी पत्ती पर फैल जाते है जिससे छोटे पौधे पूर्ण बढ़वार के पहले ही नष्ट हो जाते है पत्तियाँ धब्बे के स्थान से बहुधा फट जाती है । तनों पर भी रोग के लक्षण लाल दाग के रूप में बनते है पर इनकी संख्या कम होती है । लाल दाग पर काले बिन्दू समान रचनायें देखी जा सकती है । इन रचनाओं से ही रोगजनक की पहचान की जा सकती है । जिसे एसरवुलस कहते है ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- रोगजनक बीज जनित है एवं पौध अवस्था में फसल को अत्याधिक क्षति पहुंचाते हैं इसलिए खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के लिए कोई उपाय नहीं सुझाये गए है

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-यह रोग बीज जनित है इसलिए बुवाई पूर्व पारा युक्त दवा से बीज उपचार करना चाहिए ।

6. गेरूआ रोग (Rust disease)

लक्षण (Symptoms)-रोग के लक्षण अक्सर फसल के 2 माह का हो जाने के पश्चात ही दिखाई देते है । रोग की विशेष पहचान फूँसियों या स्फोटों के बनने से की जा सकती है । गेरूआ रोग की फुंसियाँ या स्फोट पत्तियो के दोनों तरफ बनते है इनका रंग लाल से भूरे रंग का होता है । फसल के परिपक्व होने के साथ-साथ लाल भूरे से स्फोट गहरे कत्थें से काले रंग बदल जाते है ।

रोगजनक एवं रोगचक्र (Casual organism) - पक्सीनिया पुर्पुरिया

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures) :-

(क) **खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:-** फसल यदि चारे के लिए ली जा रही हो तो कोई दवा नहीं डालें । दानों की फसल के लिए फसल को दो माह का हो जाने पर एक छिड़काव घुलनशील गंधंक 0.15 प्रतिशत की दर से या 300 मेश वाला गंधंक चूर्ण का भूरकाव 15 कि.ग्रा. प्रति हेक्टार की दर से किया जाना चाहिए दूसरा छिड़काव या भूरकाव 20 दिन बाद दोहराया जा सकता है ।

(ख) **बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-** खेत से पौध अवशषों को एकत्र कर जला देवें । उपलब्ध रोग प्रतिरोधी जातियों का चुनाव किया जाना चाहिए ।

11.6 बाजरा के के मुख्य फफूंदी रोग (Importance Fungal Disease of Bajra)

1. मृदुरोमिल या हरित बाली रोग (Downy Fungal Disease of Bajra)

लक्षण Symptoms- रोग के लक्षण दो अवस्थाओं में अलग अलग देखे जा सकते हैं ।

(i) मृदुरोमिल या डाऊनी मिल्डऊ अवस्था

(ii) हरित बाली अवस्था ।

(i) मृदुरोमिल अवस्था (Downy mildew stage)- भारतवर्ष में रोगजनक का प्रभेद हरित बाली अवस्था के लक्षण उत्पन्न करता है परन्तु मृदुरोमिल लक्षण की संक्रमता कम प्रदर्शित करता है । पत्तियों के ऊपरी सतह पर लंबाई के कुछ हल्के हरे रंग की धारियाँ सरीखी निर्मित हो जाती है इन धारियों के ठीक नीचे फफुंद का जाला सरीखा लगा हुआ होता है । कुछ समय पश्चात् ये हल्की हरी धारियाँ भूरे रंग में परिवर्तित हरे जाती है और पत्तियाँ किनारे से फट जाती है । पत्तियों पर पीली घारियाँ बनती है जो निचले भाग से शुरू होकर या तो पत्तियों के बीच में समाप्त हो जाती है या सिर तक पहुंच जाती है ।

(ii) हरित बाली अवस्था (Green ear stage)- रोग के अभाव के कारण प्रभावित पौधें अपेक्षाकृत बौने रह जाते है । बालियाँ निकलने पर उनमें दानों के स्थान पर हरे रंग की छोटी-छोटी पत्तियाँ बन जाती है । जिससे बालियाँ हरी दिखाई पड़ती हैं । इसलिए रोग का नाम हरितबाली रोग दिया गया है ।

रोगजनक (Casual organism) - स्क्लेरोस्पोरा ग्रैरमिनीकोला ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) **खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:-** मृदुरोमिल अवस्था के नियंत्रण के लिए ताम्रयुक्त दवा जैसे ब्लिटाक्स -50 ब्लूकापर, फाइटोलान, क्यूपरामार आदि का 0.3 प्रतिशत की दर से छिड़काव किया जाना चाहिए अथवा पहला छिड़काव रोग के प्रारंभिक अवस्था में किया जाना चाहिए । आवश्यकतानुसार दूसरा व तीसरा छिड़काव 12-15 दिन के अन्तराल में किया जाना चाहिए ।

(ख) **बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-** (प)स्वस्थ फसल से ही बीज एकत्र करें । (पप) रोग प्रतिरोधी जाति अथवा सहनशील जातियों का चुनाव किया जाना चाहिए । (पपप) फसलचक्र अपनाने से रोग की उग्रता को कम किया जा सकता है । (पअ) 2.5 ग्राम पारायुक्त फफूंद नाशकदवा 1 किलो बीज की दर से बीज उपचार किया जाना चाहिए। (अ) फसल कटाई बाद ही खेती की सफाई कर पौधे अवशेषों को नष्ट करना चाहिए ।

2. अर्गट रोग (Ergot disease)

लक्षण (Symptoms):- फूल आने के समय से लेकर फसल के पकने तक इस रोग का संक्रमण होता है। रोग के आक्रमण के फलस्वरूप मधुबिन्दु को प्रदर्शित करते हैं ।

पुष्पक्रम के एक मीठे निलम्बन में कोनिडिया समूह स्रवित होते है धीरे-धीरे यह स्राव सूक्ष्म बिन्दुओं के साथ एकत्र होता चला जाता है या पुष्पांगों की सतह पर चिपका रहता है मधु के कारण कीड़ों का विशेष आकर्षक होता है । शीघ्र ही ये रचना कड़ा रूप ले लेती है । जिसे अर्गट कहतें है ।

रोगजनक (Casual organism) - क्लैक्सिेप्स माइकोसिफेला ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के लिए कोई उपाय न अपनायें जावें ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-

(i) स्वस्थ फसल से बीज लिया जाना चाहिए ।

(ii) अर्गट मिश्रित बीज से अर्गट को अलग करने के लिए 20 प्रतिशत नमक के घोल में बीज डुबोने से अर्गट घोल की सतह पर तैरने लगते है जिन्हें एकत्र कर नष्ट किया जा सकता है । उपचारित बीज को अच्छे से साफ पानी से घो लेने के पश्चात् ही बोना चाहिए ।

(iii) समय पूर्व बुवाई करने से रोग प्रकोप में कमी होती है । अतः इसे अपनाया जा सकता है ।

11.7 सोयाबीन के मुख्य फफूंदी रोग (Importance Fungal Diseases of Soybean)

1. बीज सड़न व पौद अंगमारी रोग (Seed rot & seedling blight)

लक्षण (Symptoms):- रोग से बीज, अंकुरण के पूर्व ही मिट्टी में सड़ जाते है । प्रभावित बीज खोजकर निकालने पर थोड़े से अंकुरित प्रतीत होते है अथवा कुछ बीज जड़ व प्रथम पत्रक निकले हुए परन्तु सड़े हुए दिखाई देते है । कभीकभी बीज अंकुरित होकर बाहर आ जाता है । और 4-6 दिन के बाद ये पौधे, पौद अंगमारी रोग से मर जाते है । इन पौधों का आधार भाग भूरा हो कर विगलन से ग्रस्त होता है ।

रोगजनक एवं रोगचक्र (Casual organism) -रोग निम्नलिखित कई फफूंदों द्वारा उत्पन्न होता है । ऐस्पर्जिलस नाइजर, कोलिटोट्राइकम टं[a]केटम, स्क्लेरोशियम रोफल्फसाई फयूजेरियम स्पीजीस ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):- बुवाई पूर्व ही रोग निदान के उपाय अपनाये जा सकते है । रोगजनक बीज जनित है अतः बीज उपचार फफूंदनाशक दवा से किया जाना चाहिए । 3 ग्राम केपटान या बेवस्टीन या थीरम या डाइफोलेटन दवा प्रति किलों बीज के अनुपात से शुष्क विधि से बीज उपचार करना चाहिए ।

2. यरोथीशियम पत्ती धब्बा रोग (Myrothecium Leaf Spot)

लक्षण (Symptoms):- रोग के लक्षण फसल पर बुआई से एक माह में ही दिखाई देने लगते हैं । रोग की शुरूआत गोलाकार छोटे-छोटे भूरें रंग के धब्बों से होती हैं । इन धब्बों

के किरले बैंगनी रंग के होते हैं । इन धब्बों के चारों ओर गहरे हरे रंग की विशेष रचना, जिसे स्पोरोडोकिया कहते है बनती है ।

रोगजनक एवं रोगचक्र (Casual Organism) - मायरोथीशियम रोरिडम

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) **खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:-** रोग के प्रभाव से सोयाबीन के बीज सिकुड़ जाते हैं इसलिए रोग प्रकोप बढ़ने से पूर्व कम से कम ताम्रयुक्त फफूंदनाशक दवा जैसे फाइटोलान, क्यूपरामार ब्लिटाक्स 50 आदि का छिड़काव 0.3 प्रतिशत की दर से किया जाना चाहिए । आवश्यकतानुसार दूसरा छिडकाव किया जावें । जिनेब या डाइथेन एम.45 दवा (0.2प्रतिशत) भी उपयोग की जा सकती है ।

(ख) **बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-** (i) रोग ग्रसित गिरी हुई पत्तियों को एकत्र करके जला देना चाहिए जिससे रोग प्रकोप में बहुत कमी होती है क्योंकि रोगजनक का प्राथमिक स्रोत नष्ट हो जाता है । (ii) रोग प्रतिरोधी जातियां का चुनाव करें ।

11.9 सरसो व तोरिया के के मुख्य फफूंदी रोग (Importance Fungal Diseases of Mustard)

1. सरसो तोरिया एवं क्रुसीफेरी कुल के पौधों का श्वेत गेरूआ या सफेद फफोला रोग (White Rust disease)

लक्षण (Symptoms):- रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों पर हल्के हरे से चक्ततों दूध के सामान सफेद स्फोटो या फूँसियों में बदल जाते हैं । इन प्रभावित पौधों की बाह्य त्वचा फट जाती है और रोगजनक हवा में बिखरने शुरू हो जाते हैं । ये स्फोट पत्तियों के दोनों तरफ बनते हैं । उग्र अवस्था में स्फोट आपस में मिलकर पूरी पत्तियाँ झड़ने लगती हैं ।

रोगजनक (Casual organism) -एल्बूगों कैन्डिडा ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- फसल की बुवाई के 40 दिन बाद ही एक बार ताम्रयुक्त फफूंद नाश्क दवा जैसे - ब्लिटाक्स-50 फाइटोलान, क्यूपरामार आदि का एक छिड़काव 0.3 प्रतिशत की दर से किया जाना चाहिए । प्रति एकड़ कम से कम 180 लीटर घोल का छिड़काव अवश्य ही किया जाना चाहिए । बोर्डो मिश्रण दवा 4:4:50 का भी छिड़काव रोग के संभावित हानि से बचने के लिए उपयुक्त होता है ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-

(i) पौधें अवशेषों एवं गिरी हुई पत्तियों को एकत्र कर जला देना चाहिए रोगजनक के प्राथमिक संक्रमण का स्रोत नष्ट हो जावेगा ।

(ii) 2 से 3 वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए जिससे 3 वर्ष तक क्रुसीफेरी कुल की किसी भी फसल को न लगाये ।

(iii) कई जंगली परपोषी जो इस कुल के होते है को नष्ट कर देना चाहिए ।

2. सरसों, तोरिया एवं क्रुसीफेरी कुल के पौधों का पत्ती धब्बा रोग (Leaf spot disease)

लक्षण (Symptoms):- रोग के लक्षण फसल कर 20 से 25 दिन का हो जाने पर ही दिखाई देने लगते हैं । आरम्भ में पत्तियों पर भूरे रंग के छोटे-छोटे धब्बे बनते हैं जो कुछ ही समय में गोलाकार हो जाते है । मौसम की अनुकूलता पाकर ये धब्बे अधिक मात्रा में बनते हैं और आपस में मिल जाते हैं, पत्तियाँ बुरी तरह से झुलसी हुई दिखाई देती हैं । उग्र रूप धारण करने पर पत्तियाँ गिर जाती हैं जिस कारण फूल कम मात्रा में बनते है ।

रोगजनक (Casual organism) - आल्टरनेरिया ब्रैरसिसीकोला एवं आल्टरनेरिया रैफेनाई ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- इस रोग से फसल को बचाने के लिए फसल में एक छिड़काव ताम्रयुक्त दवा जो बाजार मंे ब्लिटाक्स- 50 ब्लूकापर आदि नामों से उपलब्ध है को 0.3 प्रतिशत की दर से 15 दिन के अन्तराल में कम से कम दो बार छिड़काव करना चाहिए ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:- (i) चुंकि रोग बीजजनित या बीजोड़ है इसलिए बुवाई पूर्व बीज उपचार पारयुक्त फफूंदनाशक दवा से (2.5 ग्राम दवा प्रति किलों बीज) शुष्क उपचार करें ।

(ii) पौध अवशेषों को एकत्र कर जला देवें ।

11.9 मूंगफली के मुख्य फफूंदी रोग (Important Fungal Diseases of Groundnut)

1. टिक्का रोग या पर्णदाग रोग (Leaf spot disease)

लक्षण (Symptoms):- रोग दो प्रकार के लक्षण प्रदर्शित करता है क्योकि रोग के दो अलग-अलग रोगजनक हैं । एक सर्कोस्पोरा अरेचडी कोला फफूंद है जो पहले प्रकोप करता है, क्योंकि दूसरा सर्कोस्पोरा परसोनेटा है जो लगभग 45 दिन बाद संक्रमण करता है ।

सर्कोस्पोरा अरेचड़ीकोला द्वारा प्रदर्शित लक्षण -(Early leaf spot symptoms)- मूंगफली कर टिक्का रोग सर्व प्रथम इसी रोगजनक द्वारा फसल पर लक्षण उत्पन्न करता है । जिसका आरम्भ पत्तियों पर हल्के हरे भाग के बनने से होता है । ये भाग कुछ ही दिनों में लाल से भूरे रंग में परिवर्तित हो जाते है । इन सभी धब्बों के चारो ओर चकमदार पीला घेरा होता है । धब्बों का रंग पत्तियों के सतह पर लाल भूरा एवं गहरा भूरा सा होता है परन्तु नीचे की सतह पर हल्का भूरा तथा पीला घेरा अस्पष्ट होता है ।

सर्कोस्पोरा परसोनेटा द्वारा प्रदर्शित लक्षण - (Late leaf spot symptoms)

इस रोगजनक का प्रकोप अपेक्षाकुठ देरी से अर्थात् फसल के दो माह का हो जाने पर ही दिखाई देता है । रोग के लक्षण नियमित आकार के छोटे-छोटे धब्बों से आरम्भ होते है जिनका रंग गहरा भूरा से काला होता है । इन धब्बों का व्यास 1 से 6 मि.मी. होता है एवं ये धब्बे पत्तियों के सतह पर उभार उत्पन्न करते है । ये धब्बें तीव्रता से बढ़ते हैं । इनके चारो ओर पीला घेरा नहीं होता है । धब्बों के अत्यधिक बन जाने पर पत्तियाँ झड़ जाती हैं तथा प्रभावित फसल बिना पत्तियों के दिखाई देती है । रोग का संक्रमण पत्तियों के अलावा तने व शाखाओं पर भी धब्बों के बनने से देखा जा सकता है ।

रोगजनक (Causal organism)- रोग दो प्रकार के रोगजनक फफूंदों द्वारा उत्पन्न होता है ।

1. सर्कोस्पोरा एरेचड़ीकोला 2. सर्कोस्पोरा परसोनेटा

खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures)

(क) बोर्डो मिश्रण 0.8 प्रतिशत (4:4:50) (ख) कापर आक्सी क्लोराइड जैसे ब्लिटाक्स-50, ब्लू कापर, फाइटोलान आदि 0.3 प्रतिशत (ग) डाइथेन एम- 45 0.2 प्रतिशत (घ) घुलनशील गंधक व कापर आक्सी क्लोराइड (1:1) 0.2 प्रतिशत (ड.) बेवस्टीन 0.1 प्रतिशत (च) फाइकाल - 80.05 प्रतिशत दवा का फसल का 40 दिन का हो जाने पर पहला छिड़काव किया जाना चाहिए । आवश्यकतानुसार दूसरा और तीसरा छिड़काव 12 से 15 दिन के अंतराल से किया जाना चाहिए ।

बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-

(i) पौधे अवशोषों को एकत्र कर जला देना चाहिए ।

(ii) बुवाई पूर्व बीज उपचार के लिए मूंगफली के दोनो को 0.5 प्रतिशत नीला थोथा घोल में करीब आधे घंटे तक डुबोने से बीज उपचार किया जा सकता है जो बीच जनित रोगजनक को नष्ट कर देता है ।

(iii) बुवाई समय में परिवर्तन:- यदि मूंगफली की बुवाई 15 दिन पूर्व करना संभव हो तो रोग प्रकोप से कोई नुकसान नहीं होता है क्योंकि रोग उग्र रूप धारण करने से पूर्व, फसल पक कर तैयार हो जाती है ।

(iv) जल्दी पकने वाली किस्मों का चुनाव:- रोग प्रकोप जल्दी पकने वाली किस्मों को पूरी तरह प्रभावित नहीं कर पाता क्योंकि उग्ररूप प्राप्त करने के पूर्व ही अवधि पूरी हो जाती है ओर उसे खोद लिया जाता है ।

2. पद सड़न या कालर राट रोग (Collatr rot disease)

लक्षण (Symptoms)- रोग के लक्षण पौधों के उस भाग पर बनते हैं. जो मिट्टी की सतह का तने का भाग (कालर भाग) सूखी सडन पौधें के तने को संक्रमित कर धीरे -धीरे बढ़ती है । सूखी सड़न बढ़कर पौधों के आधार को कमजोर कर देती है जिससे पौधें गिर जाते है एवं सूखकर मुरझा जाते है । इन प्रभावित पौधों के सूखी सड़न वाले स्थान पर रोगजनक फफूंद की उभरी हुई काली काली रचनाएं स्पष्ट दिखाई देती है ।

रोगजनक (Causal organism) -एस्परजीलस नाइजर ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- रोग नियंत्रण के लिए खड़ी फसल में कोई उपाय नहीं किए जावे क्योकि रोगजनक बीजजनित है तथा प्राथमिक संक्रमण बीज द्वारा ही होता है ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-

रोगजनक के बीजाणु बीज के बाह्य सतह पर चिपके रहते है इसलिए उन्हें नष्ट करने के लिए निम्नलिखित किसी भी दवा से शुष्क विधि द्वारा बीज उपचार करना चाहिए ।

(i) पारायुक्त फफूंद नाशक दवा जो बाजार में मोनोसान, सेरेसनड्राई, एग्रोसान जी. एन. आदि नामों से उपलब्ध है, को 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से ।

(ii) कार्बेनिक गंधकयुक्त फफूंद नाशक दवा जैसे थीरम या डाइथेन एम. 45 को 2.5 ग्राम दवा प्रति किलो बीज की दर से ।

3. गेरूआ या रस्ट रोग (Rust disease)

लक्षण (Symptoms)- रोग के लक्षण फसल बुवाई के 30 - 35 दिन पश्चात दिखाई देने लगते हैं । रोग के लक्षण सबसे पहले पत्तियों की निचली सतह पर उत्तकक्षयी स्फोट के रूप में प्रदर्शित होते है । कुछ ही दिनों में पत्तियों के ऊपरी सतह पर भी फैल जाते है पत्तियों के प्रभावित भाग की बाह्य त्वचा फट जाती है । रोग आक्रमण के कारण फल्लियाँ समय से पहले पक जाती है एवं बीज चिपटे और विकृठ हो जाते है।

रोगजनक (Causal organism) - पक्सीनिया ऐराकिडिस ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- मूंगफली पर गेरूआ के साथ साथ टिक्का रोग का भी प्रकोप होता है अतः दोनों के नियंत्रण के लिए एक ही फफूंदनाशक दवा का उपयोग किया जाना चाहिए । नीचे दी जा रही कोई भी एक दवा को 3 बार 12-15 दिन के अन्तराल से छिड़काव किया जाना चाहिए । पहला छिड़काव बुवाई के 30- 35 दिन बाद अथवा रोग के प्रारंभिक लक्षण दिखाई देने पर करें ।

(i) घुलनशील गंधक 0.15 प्रतिशत का छिड़काव या गंधक चूर्ण 300 मेश का 15 किलो प्रतिहेक्टर की दर से भूरकाव । (ii) डाइथेन एम-45 का 0.2 प्रतिशत की दर से छिड़काव । (iii) कारबेंडाजिम या बेवस्टिन 0.1 प्रतिशत का छिड़काव ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:- (i) रोग बीज जनित होने का अनुमान वैज्ञानिक द्वारा लगाया गया है इसलिए समस्याग्रस्त क्षेत्रों में बीज की 0.1 प्रतिशत की दर से बीटावेक्स या प्लांटवेक्स दवा से उपचारित करके बोना चाहिए ।

(ii) पौध अवशेषों एकत्र कर जला देना चाहिए।

(iii) रोगमुक्त फसल से फल्लि बोवाई हेतु प्रयोग करें।

11.10 अरहर के मुख्य फफूंदी रोग (Important Fungal Disease of Arthar or Tur)

1. उक्ठा या मुरझान या विल्ट रोग (Wilt diseases)

लक्षण (Symptoms):- इस रोग का संक्रमण रोग की पहचान पौधों की पत्तियों के पीला पड़ने से की जा सकती है । खेत में पर्याप्त नमी के रहते हुए पौधों की पत्तियाँ पीली होने लगती है । धीरे-धीरे सभी पत्तियाँ मुरझाकर गिर जाती हैं । पूरा का पूरा पौधा सूख जाता है । इन प्रभावित पौधों को जड़ से उखाड़कर देखने पर जड़ों के ऊपरी भाग पर भूरी या काले काले रंग की धारियां दिखाई पड़ती हैं । यह धारियों रोग जनक फफूंद की रचानाओं के कारण दिखाई है जो जड़ों से पानी व पोषण तत्व तने व पत्तियों तक नहीं पहुंच पाते हैं ।

रोगजनक (causal organism) - फ्यूजेरियम आक्सीस्पोरम फा.स्पि. उडम ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- (i) रोग प्रकोप चूंकि एक पौधे से फैलकर आसपास के पौधों पर फैलता है इसलिए प्रभावित पौधों की जड़ से उखाड़ कर एकत्र कर जला देना चाहिए । जिससे आगामी वर्ष में रोग की उग्रता कम की जा सकती है ।

(ii) फसल काटने के बाद हुए ठूंठ भी जड़ सहित उखाड़ कर एकत्र कर जला देना चाहिए । जिससे भी आगामी वर्ष में रोग उग्रता कम हो जावेगी ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:- (i) मिश्रित खेती- ज्वार व अरहर को एक के बाद एक कतार में बोने से रोग पकोप की संम्भावना कम हो जाती है और उग्रता में भी कमी हो जाती है ।

(ii) तम्बाकू के साथ फसल चक्र अपनाया जावे तो रोग प्रकोप बहुत कम हो जाता है। तम्बाकू की जड़ों से निकलने वाला स्राव रोग जनक के लिए हानिकारक होता है ।

(iii) बुबाई पूर्व कपास व मूंगफली की खली को खेत में मिलाया जावे तो रोगजनक के प्रतिरोधी जीवाणु बैसिलस सबटेलिस की उत्पत्ती अधिक होती है जो रोगजनक की बढ़वार को कम करके रोग प्रकोप को कम करते हैं । प्रति हेक्टर 20 क्ंिवटल खली उपयोग करना चाहिए ।

(iv) रोग प्रतिरोधी जातियों का चुनाव किया जावे, उपलब्ध इन जातियों के नाम हैं एन.पी. 15, एन.पी.डब्लू, एफ-18, आर-41, रोगान-1, एव बी-1, आन्ध्र टाइप - 17

11.11 मसूर के मुख्य फफूंदी रोग (Important Fungal Diseases of Lentil)

1. चूर्णी फफूंदी अथवा पाऊडरी मिल्डऊ रोग (Powdery mildew diseases)

लक्षण (Symptoms)- रोग के लक्षण बुवाई के लभगभ ढाई माह बाद देखे जा सकते हैं । इस अवधि तक फसल फूल आने की अवस्था में आ जाती है । इस समय रोग पौधों

की सबसे पुरानी पत्तियों पर सफेद सफेद चक्ते बनाता हैं । ये चक्ते बस कुछ दिनों में तीव्रता से बढ़ते हैं और पूरे पौधों पर सफेद पाऊडर समान रचना निर्मित हो जाती है ।

रोगजनक (Causal organism) - इरीसाइफी पॉलीगोनी ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- रोग निदान के लिए फसल का ढाई माह का हो जाने पर एक छिड़काव घुलनशील गंधक (0.2 प्रतिशत) किया जावे अथवा 300 मेश का गंधक चूर्ण का एक भूरकाव 12 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से किया जावे ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:- (i) मसूर बुवाई से पूर्व खेत की अच्छी तरह से सफाई की जानी चाहिए एवं पौध अवशेषों को एकत्रित कर जला देना चाहिए जिससे रोग के प्राथमिक संक्रमण स्रोत का नष्ट किया जा सकता है ।

(ii) स्थानीय रोग प्रतिरोधी अथवा सहनशील जाति का चुनाव किया जाना चाहिए ।

2. उक्ठा या म्लानि या विल्ट रोग (Wilt disease)

लक्षण (Symptoms)- रोग का प्रकोप बुबाई के 15-20 दिनों बाद ही शुरू हो जाता है । खेत में पर्याप्त नमी के रहते हुए पौधों की वृद्धि रूक जाती है, पत्तियाँ पीली पड़ने लगती है और पौधे सूखकर मर जाते है। प्रभावित पौधे को उखाड़कर देखने पर रोगी पौधे की जड़ें अविकसित व हल्के भूरे रंग की हो जाती है ।

रोगजनक (Causal organism)- फ्यूजेरियम ऑक्सीस्पोरम फा.स्पि.लेन्टिस ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- इस रोग के नियंत्रण के लिए खड़ी फसल में कोई भी उपाय न अपनाये जावें क्योंकि रोगजनक मिट्टी जनित है । केवल प्रभावित पौधों को ही निकल कर नष्ट कर देवें जिससे रोगजनक के प्रसार को कम किया जा सकता है ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:- (i) रोग बीज जनित भी है इसलिए बुवाई पूर्व बीज को बेविस्टिन या थीरम या केपटन या केपटाफाल नाम फफूंद नाशक दवा से शुष्क उपचारित करके बोयें । ढाई ग्राम दवा एक किलो बीच उपचार के लिए पर्याप्त होती है ।

(ii) पौध अवशेषों को एकत्र कर जला देवें ।

(iii) रोग सहनशील किस्में जैसे - एस.617 एवं एस.64388 को समस्या ग्रस्त खेतों के लिए चुनें ।

11.12 चने के मुख्य फफूंदी रोग (Important Fungal Diseases of Gram)

1. उक्ठा या म्लानि या विल्ट रोग (Wilt diseases)

लक्षण (Symptoms)- प्रभावित पौधों की पत्तियाँ पीली पड़ना शुरू होती और पीलापन धीरे-धीरे बढ़ने लगता है तथा पौधे भूरे रंग में बदलने लगते है एवं अन्त में सूख जाते है। पौधों की मिट्टी में पर्याप्त नमी के रहते हुए सूखना, उक्ठा रोग का प्रमुख लक्षण हैं ।

प्रभावित पौधों की जड़ उखाडकर देखने पर ज्ञात होता है कि छोटी जडे ंतो भूरी हो गई है और मुख्य जड़ पर काली सी भूरी धारियाँबन गई हैं ।

रोगजनक (Causal organism) -फ्यूजेरियम आर्थोसिरस ओपरकुलेला पैडविकिआई, स्कलेरोशियम रोल्फसाई, राइजेकओनिया सोलेनाई आदि फफूंदों के एक साथ या अलग अलग प्रकोप करने के कारण रोग की उग्रताबढ़ जाती है ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- रोग नियंत्रण के लिए खड़ी फसल में कोई भी उपाय नहीं सुझायें गये है, अतः केवल संक्रमित खेत को विशेष रूप से पहचाना जावें जिससे अलगे वर्ष बुबाई पूर्व नियंत्रण उपाय विशेष ध्यानपूर्वक अपनाये जा सकें ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-

(i) पौधे अवशेषों को जुताई कर एकत्र करके जला देते है । (ii) बीज किसी दैहिक फफूंद नाशक दवा जैसे बेवस्टीन या कारबेंडाजिम 2.5 ग्राम दवा प्रतिकिलों की दर से उपचारित करके ही बोये (iii) खेत में पानी के निकास का उचित प्रबंध करें (iv) रोग नियंत्रण का सर्वोत्तम उपाय रोग रोधी जाति का चयन करना है । उपलब्ध रोग प्रतिरोधी जातियों के नाम हैं सी-235, जी-24, जे.जी.-315, काबुली चना आई सी.सी. - 32 आई.सी.सी.-42, (अ) समस्या ग्रस्त खेत में सरसों खली, खाद के स्थान पर डालने से रोग की उग्रता बहुत कम हो जाती है

2. एस्कोकाइटा अंगमारी या ब्लाईट रोग (Ascochyta Blight Disease)

लक्षण (Symptoms)- रोग सबसे पहले पत्तियों पर गीले से चक्त्ते बनाता है जो धीरे धीरे गोलाकार आकार को प्राप्त कर लेते हैं । इन चक्त्तों में भूरे रंग का घेरा और भीतरी भाग पीला या मटमैला होता है । इसी तरह के चक्त्ते पत्तियों के अतिरिक्त शाखाओं और फल्लियों पर भी बनते है।तने पर इन फलों का प्रभाव इस तरह से होता है कि पौधे सुखने लगते हैं । उग्र अवस्था में पत्तियों और फल्लियों पर चक्त्ते आपस में मिल जाते है जिससे पौधे झुलसे हुए दिखाई देते है।

रोगजनक (Causal organism) -एस्कोकाइटा रैबिआई ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- ताम्रयुक्त फफूंद नाशक दवा जैस फाइटोलान, ब्लिटाक्स-50 क्यूरामार, ब्लूकापर आदि का 0.3 प्रतिशत घोल। या डाइथेन एम 45 का 0.2 प्रतिशत घोल या जाइरम या कुमान एल का 0.2 प्रतिशत घोल । (पअ) केप्टान या डाईफोलेअन का 0.15 प्रतिशत घोल पहला छिड़काव फूल आने के समय करें तथा दूसरा 12 से 15 दिन बाद करना चाहिए ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपाय:-

(i) बुवाई पूर्व बीज केपथन या थीरम दवा से 2.5 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचारित करें।

(ii) रोग प्रतिरोधी जाति लगाना रोग बचाव की सबसे उपयुक्त विधि है । इस रोग की उपलब्ध रोग प्रतिरोधी जाति के नाम है, पी.1528-1- एफ-8, सी.1234 पी. 1453 और ई.सी. 26435 आदि जातियों का चयन किया जाना चाहिए ।

(iii) तीन वर्षीय फसल चक्र अपनायें ।

11.13 मूंग व उड़द के मुख्य फफूंदी रोग (Important Fungal Diseases of Mung & urid)

1. पत्ती धब्बा या लीफस्पाट रोग (Downy mildew disease)

लक्षण (Symptom)- इस रोग के दो तरह के लक्षण रोगजनक फफूंद की दो प्रजातियों द्वारा उत्पन्न होते हैं । सर्कोस्पोरा क्युऐन्टा द्वारा वृत्ताकार या कोणीय धब्बे पत्तियों पर बनते हैं जो 0.5 से 4 से.मी. व्यास के होते हैं । इन धब्बों का रंग बैंगनी सा लाल होता है । पत्तियों के ऊपरी भाग पर धब्बे अधिक साफ दिखाई पड़तें हैं । मौसम की अनुकूलता पाकर धब्बे बढ़कर आपस में मिल जाते हैं एवं अनियमित आकार के धब्बे बनाते हैं । पौधे की पुरानी फल्लियों पर रोग का प्रभाव होता है जबकि नई फल्लियों स्वस्थ रहती है । प्रभावित फल्लियों काले रंग की हो जाती है । उग्र अवस्था में रोग प्रकोप से बीज सिकुड़ कर काले हो जाते हैं । तने पर बड़े आकार के धब्बे बनते हैं ।

सर्कोस्पोरा कैनेसेन्स जाति से पत्ती धब्बा रोग के लक्षण ज्यादातर पत्तियों पर ही दिखाई देते हैं । जिसका आकार अर्धवृत्ताकार से अनियमित होता है । इन धब्बों का रंग भूरा व मध्य में पीला भूरा होता है जिनका व्यास 2 से 8 से.मी. होता है । फल्लियों पर इस जाति का प्रकोप बहुत कम होता है । उग्र अवस्था में पत्तियाँ झुलस कर गिर जाती है ।

रोगजनक (causal organism) - सर्कोस्पोरा क्यूऐन्टा एवं सर्कोस्पोरा कैनेसेन्स ।

रोग नियंत्रण के उपाय (control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपायः- रोग की आंरभिक अवस्था में ही नीचे दी जा रही कोई भी एक दवा का छिड़काव किया जाना चाहिए ।

(i) ताम्रयुक्त फफूंदनाशक दवा जैसे फाइटोलान, ब्लिाटाक्स-50 क्यूपरामार ब्लू कापर 0.3 प्रतिशत की दर से या (ii) बोर्डो मिश्रण दवा 4:4:50 (iii) जिनेब या डाइथेन - जेड़ 78 दवा 0.2 प्रतिशत की दर से या (iv) जाइरम या कुमान एल 0.2 प्रतिशत की दर से आवश्यकता नुसार दूसरा छिड़काव 15 दिन के बाद करें ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपायः-

(i) स्वच्छ खेती अथवा पौध अवशेषों को एकत्र कर जला देना चाहिए जिससे रोगजनक का प्राथमिक संक्रमण स्रोत नष्ट हो जावेगा और रोग प्रकोप में बहुत कमी हो जावेगी ।

2. चारकोल विगलन या चारकोल राट रोग (Charcocal rot disease)

लक्षण (Symptoms)- रोग के मुख्य लक्षण पौधों के तने व जड़ों का विगलन होता है । रोग प्रकोप फसल की किसी भी अवस्था में देखा जा सकता है । रोग के लक्षण अंकुरण

के एक माह बाद दिखाई देते हैं । इस अवस्था में संक्रमण हो जाने से रोग प्रसार जड़ों में हो जाता है तथा जड़ सड़न के कारण प्रभावित पौधे मर जाते हैं । रोग के लक्षण पत्तियों पर भी नीचे की सतह पर दिखाई देते हैं । प्रभावित पत्तियों की नाड़ियाँ लाल भूरे रंग की हो जाती हैं । रोगग्रसित पौधों के तने व जड़ों पर काली से बिन्दुनुमा रचनायें भी फसल पकने के समय दिखाई देती हैं । इन रचनाओं को पिकनीडिया कहते हैं ।

रोगजनक (Causal organism) - मैक्रोफोमिना फैजिओलाइ ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपायः- पत्ती धब्बा रोग के निदान के लिए उपयोग की गई दवा, इस रोग के निदान में भी सहायक होती है । इसलिए इस रोग के लिए अलग से दवा डालने की आवश्यकता नहीं हैं ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपायः-

(i) बुवाई पूर्व बीज को 2 ग्राम बेविस्टीन प्रतिकिलो दवा से उपचारित करें ।

(ii) स्वच्छ खेती या पौध अवशेषों व गिरी हुई पत्तियों को एकत्र कर जलायें, जिससे मिट्टी जनित संक्रमण का स्रोत नष्ट हो जाता है ।

(iii) फसल चक्र ज्वार या बाजरा फसल के साथ अपनाना चाहिए क्योंकि इन फसलों पर इस रोग का प्रकोप नहीं होता है ।

11.14 मटर के मुख्य फफूंदी रोग (Important Fungal Diseases of Pea)

1. मृदुरोमिल या डाऊनी मिल्डऊ रोग (Downy mildew diseases)

लक्षण (Symptoms)- रोग के लक्षण पत्तियों एवं अनुपर्णों के ऊपरी भाग पर पीली या भूरी सी अनियमित आकृतियाँ द्वारा पहचाने जा सकते हैं जिनके ठीक नीचे पत्ती के निचले भाग पर सफेद जाले सरीखी रचना बनती हैं । यह रचना वास्तव में रोगजनक फफूंद के कवकजाल, बीजाणु व बीजाणुओं का समूह होता है । इन आकृतियों का आकार छोटा या पूरी पत्तियों पर भी फैल सकता है । प्रभावित भाग के उत्तक मर जाते है जिससे उनका रंग भूरा दिखाई पड़ता है । रोग के प्रभाव से पौध विकास पर प्रतिकूल प्रभाव होता है तथा पौधे बौने रह जाते हैं । पौधों का फैलाव भी कम होने लगाता है । फल्लियों पर रोग के लक्षण हल्के हरे रंग के धब्बे के रूप में बनते हैं जो लगभग वृत्ताकार होते हैं ।

रोगजनक (Causal organism) - पेरोनोस्पोरा पाइसाइ ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:-

किसी भी तरह की दवा का उपयोग आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त नहीं होता हैं । यदि उग्रता से प्रकोप की संभवाना हो तो बोर्डो मिश्रण (4:4:50) का छिड़काव करें ।

(ख) बुआई पूर्व रोग नियंत्रण के उपायः-

(i) रोग का प्राथमिक स्रोत नष्ट करने के लिए बीज की बुवाई पूर्व अच्छी तरह से सफाई कर फल्लियों के टुकडों को अलग कर देना चाहिए ।

(ii) स्वच्छ खेती अपनाना चाहिए एवं पौध अवशेषों को एकत्र कर जला देना चाहिए ।

(iii) दो वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए ।

2. किट्ट या गेरूआ रोग (Rust diseases)

लक्षण (Symptoms)- रोग के लक्षण पत्तियों, तने, शाखाओं, पूर्णवृतों, प्रतान तथा फल्लियों पर दिखाई देते हैं । सबसे पहले पत्तियों पर पीले रंग के उभार लिए स्फोट दिखाई देते है परन्तु शीघ्र ही इन स्फोटो के बाह्य त्वचा के फटने एवं मटमैला सा पाऊडर सरीखा बनता है, जो वास्तव में रोगजनक की एशियम अवस्था हैं ।

रोग नियंत्रण के उपाय (Control measures):-

(क) खड़ी फसल में रोग नियंत्रण के उपाय:- जनवरी प्रथम सप्ताह में पहला छिड़काव या भुरकाव किया जावे तथा प्रति हेक्टर कम से कम 450 लीटर दवा का घोल का छिड़काव करें ।

1. घुलनशील गंधक 0.2 प्रतिशत अथवा 2.गंधक चूर्ण 300 मेश वाला 15 किलो प्रति हेक्टर की दर से भुरकाव करें अथवा 3.केराथेन एल.सी. 0.1 प्रतिशत अथवा 4.मोरस्टान 0.05 प्रतिशत अथवा 5.कैल्कसीन 0.05 प्रतिशत अथवा 6.मोरो साइड 0.1 प्रतिशत दवा का 12 से 15 दिन के अंतर से 3 बार दवा डालना आवश्यक होता है

11.15 साराशः-

पौधों में फफूंदी रोग फफूंद या कवक (Fungi) द्वारा होता है। फफूंद के संक्रमण तथा इसके प्रकोप के बारे में जब तक समझ में आए तब तक रोग उग्र रूप धारण करने की स्थिति में पहुंच चुका होता है। इसलिए फफूंदी रोगो का अध्ययन करना आवष्यक है जिससे रोगजनक, संक्रमण विधि, निदान उपाय बुआई एवं खडी फसल में कैसे अपनाए जाएं को उचित ढंग से समझा जा सके एवं फसल की सुरक्षा की जा सके।

11.16 बोध प्रश्न

1. फफूंद नाशक दवाओं के प्रयोग करते समय कौन कौन सी सावधानियाॅ रखनी चाहिए ?
2. गेहूँ के काला गेरूआ रोग का रोगजनक, लक्षण एवं नियंत्रण के उपाय क्या है ?
3. अरहर के उक्ठा या मुरझान रोग के लक्षण, रोगजनक एवं नियंत्रण के उपाय लिखिये ?
4. सोयाबीन का बीज सडन व पौध अंगमारी रोग के लक्षण रोगजनक एवं नियंत्रण के उपाय क्या है ?
5. मूंगफली के टीका रोग का विस्तार से वर्णन करे ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. कवक की कोशिका भित्ति .....बनी होती है।

   (अ) काइटिन या सेल्यूलोज (ब) केल्शियम (स) पेकटीन (द) उपरोक्त में से कोई नही

2. गेहूँ के अनावृत कंड रोग का रोगजनक है ?

(अ) पक्सीनिया ग्रेमिनिस ट्रिटिसाइ (ब) आस्टीलेगो न्यूड़ा ट्रिटिसाइ

(स) यूरोसिस्टस ट्रिटिसाइ (द) पक्सीनिया स्ट्राइफार्मिस

3. .....कापरयुक्त फफूंद नाशक दवा है ?

(अ) सेरासान (ब) डायथेन एम 45 (स) जीनेब (द) फाइटोलान

4. बाजरे के अरगट रोग में निर्मित कड़ी संरचनाये ..... कहलाती है ?

(अ) स्केलेरोशिया (ब) अरगट (स) बीजाणुदंण्ड (द) क्लाइडियाँ

5. सरसो व तोरिया के सफेद फफोला रोग का रोगजनक है ?

(अ) माइरोथीशियम रोरिडम (ब) स्क्लेरोस्पोरा ग्रैमिनीकोला

(स) फाइजोडर्माजी मेडिस (द) एल्बूगों कैन्डिडा।

वस्तुनिष्ठ प्रश्नो के उत्तर

1. (अ) काइटिन या सेल्यूलोज
2. (ब) आस्टीलेगो न्यूड़ा ट्रिटिसाइ
3. (अ) सेरासान
4. (ब) अरगट
5. (द) एल्बूगों कैन्डिडा।

11.17 संदर्भ:

28. Reddy, T.Y. and Reddi, G.H.S., 2000, Principles of Agronomy, Kalyani Publishers, New Delhi.
29. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
30. Singh, Chhidda. 1999., Modern Techniques of Raising Field Crops, Oxford & IBH publishing company private limited, New Dehi
31. Singh, S.S., 1993, Crop Management under irrigated and Rainfed Conditions, Kalyani Punlishers, New Delhi.
32. अहलावतए आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलेंए रामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ.
33. सिंह, बी.पी., पादप रोग विज्ञान, रामा पब्लिषिंग हाउस, मेरठ.

इकाई - 12

बागवानी फसलों के मुख्य फफुदीय रोग एवं उनका नियंत्रण

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 फलों के मुख्य फंफुदीय रोग

- 12.2.1 आम
- 12.2..2अमरूद
- 12.2.3 नींबू वर्गीय फल
- 12.2.4 पतीता
- 12.2.5 केला
- 12.2.6 अंगूर
- 12.2.7 कटहल
- 12.2.8 बेर
- 12.2.9 अनार
- 12.2.10 सेब
- 12.2.11 स्ट्राबेरी

12.3 सब्जियों के मुख्य फंफुदीय रोग

- 12.3.1 मिर्च
- 12.3.2 टमाटर
- 12.3.3 बैंगन
- 12.3.4 भिंडी
- 12.3.5 फूल गोभी
- 12.3.6 पत्ता गोभी
- 12.3.7 गांठ गोभी
- 12.3.8 आलू
- 12.3.9 लहसून
- 12.3.10 शकरकंद
- 12.3.11 हल्दी
- 12.3.12 मटर
- 12.3.13 बरबटी
- 12.3.14 फ्रेंचबीन

12.3.15 सेम
12.3.16 ग्वार
12.3.17 कद्दू वर्ग की सब्जियां (कुम्हड़ा आदि)
12.3.18 पत्तेदार सब्जियां
12.3.19 टैपिओका
12.3.20 रतालू
12.3.21 पान
12.4 सारांश
12.5 बोध प्रश्न
12.6 संदर्भ ग्रंथ

12.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो सकेंगे कि -

- फलों एवम् सब्जियों में लगने वाले मुख्य फंफुदीय रोग
- इन रोगों के रोगजनक एवं लक्षण
- इन फंफुदीय रोगों को नियंत्रण करने के उपाय

12.1 प्रस्तावना

जब पौधों की सामान्य क्रियाऐं अव्यवस्थित हो जाती है और उनका कार्य रूक जाता है ऐसा होने से उनकी दिखाई देने लगते हैं, जिसे रोग या व्याधि या बिमारियां कहते हैं। पौधे, किसी भी अव्यवस्था में जैसे बीज,, नवांकुरित पत्ती, तना, फूल, तथा फल रोगों द्वारा प्रभावित हो सकते हैं। इन रोग या बिमारियों के निश्चित लक्षण होते हैं, ये रोग एक निश्चित रोगजनक जैसे कि फंफुदी जीवाणु, विषाणु द्वारा उत्पन्न होते हैं। फंफुदीय रोग एक निश्चित वातावरण में फैलते हैं और उचित उपाय द्वारा उन्हें नियंत्रित भी किया जा सकता है।

12.2. फलों के मुख्य फंफुदीय रोग

12.2.1 आम

1. **रोग का नाम :** चूर्णी फफूंदी ;(Powedery Mildew)

   रोगजनक : ओइडियम मेंजीफेरी (Oridium mangiferae)

   लक्षण : फूलों तथा छोटे फलों तथा शाखाओ के अग्र भाग पर भूरे रंग का चूर्ण जमा होना तथा बाद मेंप्रभावित अंग भूरा हो जाना। पत्तियों पर बिखरे हुए धब्बे दिखाई देना।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. घुलनशील गंधक का 0.02 प्रतिशत घोल 15 दिन के अंतर से छिड़काव करें।

2. प्रतिशत कोसान का छिड़काव भी प्रभावशील है।
3. गुएसाल 1 किलो प्रति वृक्ष का भुरकाव करें।

2 **रोग का नाम :** एन्थ्रेक्नोज (anthracnose)

रोगजनक: कोलेटोट्राइकम जाति (Colletorichum spp.)

लक्षण: वृक्ष की टहनियों, पत्तियों, फूलों तथा फलों पर होता है। पत्तियों पर गहरे रंग के चकते पड़ना। टहनियों पर काले धब्बे तथा फलों मे भी कभी कभी काले धब्बे होना।

नियंत्रण के उपाय:

1. 13:3:50 बोर्डो मिश्रण या छिड़काव तीन बार करें। या
2. 0.5 प्रतिशत कैप्टान का छिड़काव करें।
3. **रोग का नाम:** काला दाग (Blackup)

रोगजनक: कायिकीय रोग (Physiologicaldisease)

लक्षण: फल के निचले सतह पर पहले भूरा दाग होता है जो आगे जाकर काला हो जाता है। फल गिर जाते है।

नियंत्रण के उपाय:

1. ईटों के भट्टे से लगभग 1/2-1 किमी. दूरी पर पौधे लगाएं। भट्टों की चिमनी 15 मी. ऊँची बनाए।
2. 0.8 प्रतिशत कास्टिक सोडा का दो बार छिड़काव करें।
3. 0.6 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव करें।

12.2.2 अमरूद

1. **रोग का नाम:** उकठा रोग (Gurava wilt)

   रोगजनक: फ्यूजेरियम प्रजाति (Fusarium spp.)

   लक्षण: शाखाएं आगे के भाग से सूखना आरंभ होकर नीचे की तरफ सूख भी जाती है। पूरा वृक्ष सूख जाता है।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. सूखी टहनियों को काटकर जला दें।
   2. उत्तम जल निकास रखना।
   3. भूमि की क्षारीयता कम करना।

1. **रोग का नाम:** एन्थ्रेक्नोज (anthracnose)

   रोगजनक: कोलेटोट्राइकम साइडाई (Collectorichum spp.)

   लक्षण: आरंभ में फलों पर काली चित्तियां होना और बाद में पूरा फल काला हो जाना। फल छोटे रह जाते हैं। शीत ऋतु में कम लगता है।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. 3:3:50 बोर्डो मिश्रण या छिड़काव तीन बार करंे। या
   2. 0.5 प्रतिशत कैप्टान का छिड़काव करें।

3. सूखे फलों को तोड़कर अलग कर दें।

12.2.3 नींबू वर्गीय फल

1. **रोग का नाम:** पिंक रोग (Pink disease)

रोगजनक: पेलीकुलेरिया सालमोनाइकलर (Pellicularia salmonicolour)

लक्षण: तने में दरार आ जाती है और चिपचिपा पदार्थ निकलता है। तने तथा शाखाओं पर सफेद तथा पीले दाग बन जाते हैं। छाल क्षतिग्रस्त हो जाती है।

नियंत्रण के उपाय:गमोसिस रोग के समान ही उपचार करें। रोगग्रस्त शाखाओं को काट दें।

रोग का नाम: शीर्ष गलन (wither up)

रोगजनक: कोलेटोट्राइकम जाति (Colletorichum Siddii)

लक्षण: नई शाखाएं गलकर तथा सूखकर गिरने लगती है। इनका रंग भूरा पड़ जाता है। कभी कभी गुलाबी रंग जैसा दिखाई देता है। पूरा वृक्ष भी सूख जाता है। संतरा और मोसम्बी अधिक प्रभावित होते हैं।

नियंत्रण के उपाय:

1. प्रभावित शाखाओं को काटकर जला दें।
2. मार्च और सितम्बर में 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें।

रोग का नाम: डाय बैक या सूखा रोग (Die back)

रोगजनक:अनेक कारणों से होती है। (विषाणु)

लक्षण:

1. वृक्ष की ओजस्विता कम होने लगती है।
2. टहनियां सूखने लगती हैं और पूरा वृक्ष सूख जाता है।

नियंत्रण के उपाय:

1. उचित उद्यानिक प्रबंध करें
2. समस्त संभावित उपाय किएजाने चाहिए। उचित मूलवृन्त का उपयोग करें।

12.2.4 पतीता

रोग का नाम: आई गलन (Damping off)

रोगजनक: पीथियम एवं राइजोक्टोनिया कोलेटोट्राइकम जाति (Pythium Rhizoctonia)

लक्षण: क्यारियों में छोटे पौधे नीचे से गलकर गिर जाते हैं।

नियंत्रण के उपाय:

1. बीजोपचार करें - एग्रोसान जी.एन. 2-3 ग्राम/किलो बीज, या सेरेसान 2 ग्राम /किलो बींज
2. उत्तम जल निकास रखें।

12.2.5 केला

1. **रोग का नाम:**पनामा बिल्ट (Panama wilt)

रोगजनक: फ्यूज़ेरियम आक्सीस्पोरम (Fusarium oxysporum)

लक्षण:

1. पौधों की पत्तियां सूखकर गिरने लगती है।
2. केला का पूरा तना फट जाता है और पौधा सूख जाता है।

नियंत्रण के उपाय:

1. रोगग्रस्त पौधे को उखाड़कर जला दें।
2. कीडो के नियंत्रण के उपाय करें।
3. रोगग्रस्त क्षेत्रों से पौधे न खरीदें।

2. **रोग का नाम:** फलों का सड़ना सिगार रूट (Cigar rot)

रोगजनक: हैल्मिनथोस्पोरिय टॉरूलोसम (helminthosporium torulsosum)

लक्षण: फलों का शीर्ष भाग सड़ने लगता है।

नियंत्रण के उपाय:

1. केले का खेत बदल दें।
2. रोगग्रस्त पौधे अलग कर दें।
3. नाइट्रोजन देना कर कर दें।
4. प्रभावित फलों को निकाल दें। युक्त दवा का छिड़काव करें।

12.2.6 अंगूर

1. **रोग का नाम:** एन्थ्रेक्नोज(anthracnose)

रोगजनक: गलाइस्पोरियम एम्पेलोफैंगस(Gloesporium ampelophagum)

लक्षण: शाखाओं, लताओं तथा पत्तियों पर काले धब्बे हो जाते हैं। पत्तियां भूरी होकर गिर जाती है।

नियंत्रण के उपाय:

1. बोर्डो मिश्रण (3:3:50) का छिड़काव करें।
2. डायथेन ज़ेड-78,2.5 किलो प्रति हेक्टर छिड़काव करें या ब्लाइटॉक्स 0.03 प्रतिशत छिड़काव करें।

2. **रोग का नाम** चूर्णी फफूंदी (Powedery Mildew)

रोगजनक: उन्सीनुला नेक्टर (न्दबपदनसं दमबंजवत)

लक्षण पत्तियों तथा तनों पर सफेद चूर्ण आच्छादित हो जाता है। फलों पर भी चूर्ण जम जाता है।

नियंत्रण के उपाय: गंधक के चूर्ण 0.2 प्रतिशत का भुरकाव करें। बैंगलोर ब्लू में कम लगती है।

12.2.7 कटहल

1. **रोग का नाम:** साफ्ट राट (Softrot)

रोगजनक: राइजोपस आर्टोकार्पी (Rhizopus atrocarpi)

लक्षण:

1. फूलों का नर अंग प्रभावित हो जाता है।
2. फल गिर जाते है।
3. तने पर गुलाबी सफेद रंग के उठे हुए धब्बे और दरार होना।

नियंत्रण के उपाय:

1. बोर्डो मिश्रण (3:3:50) का छिड़काव करें।

12.2.8 बेर

रोग का नाम: चूर्णी फफूंदी (powedery Mildew)

रोगजनक: आईडियोप्सिस जाति (Oidiopsis एसपीपी.)

लक्षण: पत्तियों पर सफेद चूर्ण जमा होना, फल पकने पर भूरे धब्बे वाले होना।

नियंत्रण के उपाय:

1. केप्टान 0.02 प्रतिशत या घुलनशील गंधक 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करें।

12.2.9 अनार

रोग का नाम: पत्तियों और फलों पर धब्बे

रोगजनक: सर्कोस्पोरा ग्लियोस्पोरियम (Crercospora gloeosporium)

लक्षण: पत्तियों और फलों पर सफेद धब्बे होना।

नियंत्रण के उपाय:

1. प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें।

12.2.10 सेब

रोग का नाम: स्टेम ब्लेक(Stem Black)

1. **रोगजनक:** कोनेयोथीसियम कोमेटोस्फोरम (Coniothecium chomatosporum)
   लक्षण: आरंभ में शाखाओं पर धब्बे होते हैं।
   शाखाएं सूख जाती है।
   नियंत्रण के उपाय:रोगग्रस्त शाखाओं को काट देना चाहिए तथा कटे स्थान पर चैबटिया पेस्ट लगा दें।
2. **रोग का नाम** एपल स्कैब (Applescab)
   रोगजनक: वेनटूरिया इनेकेलिस (Venturia inaequilis)
   लक्षण: पत्तियां तथा फल झुलसकर गिरजाते हैं।
   टहनियां सूख जाती है।
   नियंत्रण के उपाय: घुलनशील लाइम-सल्फर (1:60) का छिड़काव करें।
3. **रोग का नाम** चूर्णी फफूंदी (Powedery Mildew)
   रोगजनक: पोडोस्फोरिया लियोकिरिका (Podosphaera)

लक्षण: पत्तियों के निचली सतह पर सफेद चूर्ण जमा हो जाता है। ऊपरी सतह भी ढक जाती है।

नियंत्रण के उपाय: चूना व गंधक (1:40) का छिड़काव करें।

12.2.11स्ट्राबेरी

1. **रोग का नाम:** गेरूआ रंग के धब्बे (Spot)

   रोगजनक: डेन्डोफोमा आब्जकलम (Dendriopjoma obsurons)

   लक्षण: आरंभ में पत्तियों पर छोटे छोअे बैंगनी धब्बे दिखाई देते हैं। धीरे-धीरे बढ़कर भूरे रंग के हो जाते हैं।

   नियंत्रण के उपाय: ब्लाइटॉइक्स 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करें।

2. **रोग का नाम:** रोग का नाम सूक्ष्म काले बिन्दु (minuti & black spot)

   रोगजनक:डिप्लोकारपन इरिलियाना (Diplocarpom earrliana)

   लक्षण: पत्तियों के ऊपरी सतह पर आसमानी बैंगनी रंग के बिन्दु दिखाई देते है।

   नियंत्रण के उपाय: ब्लाइटॉइक्स 0.3 प्रतिशत का छिड़काव करें।

12.3 सब्जियों के मुख्य फंफुदीय रोग

12.3.1 मिर्च

1. **रोग का नाम:** एन्थ्रेक्नोज (anthracnose)

   रोगजनक: कोलेटोट्राइकम कैप्साई (Colletorichumcapsici)

   लक्षण:

   1. छोटे और अधपके फलों पर भूरे धब्बे होना।
   2. फल झड़ जाते हैं। तने और पत्तियों पर भी धब्बे हो जाते हैं।

      नियंत्रण के उपाय:

      1. बीज को सेरेसान का उपचार करें।
      2. बोर्डो मिश्रण 1 प्रतिशत का छिड़काव करें।
      3. प्रभावित भाग को काटकर अलग कर दें।
      4. बेन्लेट (0.1 प्रतिशत) या डाइफाइटोन (0.2 प्रतिशत) का छिड़काव करें।

2. **रोग का नाम:** मुरझान (wilt)

   रोगजनक: फ्यूजेरियम जाति (Fusarium spp.)

   लक्षण: पौधों का अचानक सूख जाना।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. उचित फसल चक्र अपनाएं। ताग्र युक्त दवाओं का उपयोग रोग को फैलने से रोक सकता है।
   2. 4:4:50 बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें।

12.3.2 टमाटर

1. **रोग का नाम:** आर्द्र गलन (Damping off)

   रोगजनक: पिथियम जाति, राइजोक्टोनिया (Pithium spp. Rizoctonia)

   लक्षण: पौधों का निचला तना गल जाना।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. बीजोपचार उपचार करें।
   2. भूमि उपचार 0.1 प्रतिशत (कैपटान, फाइटोलान या ब्रासीकाल)

2. **रोग का नाम:**अगेती झुलसा (Early blight)

   रोगजनक: अल्टरनेरिया सोलैनी (Allernara solani)

   लक्षण: पत्तियों पर गोलाकार काले व भूरे धब्बे पड़ जाते हैं। पत्तियां झड़ जाती है।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. बीजोपचार उपचार करें।
   2. जिनेव 2 किलो प्रति हेक्टर के घोल का छिड़काव करें।
   3. डायथेन Z-78,(0.2%) का छिड़काव करें।

12.3.3 बैंगन

1. **रोग का नाम:** फोमोप्सिस ब्लाइट (Phomopsis blight)

   रोगजनक:फोमोप्सिस,बैक्संस (Phomopsis verans)

   लक्षण: पौधे के सभी अंग प्रभावित होते हैं। भूरे, लंबे, गोल दाग हो जाते हैं।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. बीजोपचार।
   2. 4:4:50 बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें।
   3. लंबा फसल चक्र अपनाएं।
   4. ब्लाईटॉक्स 50 का 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करें।
   5. बीजों को 50 डिग्री से. पर जल में 30 मिनट घंटा डुबोकर रखें।

2. **रोग का नाम:** मुरझान (Wilt)

   रोगजनक: फ्यूज़ेरियम, ओजोनियम, बर्टीसीलियम जातियाँ (Fusarium ozoniom veticullium spp.)

   लक्षण: पत्तियों का पीली पड़ जाना तथा भूरी हो जाना। पौधों का सूख जाना। तने के बीच का भाग गहरे रंग का हो जाता है। इसे चीरकर देखा जा सकता है। बैंगन के अतिरिक्त आलू, टमाटर, भिंडी, डहलिया आदि भी इस रोग से प्रभावित होते हैं।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग करें।
   2. समय - समय पर फफूंदनाशक दवाएं छिड़कें।

12.3.4 भिंडी

1. **रोग का नाम:** चूर्णी फफूंदी (Powerly mildew)

   रोगजनक:एरीसाइफी साइकोरेसियेरम (Erysiphe cicharacearum)

   लक्षण: पत्तियों के निचली सतह पर भूरा चूर्ण जमा हो जाता है। पत्तियां गिर जाती है।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. गंधक चूर्ण - 20 किलो प्रति हेक्टर या भुरकाव करें।
   2. कैराथेन - 0.05 प्रतिशत के घोल का छिड़काव।

12.3.5 फूल गोभी

1. **रोग का नाम:** आर्द्र गलन (Damping off)

   रोगजनक: पिथियम जाति, राइजोक्टोनिया (Pithium spp। Rizoctonia)

   लक्षण: पौधों का तना नीचे से गल जाता है।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. बासीकाल या थीरम में बीजोपचार करें। 2 से 3 ग्राम दवा प्रति किलो बींज
   2. भूमि उपचार (टमाटर के समान)

2. **रोग का नाम:** लीफ स्पाट या झुलसा रोग (Leaf spot of Blight)

   रोगजनक: आल्टर्नेरिया ब्रेसिकोला (Allerarnariabrassicala)

   लक्षण: छोटे गहरे रंग के धब्बे जो गोलकार होते हैं बाद में काले हो जाते हैं। फूल गोभी तथा पत्ता गोभी में भी कालापन आ जाता है।

   नियंत्रण के उपाय: बीजों को गर्म जल में (50 डिग्री से.) पर 30 मिनट रखें।

12.3.6 पत्ता गोभी

1. **रोग का नाम:** आर्द्र गलन (Damping off)

   रोगजनक: पिथियम जाति, राइजोक्टोनिया (Pithium spp.Rizoctonia)

   लक्षण: पौधों का तना नीचे से गल जाता है।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. बासीकाल या थीरम में बीजोपचार करें। 2 से 3 ग्राम दवा प्रति किलो बींज
   2. भूमि उपचार (टमाटर के समान)

2. **रोग का नाम:** लीफ स्पाट या झुलसा रोग (Leaf spot of blight)

   रोगजनक: आल्टर्नेरिया ब्रेसिकोला (Allernariabrassicola)

   लक्षण: छोटे गहरे रंग के धब्बे जो गोलकार होते हैं बाद में काले हो जाते हैं। फूल गोभी तथा पत्ता गोभी में भी कालापन आ जाता है।

   नियंत्रण के उपाय: बीजों को गर्म जल में (50 डिग्री से.) पर 30 मिनट रखें।

12.3.7 गांठ गोभी

1. **रोग का नाम:** आर्द्र गलन (Damping off)

   रोगजनक: पिथियम जाति, राइजोक्टोनिया (Pithium spp. Rizoctonia)

   लक्षण: पौधों का तना नीचे से गल जाता है।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. बासीकाल या थीरम में बीजोपचार करें। 2 से 3 ग्राम दवा प्रति किलो बींज
   2. भूमि उपचार (टमाटर के समान)

2. **रोग का नाम:** लीफ स्पाट या झुलसा रोग (Leaf spot of blight)

   रोगजनक: आल्टर्नेरिया ब्रेसिकोला (Allernariabrassicola)

   लक्षण: छोटे गहरे रंग के धब्बे जो गोलकार होते हैं बाद में काले हो जाते हैं। फूल गोभी तथा पत्ता गोभी में भी कालापन आ जाता है।

   नियंत्रण के उपाय: बीजों को गर्म जल में (50 डिग्री से.) पर 30 मिनट रखें।

12.3.8 आलू

1. **रोग का नाम:** अगेती झुलसा (Early blight)

   रोगजनक: आल्टर्नेरिया सोलेनाई (Allernaria solani)

   लक्षण: पत्तियों पर काले रंग के धब्बे कन्द पर भी दाग हो जाते है।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. बीजोपचार करें। 0.05 प्रतिशत एगलाल।
   2. जिनेव 0.2 प्रतिशत या डाइथेन-Z-78(0.2%) किलो प्रति हेक्टर के 5 बार छिड़काव करें।

12.3.9 लहसून

1. **रोग का नाम:** लीफ ब्लाइट (Leaf Blight)

   रोगजनक: आल्टर्नेरिया जाति (Allernaria spp)

   लक्षण: सफेद दाग पत्तियों पर आ जाते हैं, जिनके मध्य में बैंगन बिन्दु होते है।

   नियंत्रण के उपाय:

   1. बोर्डो मिश्रण1 प्रतिशत का छिड़काव करें या 0.25 प्रतिशत का छिड़काव 15 दिन के अंतर से करें।

12.3.10 शकरकंद

1. **रोग का नाम:**लीफ स्पॉट(Leaf spot)

   रोगजनक:सर्कोस्पोरा बटाटा (Allernaria spp)

   लक्षण: पत्तियों पर बड़े भूरे धब्बे होते हैं। गर्म तथा नम वातावरण में रोग अधिक फैलताहै।

   नियंत्रण के उपाय: बोर्डो मिश्रण1 प्रतिशत का छिड़काव करें

2. **रोग का नाम**: साफ्ट रॉट(Soft Rot)

रोगजनक:राइजोपस निग्रिकेन्स (Rhizopus-nigricans)

लक्षण: कंद गीली होकर सड़ना। संग्रहण रोग आता है।

नियंत्रण के उपाय: चोट खाए कंद संग्रहित न करें।

3. **रोग का नाम:** ब्लेक रॉट

रोगजनक:सिरेस्टोमेला फर्मिब्रियाटा (Cerastomellafirmbriata)

लक्षण: पत्तियों का रंग पीला हो जाता है। कंद सड़ने लगते है।

नियंत्रण के उपाय:

1. बीज उपचार करें।
2. उचित फसल चक्र अपनाएं।

12.3.11 हल्दी

रोग का नाम: लीफ स्पॉट(Leaf spot)

रोगजनक: कोलेटोट्राइकम जाति (Colletorichum)

लक्षण: पत्तियों पर काले भूरे रंग के धब्बे हो जाते हैं।

नियंत्रण के उपाय:

1. डाइथेन -Z-78(0.2%) या डाइथेन -M-45 का छिड़काव करें।

12.3.12 मटर

1. **रोग का नाम:** भभुतिया रोग (Powerly mildew)

रोगजनक:एरीसाइफी पॉलीगोनी (Erisiphe polygoni)

लक्षण: पत्तियों, डंठलों तथा फलियों पर सफेद चूर्ण जमा हो जाता है। पत्तियां पीली होकर मर जाती है।

नियंत्रण के उपाय

1. गंधक 15 किलो/हेक्टर का भरकाव करें।
2. 0.05 प्रतिशत मोरेस्टान या केराथेन का छिड़काव करें।
3. निरोधक किस्में लगाएं।

2. **रोग का नाम:** एन्थ्रेक्नोज (anthracnose)

रोगजनक: कोलेटोट्राइकम जाति (Colletorichum spp.)

लक्षण: तने पर काले धब्बे हो जाना। फलियां और पत्तियां भी प्रभावित होती है।

नियंत्रण के उपाय

1. बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का छिड़काव करें।
2. बीजोपचार - सेरेसान 1.25 प्रतिशत घोल 0.30 मिनट डुबोएं

12.3.13 बरबटी

1. **रोग का नाम:** भभुतिया रोग (Powerly mildew)

रोगजनक:एरीसाइफी पॉलीगोनी (Erisiphe polygoni)

लक्षण: पत्तियों, डंठलों तथा फलियों पर सफेद चूर्ण जमा हो जाता है। पत्तियां पीली होकर मर जाती है।

नियंत्रण के उपाय

1. गंधक 15 किलो/हेक्टर का भरकाव करें।
2. 0.05 प्रतिशत मोरेस्टान या केराथेन का छिड़काव करें।
3. निरोधक किस्में लगाएं।

2. **रोग का नाम:** एन्थ्रेक्नोज (anthracnose)

रोगजनक: कोलेटोट्राइकम जाति (Colletorichum spp.)

लक्षण: तने पर काले धब्बे हो जाना। फलियां और पत्तियां भी प्रभावित होती है।

नियंत्रण के उपाय

1. बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का छिड़काव करें।
2. बीजोपचार - सेरेसान 1.25 प्रतिशत घोल 0.30 मिनट डुबोएं

12.3.14 फ्रेंचबीन

1. **रोग का नाम:** भभुतिया रोग(Powerly mildew)

रोगजनक: एरीसाइफी पॉलीगोनी (Erisiphe polygoni)

लक्षण: पत्तियों, डंठलों तथा फलियों पर सफेद चूर्ण जमा हो जाता है। पत्तियां पीली होकर मर जाती है।

नियंत्रण के उपाय

1. गंधक 15 किलो/हेक्टर का भरकाव करें।
2. 0.05 प्रतिशत मोरेस्टान या केराथेन का छिड़काव करें।
3. निरोधक किस्में लगाएं।

2. **रोग का नाम:** एन्थ्रेक्नोज (anthracnose)

रोगजनक: कोलेटोट्राइकम जाति (Colletorichum)

लक्षण: तने पर काले धब्बे हो जाना। फलियां और पत्तियां भी प्रभावित होती है।

नियंत्रण के उपाय

1. बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का छिड़काव करें।
2. बीजोपचार - सेरेसान 1.25 प्रतिशत घोल 0.30 मिनट डुबोएं

12.3.15 सेम

1. **रोग का नाम:** भभुतिया रोग (Powerly mildew)

रोगजनक: एरीसाइफी पॉलीगोनी (Erisiphe polygoni)

लक्षण: पत्तियों, डंठलों तथा फलियों पर सफेद चूर्ण जमा हो जाता है। पत्तियां पीली होकर मर जाती है।

नियंत्रण के उपाय

1. गंधक 15 किलो/हेक्टर का भरकाव करें।
2. 0.05 प्रतिशत मोरेस्टान या केराथेन का छिड़काव करें।
3. निरोधक किस्में लगाएं।

2. **रोग का नाम:** एन्थ्रेक्नोज (anthracnose)

रोगजनक: कोलेटोट्राइकम जाति (Colletorichum spp.)

लक्षण: तने पर काले धब्बे हो जाना। फलियां और पत्तियां भी प्रभावित होती है।

नियंत्रण के उपाय

1. बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का छिड़काव करें।
2. बीजोपचार - सेरेसान 1.25 प्रतिशत घोल 0.30 मिनट डुबोएं

12.3.16 ग्वार

1. **रोग का नाम:** भभुतिया रोग(Powerly mildew)

रोगजनक: एरीसाइफी पॉलीगोनी (Erisiphe polygoni)

लक्षण: पत्तियों, डंठलों तथा फलियों पर सफेद चूर्ण जमा हो जाता है। पत्तियां पीली होकर मर जाती है।

नियंत्रण के उपाय

1. गंधक 15 किलो/हेक्टर का भरकाव करें।
2. 0.05 प्रतिशत मोरेस्टान या केराथेन का छिड़काव करें।
3. निरोधक किस्में लगाएं।

2. **रोग का नाम:** एन्थ्रेक्नोज (anthracnose)

रोगजनक: कोलेटोट्राइकम जाति (Colletorichum spp.)

लक्षण: तने पर काले धब्बे हो जाना। फलियां और पत्तियां भी प्रभावित होती है।

नियंत्रण के उपाय

1. बोर्डो मिश्रण (5:5:50) का छिड़काव करें।
2. बीजोपचार - सेरेसान 1.25 प्रतिशत घोल 0.30 मिनट डुबोएं

12.3.17 कद्दू वर्ग की सब्जियां (कुम्हड़ा आदि)

1. **रोग का नाम:** भभुतिया रोग(Powerly mildew)

रोगजनक: एरीसाइफी साइकोर्रसियेम (Erisiphe cichoracearum)

लक्षण: पत्तियों तथा तनों पर सफेद चूर्ण जमा हो जाना। पत्तियां सूख जाती है।

नियंत्रण के उपाय

1. मोरेस्टान - 0.05 प्रतिशत या केराथेन - 0.75 प्रतिशत का छिड़काव करें।
2. गंधक 15 किलो प्रति हेक्टर का भुरकाव करें।

2. **रोग का नाम**: एन्थ्रेक्नोज (anthracnose)

रोगजनक: कोलेटोट्राइकम जाति (Colletorichum spp.)

लक्षण: पत्तियों, तनों पर जल सिक्त धब्बे होना और काला हो जाना। तरबूज और ककड़ी अधिक प्रभावित होती है।

नियंत्रण के उपाय

1. बीजोपचार करें।
2. बोर्डो मिश्रण (5ः5ः50) का छिड़काव करें।
3. फसल चक्र अवनाएं।

3. **रोग का नाम:** पर्णदाग (leaf spot)

रोगजनक: सर्कोस्पोरा जाति (Cercospora spp.)

लक्षण: पत्तियों पर गहरे भूरे जल सिक्त धब्बे होना।

नियंत्रण के उपाय: जिनेव 0.25 प्रतिशत का छिड़काव करें।

4. **रोग का नाम:** जड़ गलन (Root rot)

रोगजनक: फ्यूजेरियम जाति (Fusarium spp.)

लक्षण: तने का आधार गहरा भूरा होकर मुलायम हो जाता है।

नियंत्रण के उपाय: बीज को 55 डिग्री से. पर 15 मिनट पानी में गर्म करें और मरक्यूरिक क्लोराइड (1:1000) के घोल में डुबोएं।

12.3.18 पत्तेदार सब्जियां

1. **रोग का नाम:** आर्द्र गलन (Dmmping off)

रोगजनक: पिथियम जाति (Pithium mildew)

लक्षण: पौधों का निचला भाग गल जाना।

नियंत्रण के उपायः बीजोपचार तथा भूमि उपचार।

2. **रोग का नाम:** भभुतिया रोग (Powerly mildew)

रोगजनक: मिश्रित रोग जनक

लक्षण: पत्तियों पर सफेद या भूरा चूर्ण जमा हो जाना।

नियंत्रण के उपायः केराथेन - 0.05 प्रतिशत या बोर्डो मिश्रण 3:5:50 का छिड़काव करें।

12.3.19 टैपिओका

1. **रोग का नाम:** पर्णदाग (Leaf spot)

रोगजनक: सर्कोस्पोरा कैसावी (Cercospora cassarvae)

लक्षण: पत्तियों पर भूरे हरे धब्बे जोबाद में भूरे रंग के हो जाते हैं।

नियंत्रण के उपाय

1. बोर्डो मिश्रण 1 प्रतिशत का छिड़काव करें।
2. ब्लाइटाक्स 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें।

12.3.20 रतालू

1. **रोग का नाम:** पर्णदाग (Leaf spot)

   रोगजनक: सर्कोस्पोरा कैर्बोनेसी ()

   लक्षण: पत्तियों पर भूरे या काले रंग के धब्बे हो जाना

   नियंत्रण के उपाय

   1. बोर्डो मिश्रण 1 प्रतिशत का छिड़काव करें।
   2. ब्लाइटाक्स 0.2 प्रतिशत का छिड़काव करें।

2. **रोग का नाम:** कंद सड़न (Tuber rot)

   रोगजनक: बोट्रिओडिप्लोडिया थियोब्रोमी (Botrydodilodia theobramae)

   लक्षण: कंदों का सड़ना।

   नियंत्रण के उपाय -कंद उपचार (वेन्लेअ 0.3 प्रतिशत)

12.3.21 पान

1. **रोग का नाम:** पद गलन एवं पत्तियों के धब्बे (Foot rot & leaf rot)

   रोगजनक: फाइटोप्थोरा पैरासिटका (Phythophthora theobramae)

   लक्षण: पत्तियों पर गहरे भूमि रंग के धब्बे गोल चक्र के रूप मे उत्पन्न होना। पत्तियों पर जल सिक्त धब्बे होना। बेल भूमि के समीप से गल जाना। प्रभावित बेलों को चीर कर देखने पर मध्य में काली लकीर दिखलाई देती है। बेलें रेशदार हो जाती हैं।

   नियंत्रण के उपाय

   1. कलम को 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण से 20 मिनट तक लगाने से पूर्व उपचारित करें।
   2. भूमि उपचार 1 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण (2.5 ली. प्रति मी.2) धब्बे स्पष्ट होने पर 0.05 प्रतिशत बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करें।
   3. 15 दिन के अंतर में 0.05 प्रतिशत बोर्डोमिश्रण का छिड़काव करें।
   4. छिड़काव जुलाई से अक्टूबर तक करें।

2. **रोग का नाम:** वीधा (Anthracnose)

   रोगजनक: कोलेटोट्राइकम कैपसीकाई (Colletorichum capsici)

   लक्षण: बेलों पर लंबे काले धब्बे दिखलाई पड़ते हैं। बेल गांठों से टूट जाती है।

   नियंत्रण के उपाय

   1. डायथेन एम - 15 - 02 प्रतिशत का छिड़काव।
   2. बाविस्टीन 0.1 प्रतिशत का छिड़काव।
   3. **रोग का नाम:** बुकनी रोग (Powdery mildew)

रोगजनक: अल्डियम पापपेरित (Oldium piparis)

लक्षण: पत्तियों पर कपास जैसे धब्बे दिखलाई पड़ते है।

नियंत्रण के उपाय

1. सल्फेक्स (0.25 प्रतिशत) या सल्टाफ (0.25 प्रतिशत) या कोसान (0.25 प्रतिशत) का छिड़काव

12.4 सारांश

जो अपने जीवनयापन के लिए पौधों को साधन बनाती है पौधों में अधिकांश रोग कवक या फफूंदी द्वारा उत्पन्न होते हैं। विभिन्न प्रकार के कवक पौधों की कोशिकाओं के अंदर जाकर क्रियाशील हो जाते हैं, जिससे कि रोगों के लक्षण प्रकट होते हैं। चोट या खरोंच द्वारा उन्हें पौधों के अंदर प्रवेश करना सरल होता है।

12.5 बोध प्रश्न

1. आम में लगने वाले मुख्य फंफुदीय रोग एवम् उनका नियंत्रण बताइए।
2. आलू में पाऐ जाने वाले मुख्य फंफुदीय रोग एवम् उनका नियंत्रण बताइए।
3. गोभीवर्गीय सब्जियों में लगने वाले मुख्य फंफूदीय रोग तथा उनके रोगजनक बातइए?
4. आम में लगने वाले रोग एन्थ्रेक्नोज(।दजीतवबदवेम) का रोगजनक---------हैं?
   (अ) ओइडियम मेंजीफेरी
   (ब) कोलेट्रोटाइकम जाति
   (स) जैन्थोमोनास जाति
   (द) इनमें से कोई नहीं
5. निम्न में से कौन से रोग नींबूवर्गीय फलों में पाऐ जाते हैं?
   (अ) सिंट्रस कैंकर (ब) पिंक रोग
   (स) डाय बैक (द) उपरोक्त सभी

12.6 संदर्भ ग्रंथ

34. Reddy,T.Y.and redid, G.H.S.,2000, *Principles of Agronomy, Kalyani Publishers,* New Delhi
35. शर्मा ओ.पी. इन्टोडिया,एस.के. शर्मा एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, *शस्य विज्ञान (कृषि वर्ग)* माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर
36. Singh Chidda. 1999., *Modern Techniques of Raising Field Crops,* Oxford & IBH Publishing company private limited,New Delhi
37. Singh S.S., 1993 Crop Management under Irrigated and Rainfed Conditions,Kalyani Publishers,New Delhi.
38. अहलावत आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., *सस्य विज्ञान के सिद्धांत एंव फसलें* रामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ.
39. सिंह, बी.पी., *पादप रोग विज्ञान,* रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ.

इकाई -13

फसलों के मुख्य जीवाणु रोग एवं नियंत्रण

इकाई की संरचना

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 फसलों के मुख्य जीवाणु रोग एवं नियंत्रण

13.2.1 धान का पर्ण झुलसा रोग (Bacterial Leaf Blight Disease of Rice)

13.2.2 धान का लीफ स्ट्रीक रोग (Bacterial Leaf Streak disease of Maize)

13.2.3 मक्का का पर्ण झुलसा रोग (Leaf Blight disease of Soyabean)

13.2.4 मक्का का स्तम्भ विगलन रोग (Stalk Rot of disease Maize)

13.2.5 सोयाबीन का झुलसा रोग (Bacterial Blight disease Maize)

13.2.6 अरण्डी का पर्ण चित्ती रोग (Bacterial Leaf Spot disease of Castor)

13.2.7 तिल का पर्ण चित्ती रोग (Bacterial Leaf Spot disease of Sesame)

13.2.8 तिल का पर्ण झुलसा रोग (Bacterial Blight disease of Sesame)

13.2.9 तिल का जीवाणुज विल्ट (Bacterial Wilt of Sesame)

13.2.10 कपास की जीवाणुज अंगमारी /कोणीय पर्ण चित्ती कृषण शाखा रोग (Bacterial Blight/Angular Leaf Spot/Black Arm disease of Cotton)

13.2.11 जूट का पर्ण चित्ती रोग (Bacterial Leaf Spot disease of Jute)

13.2.12 पटुआ /सनई का पर्ण चित्ती रोग (Bacterial Leaf Spot of Sunhemp / Bombay hem)

13.2.13 गन्ने का लाल धारी रोग (Red Strip disease of Sugarcane)

13.2.14 गन्ने का रेटून स्टंरिटग (Ratoon Stuntting of Sugarcane)

13.2.15 गेहूँ का झुलसा रोग (Bacterial Blight disease of Wheat)

13.2.16 गेहूँ का लीफ स्ट्रीक एवं ब्लैक चाफ रोग (Bacterial Leaf streak and Black Chaff disease of Wheat)

13.2.17 गेहूँ का पीला विगलन रोग (Yellow Ear Rot disease of Wheat)

13.2.18 जई का झुलसा रोग (Bacterial Blight disease of Oat)

13.3 सारांश

13.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.5 संदर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य आप को निम्न बिन्दुओं से अवगत करना है -

- विभिन्न प्रकार की फसलों में पाए जाने वाले प्रमुख जीवाणु रोगों की जानकारी
- फसलों के जीवाणु रोगों के रोग जनक जीवाणु एवं रोग के लक्षणों का परिचय
- फसलों के जीवाणु रोगों का नियंत्रण

13.1 प्रस्तावना

पादप मनुष्य का प्रमुख भोजन स्रोत एवं कृषि का मूलभूत आधार है जब कोई पादप किसी रोग कारक से प्रभावित होता है तो उसकी उत्पादन क्षमता कम हो जाती है। अतः पादप-रोग विज्ञान एक महत्वपूर्ण विषय है क्योंकि इससे पूरी खाद्य व्यवस्था प्रभावित होती है। जीवाणु की कुल 1600 जातियों में से लगभग 100 जातियाँ पादपों में रोग की कारक होती है। अधिकतर पादप रोग जनक जीवाणु Facultative Saprophytes होते है। पादपों पर जीवाणुओं के संक्रमण से विशिष्ट रोग होते है और इन रोगों से उत्पन्न लक्षण पादप परजीवी संबंध, प्रजातियाँ एवं पर्यावरण पर निर्भर करते है तथा इनके आधार पर पाये जाने वाले सामान्य जीवाणु रोगों के लक्षण निम्न होते है -

1 झुलसापन (Blights) - जीवाणु के आक्रमण के फलस्वरूप पौधों के प्रभावित भागों में बहुत तेजी से और व्यापक परिगलन होता है। अनन्तः पादप झुलसने की स्थिति में पहुंच जाता है।

2 मृदु गलन (Softrots) -जीवाणुओं की एन्जाइम क्रियाविधि से पादप की कोशिकाओं एवं मध्यम परत (Middle Lamella) के विघटन से उत्तक नरम हो जाना इसका प्रमुख लक्षण है।

3 पर्ण चित्ती (Leaf Spot) - इस रोग में जीवाणु रंध्र के माध्यम से प्रवेश करता हुआ आसपास के उत्तकों का विलगन कर देता है, जो सतह पर परिगलित क्षेत्र के रूप में दिखाई देता है। यह मृत उत्तक भूरे, जलक्रांत एवं आकार में सीमित होते है।

4 अर्बुद एवं घाव (Tumours and Galls) - कई जीवाणु रोगों में रोग जनक के प्रभाव से उत्तकों की अतिवृद्धि एवं अतिप्रसार (Hyperplasia) पाया जाता है।

5 नासूर (Cankers) - उत्तकों के (परिगलन) नेक्रोसिस एवं अक्षति ग्रस्त उत्तकों के काग कोशिकाओं के उत्पादन के प्रतिक्रिया स्वरूप पत्तियों, टहनियों एवं फलों पर cankers बन जाते है।

6 संवहनी रोग (Vascular disease) - कुछ जीवाणु संवहन उत्तकों में केन्द्रित हो जाते है। जीवाणुओं के कुछ प्रमुख पादप रोगजनक वंश निम्न है -

(1) जेन्थोमोनास (Xanthomonas)

(2) स्ट्रेप्टोमाइसीज (Stroptemyces)

(3) एर्विनिया (Erwinia)

(4) स्यूडोमोनास (Pseudomonas)

(5) क्लोवीबैक्टर (Clavibacter)

(6) एग्रोबैक्टीरियम (Agrobacterium)

(7) ज़िलेला (Xylella)

पादप रोग जनक जीवाणुओं में पैथोवार अथवा उपजातियों का प्रचलन है। पादप रोग विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय समिति (International Society of Plant Pathology) जीवाणुओं में प्रचलित नामों को बनाए रखने में उपयुक्त प्रस्ताव देने के लिए एक पैथोवार नाम पद्धति (System of Pathovar names) को बनाने में सफल हुई जिनकी जातियों के नाम प्रचलित होने के साथ साथ पादप जीवाणु वैज्ञानिकों द्वारा मान्य भी है परन्तु किसी कारण से स्वीकृत सूचियांे (approved lists) में स्थान नहीं पा सके थे। अतः ये पैथोवार अथवा उपजातियाँ प्रचलन में है। पादपों के जीवाणु रोग प्रायः बीज, मृदा, कीट एवं पानी की सहायता से फैलते है। प्रस्तुत इकाई में खरीफ एवं रबी की फसलों को प्रभावित करने वाले प्रमुख रोग जनक जीवाणुओं, उनके लक्षणों एवं इन रोगों के नियंत्रण के बारे में उल्लेख किया गया है।

13.2 फसलों के मुख्य जीवाणु रोग एवं नियंत्रण

13.2.1 धान का पर्ण झुलसा रोग Bacterial Leaf Blight disease of Rice)

रोगजनक

- यह रोग जैन्थोमोनास ओराइजी पैथोवार ओराइजी (Xanthomanas oryze pv. Oryzal) द्वारा फैलता है।

लक्षण

- यह रोग पौधों की अंकुरण अवस्था (Seeling Statge) से लेकर परिपक्व अवस्था तक कभी भी हो सकता है। इस रोग में लम्बे सूखे क्षत (dry lesions) पत्ती के ऊपरी भाग से शुरू होकर पत्ती के किनारे-किनारे मध्य भाग की तरफ बढ़ते है। सूखे पीले पत्तों के साथ साथ सूखे, राख के रंग के लम्बे लम्बे चकते (lesions) भी दिखाई देते है। संक्रमण की अगली अवस्था में पूरी पत्ती सूख जाती है।
- नम मौसम में पादप के रोगी भागों से छोटी-छोटी धुधंली बूंदों के रूप में हल्के अम्बर रंग का जीवाणुज निपंक (Bacterial ooze) बाहर निकलता है। रोगग्रस्त पादपों के संवहनी पूल या बंडल जीवाणुओं से भर जाते है और पादप की मृत्यु हो जाती है।

नियंत्रण

1. रोग के प्रकट होने पर कुछ समयके लिए खेत में खड़े पानी को निकाल दें।
2. रोगग्रस्त फसल की पैदावार का बीज के लिए उपयोग न करें।
3. रोग लगने पर नत्रजन वाली खाद का प्रयोग कम कर दें व 5 दिन के लिए टांप ड्रेसिंग रोक दें।
4. बीजों को एग्रीमाइसीन 100 के 0.025 प्रतिशत घोल+जलमिश्रणीय सेरेसान के 0.05 प्रतिशत घोल में 8 घंटे तक रखने के बाद 30 मिनट के लिए 52-54 डिग्री से. तापमान पर ऊष्ण जल उपचार करके बीजोढ़ जीवाणु को समाप्त किया जा सकता है।

5. बीजों को केवल सेरेसान (0.01%)+ स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (0.3g को 2.5 गैलन जल में) के घोल में 8 घंटे तक उपचारित करने से जीवाणु मर जाते है।
6. धान की रतना, पंकज, IR-20, IR-36, P.2-21 साकेत-4, विजय, राजेन्द्र, धान 202 आदि किस्में बीमारी रोधक है।

13.2.2 धान का लीफ स्ट्रीक रोग (Bacterial Leaf Streak disease of Rice)

रोगजनक

- यह रोग जीवाणु जैन्थोमोनास ओराएजिकोला (Xanthomonas oryzicola) के कारण होता है।

लक्षण

- यह एक पर्ण रोग है। रोग का पहला संकेत transluscent interveinal धारियों की उपस्थिति है। इन धारियों में पीला या एम्बर मोती जीवाणु exudates प्रचुर मात्रा में होता है। जब ये सूखते हैं, तो pustules का खुरदूरापन महसूस किया जा सकता है।

नियंत्रण

1. 0.025% Streptocyclin एवं गर्म पानी में बीज को 30 मिनट तक भिगोकर उपचारित किया जा सकता है।
2. 0.15-0.3% वाइटावैक्स (Vitavax) का छिड़काव करें।

13.2.3 मक्का का पर्ण झुलसा रोग (Leaf Blight disease of Soyabean)

रोगजनक

1. यह रोग क्लेवीबैक्टर मिशिगेनेसिस (Clavibacter Michiganesis subsp. Netbraskensis) द्वारा होता है।

लक्षण

- अण्डाकार, लम्बे-लम्बे भूरे रंग के धब्बे पत्तियों के निचले हिस्से में ज्यादा होते हैं। कभी -कभी पौधा झुलसा सा दिखाई देता है। लाली लिए हुए भूरे रंग की समान्तर धारियाँ जिनमें एक से 3-4 सेमी के गोलाकार धब्बे दिखाई देते है।

नियंत्रण

1. जिनेब का (Dithane - 78) 0.12% के घोल का छिड़काव लक्षण दिखते ही प्रारम्भ करना चाहिए तथा भुट्टे निकलने तक प्रत्येक सप्ताह छिड़काव करना चाहिए।
2. रोग रोधी किस्म बोनी चाहिए।

13.2.4 मक्का का स्तम्भ विगलन रोग (Stalk Rot disease of Maize)

रोगजनक

- यह रोग एर्विनिआ क्राएसेन्थिमी ;म्तूपदपं बीतलेंदजींउपद्ध के द्वारा होता है।

लक्षण

- विगलन नीचे स्थित नोडस पर होता है और सीमित रूप से स्तम्भ के नीचे ऊपर से गुजरता है। स्तम्भ नरम हो जाता है और लचीले प्रभावित पौधे तेजी से नीचे गिरने लगते है। विगलन की अग्रिम अवस्था में पत्तियाँ पीली एवं सूखनी शुरू हो जाती है।
- बालियाँ निकलने लगती है और कभी-कभी फसलें संक्रमित होकर लटक जाती है।

नियंत्रण

1. स्तम्भ के चारों ओर पानी के संचय से बचना चाहिए।
2. 22 प्रतिशत युक्त क्लोरोसिन (Chlorocin) का दो बार मृदा उपचार, पुष्पीकरण के पहले एवं प्रथम के 10 दिन बाद नियंत्रण में सहायक है।

13.2.5 सोयाबीन का झुलसा रोग (Bacterial Blight disease of Soyabean)

रोगजनक

- यह रोग स्यूडोमोनसास सिरेंज पैथोवार ग्लाइसीनिया (Pseudomonas syringae pr. Glycinea) द्वारा होता है।

लक्षण

- इसका प्रभाव पहले छोटे पौधों पर दिखाई देता हैं। पौधों की अन्तस्थ कलिका भूरे रंग की हो जाती है। नीचे की पत्तियों पर जंग के समान भूरे धब्बे बन जाते है।
- फलियाँ छोटी आती है, बढ़वार मारी जाती है, फसल पकने के बाद भी रोगग्रस्त पौधे टूटे ही दिखाई देते हैं।

नियंत्रण

1 जिनेब या मिनेब के घोल का छिड़काव करें।

2 प्रभावित जाति Pb.1 बोयें।

3 मक्का व ज्वार के साथ फसल चक्र में उगाएँ।

13.2.6 अरण्डी का पर्ण चित्ती रोग (Bacterial Leaf Spot disease of Castor)

रोगजनक

- इस रोग का कारण जीवाणु जैन्थोमोनास रिसीनी (Xantomonas ricini) है।

लक्षण

- रोगजनक बीजपत्रों, पर्णों एवं पर्ण शिराओं पर हमला करता है और कुछ छोटे, गोल, जलांक्रात धब्बे पैदा करता है, जो बाद में कोणीय और गहरे भूरे काले हो जाते हें
- ये धब्बे संलयित होकर अनियमित हो जाते है और बाद में पीले भूरे और भंगुर हो जाते है।
- पर्ण की दोनों सतहों पर जीवाणुज अवपंक छोटे चमकीले मोती के रूप में देखा जा सकता है।

नियंत्रण

1. बीजों को बोने से पहले 2.5 हउ केप्टान या थायराम प्रति क्रिग्रा बीज की दर से उपचारित करके बोएँ।
2. बीजों का 58^0C - 60^0C पर गर्म पानी उपचार भी सहायक है।

13.2.7 तिल का पर्ण चित्ती रोग (Bacterial Leaf Spot disease of Sesame)

रोगजनक

रोगजनक

- यह रोग स्यूडोमोनास सिरेन्ज पैथावार सिसेमी (Pseydomonas syrinal pr. Sesami) द्वारा होता है।

लक्षण

- यह रोग गहरे किनारों वाले हल्के भूरे कोणीय धब्बों के रूप में पत्तियों पर प्रकट होते है। ये धब्बे शिराओं पर सीमित होते है। कई धब्बे मिल कर एक बड़े क्षेत्र को ढक लेते है और पूरी पत्ती ही सूख जाती है।
- ये जीवाणु तने एवं कैप्सूल को भी प्रभावित करता है।

  नियंत्रण

  1. स्ट्रेप्टोमाइसिन के 250, 500 एवं 1000 ppm विलयन में बीजों को 1 घंटे तक डुबो कर रखने से बीज द्वारा फैलने वाला संक्रमण रोका जा सकता है।
  2. खेत में संक्रमण रोकने के लिए 1000 ppm ऐग्रीमाइसिन से बीजों को उपचारित कर 100 ppm ऐग्रोमाइसिन का छिड़काव किया जा सकता है।

13.2.8 तिल का पर्ण झुलसा रोग (Bacterial Leaf Blight disease of Sesame)

रोगजनक

- इस रोग का कारक जीवाणु. जैन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस पैथोवर सिसेमी (Xanthomonas compestris pr. Sesame) है।

लक्षण

- इसके प्रारम्भिक लक्षण बीज-पत्रों cotylldonary leaves पर छोटे, हल्के भूरे जलाक्रांत (Water soaked) धब्बों के रूप में प्रकट होते है, धीरे-धीरे दो गहरे भूरे एवं बड़े होते जाते है।
- बाद में काले होकर एक दूसरे से मिल कर अनियमित धब्बे बनाते है। पत्ती सूख जाती है। तना एवं कैप्सूल भी प्रभावित होते है।

  नियंत्रण

  - प्रतिजैविक एवं ऑर्गेनो मरक्यूरिल द्वारा बीज उपचारित किए जा सकते है।
  - स्टेप्टोसाइक्लिन एवं कापर आक्सीक्लोराइड के 10 दिन के अंतराल पर 3 छिड़काव भी रोग नियंत्रण में सहायक है।

13.2.9 तिल का जीवाणुज विल्ट (Bacteria Wilt of Sesame)

रोगजनक

- इस रोग का स्यूडोमोनास सोलेनेसिरयम बायोवार 3 (ralstonia solanacearum biovar 3) है।

लक्षण

- ब्लीचिंग पाउण्डर, स्ट्रेप्टोसाइक्लिन एवं मस्टर्ड केक के मिश्रण मुदा उपचार रोग नियंत्रण में महत्वपूर्ण है।
- Pb तिल नं. 1 इस जीवाणु से कम प्रभावित होती है।

13.2.10 कपास की जीवाणुज अंगमारी/कोणीय पर्ण चित्ती/कृष्ण शाखा रोग (Bacterial Blight/ Ahngular Leaf Spot/Black Arm disease of Cotton)

रोगजनक

- यह रोग जैन्थोमोनास कम्पैस्ट्रीज पैथोवार माल्वेसिरम (Xanthomonas compestris pv. Malvacerum) नामक जीवाणु से होता है।

लक्षण

- जीवाणु पौधों के सभी भूमि के ऊपर वाले भागों पर आक्रमण करता है और विभिन्न प्रकार के रोग लक्षण उत्पन्न करता है।
- रोग के प्रारम्भ में नवोद्भिदों के बीजपत्रो ंपर गोल, जलसिक्त विक्षत (watersoaked lesions) दिखाई देते हैं जो बाद में बढ़ कर अनियमित और भूरे रंग के हो जाते है।
- परिपक्व पौधों की पत्तियों पर पहले जलसिक्त धब्बे प्रकट होते है, जो कोणीय (angular) हो जाते है तथा सूक्ष्म शिराओं द्वारा घिरे रहते है और ये गहरे भूरे रंग से काले रंग में बदल जाते है।
- संक्रमण पत्ती की बड़ी शिराओं एवं सूक्ष्म शिराओं से फैलता हुआ पर्णवृन्त एवं तने पर पहुंच जाता है। गहरे भूरे से काले रेखीय, धंसे हुए धब्बे बनते है जो तने एवं शाखाओं के चारों ओर मेखला (girdle) बना सकते है, जिससे पत्तियाँ पकने से पहले ही झड़ जाती है और स्वस्थ पौधों के स्थान पर विशिष्ट काली भुजा (Black arm) खड़ी दिखाई देती है।
- जीवाणु कपास गोलक (bolls) में भी संक्रमण कर सकता है।

नियंत्रण

1. बीजों को बोने से पहले स्ट्रप्टोमाइसीन से उपचारित करना चाहिए।
2. 0.01 प्रतिशत एग्रोमाइसीन का पौधों पर छिड़काव करना चाहिए।
3. कपास की रोगप्रतिरोधी किस्में जैसे (HC-09, BJA-592, P-14-T-12, 101-102b, खण्डवा - 2) आदि को बोना चाहिए।

13.2.11 जूट का पर्ण चित्ती रोग (Bacterial Leaf Spot disease of Jute)

रोगजनक

- यह रोग ज़ैन्थोमोनास जाति (Xanthomonas Sps.) द्वारा होता है।

लक्षण

- पर्ण पर ये चकते, एक पीले प्रभामंडल (yellow halo) से घिरे रहते है। गंभीर संक्रमण अवस्था में धब्बे संलयित हो जाते है और पर्ण झड़ने लगते है।
- रोग निचली पत्तियों से ऊपर की तरफ फैलता है।
- तने पर भूरे - काले रंग के छोटे छोटे (5 mm से भी कम) चकते दिखाई देते है और बाद में बड़े हो जाते हैं, तना टूट जाता है।
- फाइबर रंगहीन हो जाता है।

नियंत्रण

1. कई वर्षों तक एक खेत से जूट की फसल नहीं लेनी चाहिए।
2. 0.75 प्रतिशत का फाइटोलान या ब्लाइटोक्स के घोल से प्रभावित पौधों पर छिड़काव करें।
3. प्रतिरोधी जूट किस्मों का प्रयोग नियंत्रण में सहायक है।

13.2.12 पटुआ या सनई का पर्ण चित्ती रोग (Bacterial Leaf Spot disease Spot of Sunhemp/ Bombay hemp)

रोगजनक

- यह रोग ज़ैन्थोमोनास जाति (Xanthomonas Sps.) द्वारा होता है।

लक्षण

- इसमें पत्तियों पर चकते बन जाते है।
- अग्रिम अवस्था में ये धब्बे संलयित होकर पर्ण को ढक लेते है।

नियंत्रण

1 खेत से उचित जल निकास का प्रबन्ध करें।

2 उचित फसल चक्र अपनाएँ।

13.2.13 गन्ने का लाल धारी रोग (Red Strip sisease of Sugar cane)

रोगजनक

- यह रोग ज़ैन्थोमोनास रूबिरिलिनियन्स (Xanthomonas rubrilineas) द्वारा होता है।

लक्षण

- इसमें पतली लाल धारी, पत्तियों के निचले सिरे से प्रारम्भ होकर नसों के समान्तर बढ़ती है।
- प्रकोप अधिक दाने पर पत्तियाँ लाल दिखाई देने लगती है।

नियंत्रण

1. रोकथाम के लिए रोगरोधी किस्में बोनी चाहिए।
2. रोगरोधक जातियाँ जैसे बोनी चाहिए COLK 3102, CoS 8432, Co 62399
3. बोने से पहले टुकड़ों को 22 मिनट तक गर्म पानी में 50 डिग्री से. में डुबोने से बहुत बीमारियाँ नहीं लगती।

4. पौधों पर बीमारियों के लक्षण दिखाई देते ही पौधे खेत से उखाड़ देने चाहिए।

13.2.14 गन्ने की रैटून स्टंटिंग (Rattoon Stunting of Sugar cane)

रोगजनक

- इस रोग का कारक जीव क्लैवीबेक्टर जाइली (Clavibacter zyli) है।

लक्षण

- रोगग्रस्त पादप अवरूद्ध विकास, पीत पर्ण एवं छोटे अंतर - नोडस रखता है।
- रोगग्रस्त बीज की germinability कम होती है।
- इस रोग के विशिष्ट लक्षण को अनुलंबीय गन्ना खोलने के बाद ही देखा जा सकता है। मज्जा में दो प्रकार का discolouration दिखाई देता है। परिपक्व पादप में नारंगी लाल रंग एवं युवा पादपों में गुलाबी रंग नोड्स के पास देखा जा सकता है।

नियंत्रण

1 स्वस्थ फसल से ही बीज सेट का प्रयोग करें।

2 बीज गन्ने का गर्म हवा उपचार (8 घंटे के लिए 54 डिग्री से. पर) रोग की रोकथाम में सहायक है।

3 रोग ग्रस्त फसल ratooning के लिए चयनित नहीं की जानी चाहिए।

13.2.15 गेहूँ का झुलसा रोग (Bacterial Blight diseases of Wheat)

रोगजनक

- यह रोग स्यूडोमोनास सिरेंज उपजाति सिरेंज (Pseudomonas syrinage subsp. syringae) द्वारा होता है।

लक्षण

- पादप की इववज ेजंहम तक पहुंचने पर इस रोग के लक्षण सबसे ऊपर वाली पत्तियों पर दिखाई देते है। छोटे (0.04 इंच से कम) जलांक्रांत चकत्ते फैलने लगते है और अंततः संगठित हो जाते है।
- प्रारंभिक घाव नेक्रोटिक (मृत-उत्तकीय) होकर ग्रे, हरे से सफेद हो जाते है। नम मौसम में पत्तियों पर चिकनी बूंदे दिखाई देती है। पूरी पर्ण नेक्रोटिक हो जाती है, किन्तु head एवं glumes लक्षण रहित रहते है।

नियंत्रण

1. रोगरहित बीजों के प्रयोग द्वारा इस रोग का संक्रमण व प्रसार कम किया जा सकता है।
2. आर्द्र परिस्थितियों को नियंत्रित करें।
3. रोग प्रतिरोधक जातियों का प्रयोग करें।

13.2.16 गेहूँ का लीफ स्ट्रीक एवं ब्लैक चाफ रोग (Bacterial Leaf streak and Black Chaff disease of Wheat)

रोगजनक

- इस रोग का कारक जीवाणु जैन्थोमोनास कम्प्रस्ट्रिस पैथोवार ट्रांसल्यूसेन्स (Xanthomonas campestris pv. Translucens) है।

लक्षण

- इस रोग के लक्षण प्रायः ऊपरी पत्तियों पर जलाक्रांत चमकदार छोटे-छोटे धब्बों से शुरू होते है। ये धब्बे, फैल कर, संगठित हो जाते है तथा विभिन्न लम्बाई की चमकदार धारियों में बदल जाते है। हरे रंग की ये धारियाँ बाद में पीले-भूरे रंग में बदल जाती है। ये धारियाँ पर्ण की लम्बाई में फैलती है परन्तु पर्ण शिराओं (leaf veins) तक ही सीमित होती है। नम मौसम में जीवाणु अवपंक रोगग्रस्त ऊतकों पर चिपचिपी बूंदों के रूप में प्रकट हो सकता है।
- काले फूस (Black Chaff) लक्षण heading के बाद प्रकट होते है। तुष Glumes का ऊपरी भाग संक्रमण दर्शाता है। । Awns पर स्वस्थ व नेक्रोटिक ऊतक के बैण्ड बनना Black chaff का विशिष्ट लक्षण है।

नियंत्रण

1. फसल चक्र की सहायता से इस रोग के प्रसार को कम कर सकते है।
2. संक्रमित बीजों का प्रयोग न करें। फाॅमेलिन या काॅपर सल्फेट से उपचारित बीज संक्रमित नहीं होते है।
3. रोग प्रतिरोधक जातियों का प्रयोग सर्वोत्तम है।

13.2.17 गेहूँ का पीला विगलन रोग (YellowEar Rot disease of Wheat)

रोगजनक

- यह रोग क्लेवीबैक्टर ट्रिटिसाई (Clavibacter tritici) जीवाणु द्वारा होता है।

लक्षण

- इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में प्रभावित पौधे की निचली पत्तियाँ सिकुड़ जाती है तथा मध्यवर्ती पत्तियाँ ऐंठ जाती है। पूरी बाली एक चमकीले पीले चिपचिपे अवपंक से ढक जाती है। इस अवपंक के कारण तुष, तना एवं पर्णच्छद एक दूसरे से चिपक कर बंध जाते है, जिससे पौधे की वृद्धि रूक जाती है और तना विकृत हो जाता है।
- नम मौसम में यह अवपंक बहने लगता है तथा शुष्क मौसम में यह सूख कर कठोर, भंगुर एवं पीले या भूरे रंग का हो जाता है। ये लक्षण फसल के पकने पर प्रकट होत है।

नियंत्रण

1. स्वस्थ बीजों का चयन करना चाहिए।
2. खेत में जल निकास का उचित प्रबंध होना चाहिए।
3. उचित फसल - चक्र अपना कर इस रोग से बचा जा सकता है।
4. खेत से रोगी बालियों को तोड़ कर जला देना चाहिए।
5. खेतों की ग्रीष्मकालीन जुताई रोगाणु नष्ट करने में सहायक है।

13.2.18 जई का झुलसा रोग (Bacterial Blight disease of Oat)

रोगजनक

- यह रोग स्यूडोमोनास सिरेंज पैथोवार कार्नोफेशियन्स जीवाणु द्वारा जनित है।

लक्षण

- पर्ण पर छोटे, जलांक्रात एक हल्के पीले प्रभामंडल (yellow halo) से घिरे धब्बे दिखाई देते है।
- ये धब्बे पहले हरे होते है और बाद में हल्के भूरे हो जाते है। संक्रमण की गंभीर अवस्था में पर्ण सूख कर भर जाती है।
- कभी-कभी ये धब्बे hulls पर पाए जा सकते है।

नियंत्रण

- फसल चक्र अपनाएं।
- सवंमित बीजों का प्रयोग न करें। बीज उपचार के रोकथाम में सहायक है।
- जई की रोग प्रतिरोधी किस्मों का प्रयोग करें।

13.3 सारांश

मनुष्य के भोजन का प्रमुख स्त्रोत एवं कृषि का मूलभूत आधार पादप किसी रोग-कारक से प्रभावित होने पर कम उत्पादन क्षमता दर्शाता है। विभिन्न प्रकार के रोग-कारकों में से जीवाणु की लगभग 100 जातियाँ पादपों को संक्रमित करती है। जीवाणुओं के संक्रमण के फलस्वरूप पादप blight, soft, rot, leaf, spot, tumors & galls, cankers & vascular wilts जैसे लक्षण दर्शाते है। विभिन्न प्रकार की फसलों पर जीवाणुओ के आक्रमण सें उत्पन्न होने वाले लक्षणों के आधार पर उनके नियंत्रण के प्रयास किए जाते है।

पादपों में होंने वाले जीवाणु-रोगों के रोकथाम एवं नियंत्रण के लिए किए गए उपाय उनकी उचित मात्रा के अनुरूप ही प्रभाव दिखाते है। कम या अधिक मात्रा में ये रसायन पादप की उत्पादन क्षमता पर नकारात्मक प्रभाव दिखाते है।

प्रस्तुत अध्याय में कुछ प्रमुख जीवाणु रोगों जैसे: धान, मक्का, सोयाबीन, तिल, कपास, गेहूं व जई के झुलसा रोगों अरण्ड़ी, तिल, पटुआ के पर्ण चित्ती रोगों, मक्का, गेंहू के जीवाणु विगलन रोगों , गन्ने की लाल धारी व रैटून स्टंटिंग तथा तिल के विल्ट के रोगजनक, रोग लक्षण व उनके नियंत्रण पर विस्तृत चर्चा की गई है।

13.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. जीवाणुओं की लगभग कितनी जातियाँ पादपों में रोग की कारक होती है।

   (अ) 10 (ब) 100

   (स) 500 (द) 1000

2. मक्का के स्तम्भ विगलन रोग का कारक जीव है -

   (अ) क्लैवीबैक्टर (ब) जैन्थोमोनास

   (स) एर्विनिआ (द) जिलेला

3. पादप-जीवाणु रोगों का सबसे सामान्य लक्षण है -

(अ) क्राउन गाल (ब) सॉफ्ट रोट

(स) लीफ स्पॉट (द) वैस्कुलर विल्ट

4. निम्न में से कौनसा रोगजनक जीवाणु नीहं है -

(अ) क्लैंवीबैक्टर (ब) स्यूडोमोनास

(स) राइजोबियम (द) जैन्थोमोनास

5. जीवाणु रोगों से उत्पन्न सामान्य लक्षणों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
6. प्रमुख पादप रोगजनक वंशों का उल्लेख करते हुए उनसे उत्पन्न पादप रोगो की चर्चा कीजिए।
7. पादप रोगजनक जीवाणुओं में पैथोवार से आप क्या समझते है?
8. धान, मक्का, गेंहू, जई, सोयाबीन, तिल, कपास एवं जई के जीवाणुज पर्ण झुलसा रोगों पर विस्तृत लेख लिखिए।
9. गन्ने में पाए जाने वाले जीवाणु-रोगों का वर्णन कीजिए।
10. निम्न में विभेद कीजिए:-
    1. Rot & Spot
    2. Blight & Streak
    3. Black Arm & Black Chaff symtoms.

13.5 संदर्भ ग्रन्थ

1. अहलावत, आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलें, रामा पब्लिशिंग हाउस, मेरठ.
2. सिंह, बी.पी., पादप रोग विज्ञान, रामा पब्लिषिंग हाउस, मेरठ.
3. Singh, R.S., 2009, Plant Diseases, Oxford & IBH Publishing.
4. Mishra, S.R., 2003, Bacterial Plant Diseases, DPH Publisher.
5. Duveiller, E, L. Fucikovsky and Rudolph K., 1998, The Bacterial Diseases of Wheat : Concepts and of Disease management, CIMMYT, Mexica.
6. Rongaswamin, G. and Mahadivan, A., 2006, diseases of Crop Plants in India, Prevtice- Hall of India Pvt.

इकाई - 14

बागवानी फसलों के मुख्य जीवाणु रोग एवम् नियंत्रण

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 पदप रोगजनक जीवाणु का बर्गीज़ वर्गीकरण

14.3 प्रमुख पादप रोगजनक वंष

14.4 पादप रोगजनक जीवाणुओं में पैथोवार अथवा उपजातियाँ

14.5 बागवानी फसलों के मुख्य जीवाणुज रेाग

14.5.1 आलू का जीवाणुज भूरा विगलन एवम् म्लानि

14.5.2 सिट्रस कैंकर या नींबू का खर्रा रोग

14.5.3 गाजर का मृदुविलगन

14.5.4 सिट्रस हरीतिमा या नींबू का हरित रोग

14.5.5 टमाटर का जीवाणु मुरझान

14.5.6 ब्लैक लेग ऑफ पोटेटो

14.5.7 फलियों का झुलसा रोग

14.5.8 पान का पर्ण दाग

14.5.9 पान की पत्तियों का झुलसन, कैंकर

14.6 सारांश

14.7 बोध प्रष्न

14.8 संदर्भ सामग्री

14.0 उद्देश्य

इस इकाई करे पढ़ने के बाद आप इस योग्य हो सकंेगे कि -

- फलों एवम् सब्जियों के मुख्य जीवाणु रोगों की जानकारी प्राप्त कर पाएगें।
- जीवाणु रोगों के रोगों के लक्षण एवम् रोग चक्र जान पाएगें
- इन रोगों का रोग प्रबंधन ज्ञान कर पाएगें।

14.1 प्रस्तावना

जीवाणु भी अविकसित वनस्पति है जो पौधों में रन्ध्र के अंदर जाकर वृद्धि करती है। चोट या खरोच द्वारा भी पौधों के अंदर प्रवेश कर जाती है। इनके बीजाणु भी वायुमंडल, जल, भूमि आदि में उपस्थित रहते हैं। पौधों के अंदर जाकर उचित वातावरण मिलने पर क्रियाशील हो जाते हैं जिससे पौधों में धब्बे होना, सूख जाना आदि लक्षण दिखाई देते है।

14.2 पदप रोगजनक जीवाणु का बर्गीज़ वर्गीकरण

(Bergey's Classification of Plant Pathogenic Bacteria)

जगत (Kingdom) : प्रोकैरियोटी (Prokaryotae)

जीवाणु (Bacteria) : कोशिका झिल्ली एवम् कोशिका भित्ती उपस्थित होती है।

विभाग (Division) : ग्रेसिलीक्यूटीज (Graacilicutes): ग्रैम-अग्राही जीवाणु।

वर्ग (Class) : प्रोटिऔबैक्टीरिया (Proteobacteria): बहुधा एककोशीय जीवाणु।

कुल (Family) : ऐण्टेरोबैक्टीरिएसी (Entero Bacteriaceae)।

वंश (Genus): एर्विनिया (Acidovorax): सेब एवम् नाशपाती की दग्ध अंगमारी, गूदेदार सब्जियों का मृदा विगलन।

कुल (Family): स्यूडोमोनाडेसी (Pseudomonadaceae)

वंश (Genus): एसिडोवोरैक्स (Acidovorax): मक्का, तरबूज एवम् आर्किड्स की पर्ण चित्तियां।

स्यूडोमोनास (Pscudomonas): अनेक पौधों के पर्ण चित्ती, अंगमारी, संवहन म्लानि, मृदु विगलन, कैंकर एवम् पिटिका रोग।

राइज़ोबैक्टर (Rhizomonas): गाजर का जीवाणुज पिटिका।

राइजोमोनास (Rhizomonas): सलाद का कॉकीमूल विगलन रोग।

जैन्थोमोनास (Xanthomonas): वार्षिक एवम् बहुवर्षी पौधों की अनेक पर्ण चित्तियां, फल चित्तियां एवम् बहुवर्षी पौधों की अनेक पर्ण चित्तियां एवम् अंगमारियां, संवहनी म्लानि व सिट्रस कैंकर।

जाइलोफिलस (Xylophilus): अंगूरों का जीवाणुज ऊतकक्षय एवम् कैंकर।

कुल (Family): राइजोबिएसी (Rhizobiaceae)।

वंश (Genus): एग्रोबैक्टीरियम (Agrobaterium) सेब, अंगूर, खूबानी, चुकन्दर, इत्यादि का शिखर पिटिंका।

राइजोबियम (Rhizobium): फलीदार फसलों में मूल ग्रन्थियाँ।

कुल (Family) : अभी तक नाम रहित

वंश (Genus) : जिलेला (Xylella): वृक्षों एवं अंगूर लताओं पर पर्ण परिदाह एवम् शीर्षारंभी क्षय रोग।

विभाग (Division) : फर्मिक्यूटीज (Firmibacteria): ग्रैम ग्राही जीवाणु।

वर्ग (Class) : फर्मिबैक्टीरिया (Firmibacteria): बहुधा एक फर्मिबैक्टीरिया।

वंश (Genus) : बैलिलस (Bacillus): कंदों बीजों एवम् पौद की विगलन तथा गेहूं का श्वेतधारी रोग।

क्लास्ट्रीडियम (Clostridium): भंडारित कंदों एवम् पत्तियों की विगलन तथा एल्म एवम् पॉप्लर या चिनार का आर्द्रकाष्ठ।

वर्ग (Genus): थैलोबैक्टीरिया (Thallobacteria): शाखन जीवाणु।

वंश (Genus): ऑथोबैक्टर (Arthrobacter): गुलखैरा की जीवाणुज अंगमारी।

क्लेवीबैक्टर (Clavibacter): लूसर्न या रिजका, आलू एवम् टमाटर में जीवाणुज म्लानी।

कटोबैक्टीरियम (Curtobacterium): सेम एवम् दूसरे पौधों में म्लानि रोग।

रोडोकॉकस (Rhodococcus): स्वीट पी का स्तंभ गुच्छाभन।

स्ट्रेप्टोमाइसीज (Streptomyces): सामान्य आलू स्कैब।

मालिक्यूट्स (Mollicutes): माइकोप्लाज्मा सदृश जीव (Mycoplasmalike organisms-MLOs) कोशिका भित्ती का अभाव तथा केवल कोशिका झिल्ली उपस्थित।

विभाग (Division): टेनेरिक्यूटीज (Tenericutes)

वर्ग (Class): मॉलिक्यूटीज (Mollicutes)

कुल (Family): स्पाइरोप्लाज्मेटेसी (Spiroplasmataceae)

वंश (Genus): स्पाइरोप्लाज्मा (Spiroplasma): मक्का स्तंभन या वृद्धिरोध, सिट्रस अवरूद्ध रोग।

कुल (Family): अब तक अज्ञान।

वंश (Genus): अनिश्चित या अपरिभाषित फाइटोप्लाज्मा (Phytoplasma) के रूप में जाने जाते हैं जिन्हें पहले माइकोप्लाज्मका-सदृश जीव (MLOs) कहा जाता था - वृक्षों एवम् कुछ वार्षिक पौधों में अनेक पीत रोग, प्रचुरोद्भवन एवम् अपक्षय रोग उत्पन्न करते हैं।

'बर्गीज़ मैनुअल ऑफ डिटमिनेटिव बैक्टीरियोजी' के वर्ष 1994 में प्रकाशित 9 वें संस्करण के अनुसार जीवाणुओं को 35 वर्गों या समूहों के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है। नीचे केवल पादप रोगजनक जीवाणुओं एवं उनके समूहों को दिया गया है -

वर्ग या समूह (Group 4): ग्रैम - अग्राही वायुजीवी/अल्पवातप्रिय शलाका या छड़े एवम् गोलाणु (Gram-Negative Aetobic/Microaerophilic Rods and Cocci)

उपवर्ग या उपसमूह ए (Subgroup A)

वंश (Genera) : एग्रोबैक्टीरियम (Agrobacterium), स्यूडोमोनास (Pseudomonas), राइजोबैक्टर (Rhizobactor), राइजोबियम (Rhizobium), राइजोमोनास (Rhizomonas), जैन्थोमोनास (Xanthomonas), जिलेला (Xylella), जाइलोफिलस (Xylophilus)।

वर्ग या समूह 5 (Group 5) : विकल्पी रूप से अवायवीय ग्रैम-अग्राही शलाका या छड़े (Facultatively Anaerobic Gram-Negative Rods)

उपवर्ग या उपसमूह 1 (Subgroup 1):

कुल (Family) : ऐण्टेरोबैक्टीरिएसी (Enterobacteriaceae)

वंश (Genus) : एर्विनिया (Erwinia)

वर्ग या समूह 20 (Group 20): अनियमित, बीजाणु, अनुत्पादी, गै्रम-ग्राही शलाका या छड़े (Irregular,Non sporing Gram-Positive Rods and Cocci)

वंश (Genera) : आर्थौबैक्टर (Arthrobacter) क्लेवीबैक्टर (Clavibacter), कोरिनेबैक्टीरियम (Corynebacterium), कर्टोबैक्टीरियल (Curthobacterium)।

वर्ग समूह 18 (Group 18) : अंतः बीजाणु बनाने वाले गै्रम-ग्राही शलाका या छड़ें एवम् गोलाणु (Endospore-forming Gram-Positive Rods and Cocci)

वंश (Genera): बैसिलस (Bacillus), क्लॉस्ट्रीडियम (Closridium)

वर्ग या समूह 22 (Group 22): नोकार्डियोफॉर्म ऐक्टिनोमाइसिटीज (Nocardioforma Actinomyeetees)

उपवर्ग या उपसमूह 1 (Subgroup 1) :

वंश (Genera): नोकार्डिया (Nocardia), रोडोकॉकस (Rhodococcus)

वर्ग या समूह 30 (Group 30): माइकोप्लाज्मा (अथवा मॉलिक्यूट्स कोशिका भित्तिहीन जीवाणु (Mycoplasmas(or Mollicutes) : Wall Bacteria)

वंश (Genera): माइकोप्लाज्मा (Mycoplasma), स्पाइरोप्लाज्मा (Spirplasma), अनिश्चित या अपरिभाषित फाइटोप्लाज्मा = माइकोप्लाज्मा सदृश जीव (Phytoplasms=MLOs)

14.3 प्रमुख पादप रोगजनक वंष

जीवाणुओं के कुछ सबसे अधिक सामान्य पादप रोगजनक वंशों (Phytopathogenic genera) के मुख्य लक्षण निम्न है -

1. एग्रोबैक्टीरिया (Agrobacterium)
2. क्लेवीबैक्टर (Clavibactet)
3. एर्बिनिया (Erwinia)
4. स्यूडोमोनास (Pseudomonas)
5. जैन्थोमोनास (Xanthomonas)
6. स्ट्रेप्टोमाइसीज (Streptomyces)
7. जिलेला (Xylella)

14.4 पादप रोगजनक जीवाणुओं में पैथोवार अथवा उपजातियाँ

यह शंका करके कि कुछ पादप रोगजनक जीवाणुओं, विशेष रूप से स्यूडोमोनास एवम् जैन्थोमोनास वंशों की अनेक जातियों को स्केरमान एवम् सहयोगी (Skerman et al.,1980) द्वारा प्रकाशित 'जीवाणु नामें की स्वीकृत सूचियों'' (Approved lists of Bacterial Names) में स्थान नहीं मिल सकेगा, पादप रोग विज्ञान की अन्तर्राष्ट्रीय समिति'' (International Society of Plant Patholigy) ने जीवाणुओ के प्रचलित नामों को बनाये रखने में उपयुक्त प्रस्ताव देने के लिए एक समिति का गठन किया। डाइ एवम सहयोगी (Dye et al.,1980) की यह समिति जीवाणु की उन जातियों के नामों के लिए एक ''पैथोवर नाम पद्धति'' (System of pathova names) को बनाने सफल हुयी जिनकी जातियों के नाम प्रचलित होने के साथ-साथ पादप जीवाणु वैज्ञानिकों द्वारा मान्य भी थे, परन्तु किसी कारण से 'स्वीकृत सूचियों में स्थान नहीं हो पाया क्योंकि इसको जैन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस से अधिक भिन्न नहीं माना गया था अतः इस जाति का नाम जैन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस पैथावार ओराइजी रख दिया गया। इसी प्रकार दूसरी

जातियों जैसे स्यूडोमोनास वेसीकैटोरिया का नाम स्यूडोमोनास सिरिंगी पैथोवार वेसीकैटोरिया रखा गया।

मुख्य जीवाणु

1 आलू का पूरा विगलन (Brown rot of Potato)	स्यूडोमोनास सोलेनेसिएरम
2 सिट्रस कैंकर (Cirrus canker)	जैन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस पैथोवार सिट्राई
3 धान का जीवाणुज अंगमारी (Batcterial blight of Paddy)	जैन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस पैथोवार ओराइजी
4 कपास का कोणीय पर्णचित्ती रोग (Angular leaf sport of cotton)	जैन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस पैथोवार मालपेसियेरस
5 सेब एवम् नाशपाती का दग्ध अंगमारी (Fire blight of Apple & Pear)	एर्विनिया एमीलोवोरा
6 गाजर का मृदुविगलन (Soft rot of crucifers)	एर्विनिया कैरोटोवोरा
7 क्रूसीफ़र का काला विगलन (Black rot of crucifers)	जैन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस पैथोवार कैम्पेस्ट्रिस
8 गन्ने का लाल धारी रोग (red stripe of sugarcane)	स्यूडोमोनास रूबीलिनियेन्स

14.5 बागवानी फसलों के मुख्य जीवाणुज रोग

14.5.1 आलू का जीवाणुज भूरा विगलन एवम् म्लानि

आलू का यह रोग मुख्य रूप से उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में बहुत अधिक मिलता है। भारत में लगभग समस्त आलू उगाने वाले मुख्य क्षेत्रों जैसे - हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, मणिपुरा, त्रिपुरा, मेघालय, उड़ीसा एवं तमिलनाडु इत्यादि में इसका प्रकोप बहुतायत से होता है। महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्नाटक (मैसूर) के पठारी भाग एवं बिहार के कुछ भागों में भी आलू की फसल पर इसका आक्रमण पाया गया है तथा आन्ध्रप्रदेश में भी पिछले कुछ वर्षों से इसकी शिकायतें मिली है। भारत में जहां आलू बरसात में उगाया जाता है, वहां इस रोग का प्रकोप बहुत व्यापक होता है। पश्चिम बंगाल और उड़ीसा के मैदानों भागों में दक्षिण भारत के पठारी क्षेत्रों में यह रोग आलू के अतिरिक्त टमाटर, बैंगन, मिर्च इत्यादि पर भी पाया जाता है। प्रायः इस रोग के आक्रमण से पौधे शिशु अवस्था में मर जाते हैं तथा यह आलुओं को गोदाम एवं परिवहन के दौरान भी गला कर बहुत अधिक हानि पहुंचाता है। कुमाऊ और नीलगिरी की पहाड़ियों पर इस रोग के कारण लगभग 30-70 प्रतिशत हानि होने का अनुमान है।

लक्षण -

रोग ग्रस्त पौधों के भूमि से ऊपर वाले भाग दिन में मुरझा जाते हैं और संध्या के समय तापमान कम होने पर पुनः स्वस्थ से दिखाई पड़ने लगते हैं। रोग का प्रकोप अधिक बढ़ने पर रोग ग्रस्त पौधे बोने एवं कास्य रंग के हो जाते हैं तथा इनकी निचली पत्तियां पीली पड़ जाती हैं और शीघ्र ही पौधे मुरझा कर सूखने लगते हैं। अधिक नमी एवं गर्मी के कारण रोग उत्पन्न करने वाले जीवाणु शीघ्रता से बढ़ते हैं और तने का निचला भाग भी सड़ने लगता है।रोगी तने एवं आलुओं के अन्दर का भाग भूरे रंग में बदल जाता है। इस रोग को भूरा विगलन इसिलिए कहते हैं कि संवहन पूलों में दारू ऊतकों का रंग भूरा हो जाता है। यह भूरापन रोग ग्रस्त तनों की सतह पर गाढ़े धब्बों अथवा वर्ण रेखाओं के रूप में मिलता है। आलू के रोगों कंदों को यदि काटा जाये तो संवहन पूलों के भूरे हो जाने से एक भूरा वलय दिखाई देता है, जिस कारण से यह एक सर्वांगी या दैहिक संवहनी तंत्र रोग है।

Fig. 10.18 Brown rot of potato caused by *Pseudomonas solanacearum.*

जब रोग का अधिक प्रकोप होता है, तो कंदों पर स्थित आंखें कलिकायें काली हो जाती है तथा इनके सिरों पर से जीवाणुज चेप जैसा निकलता है।यदि रोगी कंदों या तनों को आड़े रूप में काटन ेपर अंगुलियों से दबाया जाये तो गले हुए भूरे संवहनी बंडल के वलय से एक चिपचिपा भूरा सफेद, जीवाणुज निपंक या रस की बूंदे बाहर निकल पड़ती हैं। यद्यपि रोगग्रस्त पौधों के सभी कंद रोगी नहीं होते हैं, परन्तु अक्सर अधिकांश कंदों पर रोग का संक्रमण हो जाता है।

रोग चक्र

यह एक मृदोढ़ रोग है। रोगजनक जीवाणु भूमि में 9 से 16 माह तक जीवित रहता है तथा यह रोधी पौधे अवशेषों एवं मृदा में छूटे कंदों पर भी मृतजीवी रूप में रहता है। इस रोग का जीवाणु कंदों में भी जीवित रहता है और सम्भवतःनम स्थानों पर रोग फैलाने का मुख्य कारण यही बीज आलू होते हैं। जब बुवाई के लिए बीज कंदों को चाकू से, असावधानी से काटते हैं, तो जीवाणु चाकू के माध्यम से स्वस्थ कंदों में भी पहुंच जाता है। जीवाणु घावों के रास्ते से संक्रमण करते हैं। खेत मे निराई-गुड़ाई करते समय यदि असावधानी के कारण पौधों की जड़ों पर घाव बन

जाते हैं, तो संक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है। खेत में जीवाणु सिंचाई एवं वर्षा के जल मिट्टी एवं यंत्रों द्वारा फैलते हैं। मृदा का उच्च तापमान एवं अधिक नमी रोग को बढ़ाने में सहायक होती है। प्रायः अम्लीय एवं क्षारीय दोनों ही प्रकार की मृदाओं मे यह रोग समान रूप से फैलता है।

प्रबंधन -

रोग फैलाने वाले अनेक कारणों को ध्यान में रखते हुए, निम्न रोकथाम के उपायों को करने से रोक की रोकथाम की जा सकती है

1. कम से कम तीन वर्ष का फसल चक्र मक्का, गेहूं, जौं, सोयाबीन, लाल शिरा घास इत्यादि के साथ अपनाना चाहिए।
2. बीज के लिए आलू का चयन सदैव ऐसे स्थानों से करना चाहिए, जहां इस रोग का प्रकोप न हुआ हो। कंदों को बोने से पहले चाकू से बीच में लगभग आधा सेमी गहरा काटकर 30 मिनट तक स्ट्रोप्टोसाइक्लीन नामक दवाई (2 ग्राम दवा एवं 10 लीटर जल) के घोल में डुबोना चाहिए।
3. यदि मृदा उपचार कुछ रसायनों, जैसे क्लोरोपिक्रिन, गंधक, चूना इत्यादि से किया जाये तो मृदा में उपस्थित सभी जीवाणु नष्ट हो जाते हैं। मृदा उपचार एक प्रतिशत 0.5 प्रतिशत नीला थोथा अथवा 0.5 प्रतिशत स्ट्रेप्टोसाइक्लीन के द्वारा भी किया जा सकता है, परन्तु यह उपचार महंगा होने के कारण अव्यावहारिक है।
4. रोग ग्रस्त पौध-अवशेषों एवं कंदों को खेत से निकाल कर देना चाहिए।
5. जिन खेतों में रोग पैदा होता है, उनमें वर्षा के जल निकास का उचित प्रबंध करना चाहिए।
6. खेत मे एवं उसके आस-पास सोलेनेसी कुल के खरपतवारों को नहीं उगने देना चाहिए।

14.5.2 सिट्रस कैंकर या नींबू का खर्रा रोग

यह नींबू वंशीय वृक्षों का एक प्रमुख जीवाणुज रोग है, जो विश्व के लगभग सभी नींबू वंशीय वृक्ष उगाने वाले देशों में व्यापक रूप से पाया जाता है। भारत में फॉसेट एवं जेनकिन्स 1933 ने वर्ष 1927 तथा 1931 में कागजी नींबू के देहरादून (उ.प्र.) से एकत्र किये गये नमूने पर इसके विपक्षों को पाया था। जावा में वर्ष 1842 एवं 1844 के बीच सिट्रस औरेन्टिफोलिया के एकत्र किये गये नमूने पर सिट्रस कैंकर के विक्षपों को देखा था। ऐसा माना जाता है कि इस रोग की उत्पति भारत या जीवों में ही हुई थी। इस रोग का विस्तार विश्व के अनय देशों में हुआ। संयुक्त राज्य अमेरिका के कैलिफोर्निया राज्य में से रोग का प्रकोप इतना भयंकर हुआ कि वहां पर इसका उन्मूलन करेने के लिए नींबू जाति के हजारों उद्यान नष्ट कर दिये गये। वर्ष 1914 से 1931 तक वहां नींबू जाति के सभी उद्यानों के रोग - ग्रस्त वृक्षों को सामूहिक उन्मूलन 2 करोड़ 50 लाख डालर से भी अधिक व्यय करके किया गया ओर लगभग 30 लाख रोगग्रस्त वृक्षों को नष्ट कर दिया गया तथा उसके बादकिसी अन्य स्थान से नींबू जाति के बीज, फल, पुष्प, कलम एवं वर्धी जनन सामग्री लाने पर संगरोध नियमन लागू करके कड़ा प्रतिबंध लगा दिया गया

तथा उसके बाद किसी अन्य स्थान से नींबू जाति के बीज, फल, पुष्प, कलम एवं वर्धी जनन सामग्री लाने पर संगरोध नियमन लागू करके कड़ा प्रतिबंध लगा दिया गया। अब वहां के उद्यानों से यह रोग पूर्णतयाः समाप्त हो गया है। वर्ष 1913 से पहले तक इसरोग को कच्छू या स्कैब से भिन्न नहीं माना जाता था, परन्तु बाद में इसकी जीवाणु जनित प्रकृति पर कोई संदेह नहीं रहा। आज भी यह रोग भारत, चीन, जापान ओर जावा इत्यादि देशों के लिए एक गंभीर समस्या बना हुआ है। भारत में यह रोग नींबू वंशीय फल वृक्षों के शत-प्रतिशत उद्यानों में पाया जाता है और कागजी नींबू, खट्टा, मौसम्बी, संतरा आदि के वृक्षों पर बहुत अधिक हानि पहुंचाता है। इस रोग को 'नींबू का नासूर' भी कहते हैं।

लक्षण-

वास्तव में कैंकर शब्द कैंसर का एक अपभ्रंश है, जिसका मुख्य प्रभाव ऊतकक्षय होता है। इस रोग का आक्रमण वृक्ष की पत्तियों, टहनियों कांटों, पुरानी शाखाओं और फलों इत्यादि सभी वायव भागों पर होता है। सर्वप्रथम रोग के लक्षण पत्तियों के ऊपर छोटे गोल , जलमय, पारभासक धब्बों के रूप में दिखाई देते हैं। यह धब्बे पीत भूरे और उभरे हुए दानों के समान होते हैं। आरम्भ में यह पत्ती की निचली सतह पर बनते हैं, परन्तु बाद में दोनों सतहों पर बन जाते हैं। जैसे जैसे रोग बढ़ता है, इन दानों की सतह सफेद अथवा धूसर रंग की हो जाती है और अन्त में यह मध्य से फटकर खुर्दरे या रूक्ष, कटारे-सदृश, कार्क के समान काष्ठीय हो जाते हैं। इस गुण के कारण इसका नाम काष्ठ रोग पड़ गया है। यह दाने आकार में बढ़कर 1 मिमी से 1 सेमी तक व्यास में हो जाते हैं और फलों एवं टहनियों पर कई दाने एक स्थान पर मिलकर लंबे विक्षतों के रूप में दिखाई देते हैं। यह खुरदरे विक्षत या क्षतस्थल एक पीत भूरे उभरे किनारे तथा जलमय पीले प्रभामंडल द्वारा घिरे रहते हैं।बड़ी शाखाओं पर यह उतकक्षयी विक्षत या कैंकर अनियमित आकार के खुरदरे और अत्यधिक स्पष्ट होते हैं। फलों पर बने विपक्ष पत्तियों

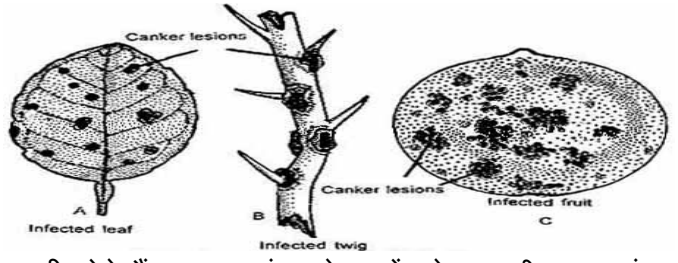

के विक्षतों के समान ही होते हैं परन्तु यहां इनके चारों ओर का पीला प्रभामंडल अनुपस्थित होता है तथा इनके मध्य में कटोर जैसा गड्डा अधिक स्पष्ट होता है।

इन विक्षतों या दानों (कैंकर) का आकार - प्रकार नींबू वृक्षों की जाति के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है। खट्टा नींबू एवं माल्टा पर यह दाने या फफोले छोटे, उठे हुए और लगभग 2 से 3 मिमी व्यास में होते हैं, जबकि ग्रेपफुट एवं प्यूमेलो पर इनका आकार काफी बड़ा होता है और यह लगभग 8 से 10 मिमी व्यास में होते हैं। फलों पर बने दाने या विक्षत केवल छिलके की गहराई तक ही सीमित होते हैं और गूदे अथवा रस को इनसे कोई क्षति नहीं होती है, परन्तु इनके बहुत अधिक मात्रा मे बन जाने पर फूलों का छिलका फट सकता है। इन दानों के कारण बाजार में फलों का मूल्य कम हो जाता है। पत्तियों या पर्णवृंतो के संक्रमण से शाखाओं का

निष्पत्रण भी हो सकता है। टहनियों पर बने कैंकरों के कारण शाखाएं उस स्थान पर आसानी से टूट जाती है। रोग ग्रस्त वृक्ष बोने भी रह जाते हैं और उनमें प्राप्त फलों की उपज बहुत घट जाती है। वैसे तो रोग वृक्षो पर पूरे वर्ष पाया जाता है, परन्तु यह वर्षा ऋतु में अधिक फैलता है।

रोग चक्र

नींबू वंशीय फल वृक्ष बहुवर्षीय होते हैं। अतः पुराने संक्रमित वृक्षों की टहनियों एवम् पत्तियों पर रोगजनक जीवाणु सदैव जीवित रहने में सफल हो जाता है। इस प्रकार संक्रमित वृक्षों पर उपस्थित पुराने विक्षत या कैंकर ही जीवाणु उत्तरजीविता के मुख्य साधन हैं तथा प्राथमि निवेश द्रव्य जो संक्रमित पत्तियां एवं टहनियां नीचे भूमि पर गिर जाती है, उन पर उपस्थित जीवाण प्रतिजैविता के कारण नष्ट हो जाता है। रोगी वृक्षों से स्वस्थ वृक्षों तक ओर वृक्ष के रोगी भागों से स्वस्थ भागों तक रोगजनक जीवाणु का प्रकीर्णन वायु, नींबू, पर्ण सुरंगक कीटों तथा वर्षा की बंूदों द्वारा होता है। तेज वर्षा की वातोढ़ बौछारें भी जीवाणु के प्रसार में सहायक होती हैं, यही कारण है कि यह रोग वर्षा-ऋतु में अधिक शीघ्रता से फैलता है। परन्तु रोग के प्रसार और नये क्षेत्रों मे रोग उत्पन्न करने में स्वयं मनुष्य द्वारा प्रयोग किये गये संक्रमित नर्सरी मूलवृन्तों का सबसे अधिक हाथ रहता है। जीवाणु का परपोषी के भीतर प्रवेश प्राकृतिक रन्ध्रों या कीटों अथवा कीटों से उत्पन्न घावों द्वारा होता है। परपोषी के भीतर एक बार प्रवेश कर लेने केबाद ऊतांकें में जीवाणु अन्तराकोशिकी अवकाशों में बड़ी तेजी से वृद्धि करके गुणज करते हैं और मध्यपटल को विलगित करके वल्कुट में स्थापित हो जाते हैं। नए उद्यानों में इस रोग का प्रवेश रोगग्रस्त पौद या नर्सरी मूलवृन्तों द्वारा होता है।

अनुकूल पर्यावरण -

सिट्रस कैंकर रोग के उत्पन्न होने तथा वृद्धि के लिए 20 डिग्री से 35 डिग्री से. का तापमान (अनुकूनतम तापमान लगभग 30 डिग्री से.) अधिक आर्द्रता, पत्तियों की सतह पर 20 मिनट या इससे अधिक समय तक जल की उपस्थिति तथा परपोषी सतह पर किसी प्रकार का घाव होना इत्यादि अनुकूल अवस्थाएं हैं। पत्तियासें का संक्रमण पर्ण रन्ध्रों की सघनता एवं परिपक्वता से संबंधित होता है तथा उनके विकास के दौरान यह सबसे अधिक होता है। रोगजनक जीवाणु को संक्रमित पत्तियों में छः माह तक, निर्जमित मृदा में 52 दिन तक और अनिर्जमित मृदा में 9 से 17 दिन तक उत्तरजीवी पाया गया है। जीवाणु द्वारा परपोषी पत्तियों का संक्रमण करने में नींबू पर्ण सुरंगक कीट फिलोक्विस्टिस सिट्रेला सहायक है। कहीं कहीं पर अधिकांश विक्षत या कैंकर इन्हीं कीटों द्वारा उत्पन्न विकृतियों पर पाये जाते है।

भारत में इस रोग का आक्रमण कागजी नींबू,खट्टा नीबू इत्यादि के वृक्षो पर अधिक पाया गया है जबकि संतरा एवं मौसम्बी के वृक्ष अपेक्षाकृत कम आक्रांत होते हैं। नींबू वंशीय वृक्षों में जातीय रोगग्रहिता को क्रमशः कागजी, नींबू, ग्रेपफुट, कर्नाखट्टा, मौसम्बी, संतरा में क्रमबद्ध किया जा सकता है, जबकि लेमन को रोगप्रतिरोधी जातियों की श्रेणी में रखा जा सकता है। उत्तर प्रदेश में कुमकुआट पर कैंकर रोग बिल्कुल उत्पन्न नहीं होता है, परन्तु वास्तव मे यह जातीय भेद भूभाग के मौसम पर निर्भर करता है। गर्म मैदानी क्षेत्रो में नींबू वंशीय कुछ जातियां कम रोगग्राही होती है, जबकि ठंडे पहाड़ी क्षेत्रो मे वहीं जातिया अधिक रोगग्राही हो सकती है। अतः इस प्रकार देश के विभिन्न क्षेत्रो में रोग प्रतिरोध एवं रोगग्राहिता के जातीय गुण भिन्न भिनन होते हैं।

रोग प्रबंधन -

इस रोग की रोकथाम के लिए निम्नलिखित उपायो ंकी सिफारिश की गयी है -

1. रोगग्रस्त टहनियों की छंटाई करके तथा गर्मियों में भूमि मे पड़े रोगग्रस्त मलबे को एकत्र करके जलाने से प्राथमिक निवेश द्रव्य की मात्रा को कम यिा जा सकता है।
2. नींबू वंशीय फलों के नये उद्यान लगाते समय केवल रोगमुक्त पोद या नर्सरी मूलवृन्तों का ही प्रयो करना चाहिए।
3. नये उद्यान में रोपण करने से पहले पौद पर 1 प्रतिशत (5 : 5: 50) बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करना चाहिए।
4. इस रोग का प्रसार वर्षा ऋतु में अधिक होता है अतः मानसून प्रारम्भ होने से पहले ही वृक्षों के ऊपर 1 प्रतिशत बोंदों मिश्रण या 0.3 प्रतिशत बलाइटॉक्स 50 का छिड़काव आरम्भ कर देना चाहिए तथा मौसम के अनुसार 15 से 20 दिन के अन्तर में छिड़कते रहना चाहिए। रंगास्वामी एवं सहयोगी 1959 तथा निर्वान 1960 के अनुसार दस लाख भाग जल में 50 - 1000 भाग स्ट्रेप्टोमाइसीन सल्फेट अथवा 2500 भाग फाइटोमाइसीन प्रतिजैविक रसायन का छिड़काव 15 दिन के अन्तर पर करने से रोग पूर्णतया रोका जा सकता है। यदि इस घोल में 1.0 प्रतिशत ग्लिसरीन को मिला दिया जाए तो पोधेां के वायक भाग इन रसायनों को भली भांति अवशोषण कर लेते हैं। यह रसायन सर्वागी होते हैं और यह परपोषी के भीतर पहुचकर वहां उपस्थित जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं। वर्ष 1987-88 में श्रीरामपुर केन्द्र पर किये गये परीक्षणों में खट्टा नीबू पर 10 लाख भग जल में 100 भाग स्ट्रेप्टोमाइक्लीन +0.03 प्रतिशत कॉपर ऑक्सीक्लोराइड(ब्लाइटॉक्स - 50, फाइटोलान, क्यूप्राविअ इत्यादि) के छिड़काव द्वारा रोग को पूर्णतया नियंत्रित किया गया है।
5. वहीदउद्दीन एवम् सहयोगी 1957 के अनुसार 25 किग्रा नीम की खली को 100 लीटर ज लमे तथा रेड्डी एवं पापा राव 1960 के अनुसार 1 किग्रा खली को 20 लीटर जल मे एक सप्ताह तक भिगोए रखने के बाद 3 सप्ताह के अन्तर पर कई छिड़काव करने से न केवल रोग नियंत्रित होता है अपितु वृक्ष को पोषक तत्वों की भी प्राप्ति होती है। इस छिड़काव से नई एवं स्वस्थ शाखाओं का जन्म होता है, जो जीवाणु को संक्रमण में सहायक करते हैं।
6. रोग नियंत्रण का सबसे उपयुक्त एवं सरल उपाय नींबू वंशीय वृक्षों की रोगरोधी किस्मों का प्रयोग है। वर्ष 1987-88 में कागजी नीबू की तीन किस्मों एसएन -2 संकर एवम् सकर 4 को पंजाब राव कृषि विद्यापीठ, अकोला में कैंकर रोग प्रतिरोध विकिसत किया गया है। इसी प्रकार वर्ष 1990-91 में तिरूपति केन्द्र पर खट्टा नींबू के एक कैंकर मुक्त क्लोन की पहचान की गयी है।

14.5.3 गाजर का मृदुविलगन

यह रोग खेत की अपेक्षा गोदाम में अधिक हानि पहुंचाता है। रोगकारक जीवाणु एक तीव्र विषैला रोगजनक होता हे, जो पौधों के सरस भागों, विशेष रूप से कंदों को अधिक प्रभावित करता है।

लक्षण -

रोग के लक्षण कंदों पर मृदु, जलसिक्त, अनियमित विक्षतोंके रूप में दिखायी देते हैं - आंरभ में यह विक्षत कम या अधिक धरातलीय होते हैं, परन्तु शीघ्र ही यह कंद के भीतरी ऊताकों में फैले जाते हैं। गाजर के संक्रमित ऊतक मृदु एवं जलीय या अवपंकी हो जाते है और जैसे जैसे विगलन बढ़ती है, इनसे एक जलीय निःस्त्राव निकलता दिखाई देता है। रोगी कंदों से दुर्गंध आने लगती है। आरम्भ में पौधे के ऊपरी भाग हरे ही बने रहते हैं, परन्तु कंद के पूर्ण रूप से गल जाने के बाद मुरझा जाते हैं। रोगजनक रोगी कंदों के साथ संग्रह किये जाने वाले स्थानो पर पहुंच जाता है, जहां यह तीव्रता से फैलता है और स्वच्छ कंदों के भीतर यातायात से बने घावों अथवा खरोंचे द्वारा प्रवेश करता है। जीवाणु एक बार कंद में प्रवेश करने के बाद बड़ी तीव्रता से वृद्धि करता है, जिससे कि सम्पूर्ण उपज को हानि पहुंचती है|

रोग चक्र -

जीवाणु मृदा में मृत और सरस पादप ऊताकों पर मृतजीवी के रूप में जीवित रहता है। यह परपोषी के भीतर घावों के द्वारा प्रवेश करकके कोशिकांतरावकाशों में पहुंच जाता है। इन अवकाशों में यह धीरे - धीरे बहुगुणज करके पेक्टिनोलाइटिक एन्जाइम उत्पन्न करता है और तीव्रता से फैलने लगता है। यह एन्जाइम मध्य पटल पर क्रिया करके उनको समाप्त कर देता है।

रोग प्रबंधन -

रोग उत्पन्न करने वाला जीवाणु एक क्षय परजीवी है। अतः कर्षण क्रियायें करते समय तथा खुदाई के समय परपोषी को घाव एवं खरोच से बचाने का प्रयास करना चाहिए। रोगी कंदों को स्वस्थ कंदों के साथ संग्रह नहीं करना चाहिये। कंदों को संग्रह करने से पहले आंशिक रूप से सुखा लेना चाहिये, जिससे कि इनकी त्वचा रोग का प्रतिरोध कर सकें। कंदों को शीतागार में रखने से मुदुविगलन अधिक नहीं फैलती हैं इसको 0 डिग्री से. तापमान एवम् 90 प्रतिशत आपेक्षक आर्द्रता पर संग्रह करना चाहिए।

14.5.4 सिट्रस हरीतिमा या नींबू का हरित रोग

नारियल, रायचैधरी एवम् भल्ला 1967 ने उत्तरी एवम् मध्य भारत में नींबू वंशीय वृक्षों के शीर्षारंभी क्षय से संबंधित एक सर्वेक्षण के आधार पर बताया है कि उन्हें जम्मु, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश एवम् महाराष्ट्र में विषाणु-जनित रोग ट्रिस्टैता या तीव्र अपक्षय के साथ साथ हरित रोग भी मिला है। चैहान एवम् क्लोर 1970 का मत है कि इस रोग की व्यापकता को देखते हुए यह आशंका है कि यह रोग धीरे धीरे ट्रिस्टेजा से भी अधिक भंयकर सिद्ध होगा। माटिनेज एवं साथियों 1971 का मत है कि ट्रिटेजा विषाणु तथा हरित रोग के

रोगजनक में योगवाहिता होने से यह दोनों रोग नींबू-वंशीय वृक्षों में अपक्षय के लिये उत्तरदायी होते हैं। इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि शीर्षरंभी क्षय का एक मुख्य कारण हरित रोग ही है।

लक्षण -

इस रोग के प्रमुख लक्षणों से परिपक्व पत्तियों की मध्यशिरा एवम् पाश्र्व शिराओं का पीला पड़ना है। पत्तियों के अंतराशिरीय क्षेत्र में भी विसरित पीलापन आ जाता है तथा बाद में सम्पूर्ण पत्ती पीली पड़ जाती है। पत्तियों पर पीतिमा, पर्णहरित शून्यता या पीलिया के यह लक्षण बिल्कुल उसी प्रकार के होते हैं जैसे - जिंक (जस्ता) की कमी से उत्पन्न होते हैं। पीताभ भाग में कहीं-कहीं हरे टुकड़े भी दिखाई पड़ते हैं। ऐसी पत्तियां गरमी के महीनों में झड़ जाती हैं तथा इसके साथ ही तने में उल्टा सूखा या शीर्षारंभी क्षय हो जाता है। प्रायः नयी बाहर भी निकल सकती है, जिन पर छोटी सीधी खड़ी एवम् हरिमाहीन पत्तियां निकलती है जिनकी शिराएं हरी अथवा पूर्ण फलक पर हरे धब्बे होते हैं। कभी कभी पीले फलक पर छोटे छोटे वृत्ताकार हरे धब्बे भी प्रकट होते हैं। अन्य गौण लक्षणों में पत्ती का छोटा या मोटा होना तथा सीधे खड़ी रहना है। शाखाओं की पोरी छोटी होती है और उन पर कलियां अधिक निकलती हैं तथा शीर्षस्थ क्षय के लक्षण प्रकट होते हैं। रोगी वृक्षों पर पुष्प समय से पहले ही निकल आते हैं और फल आकार में छोटे रह जाते हैं। वृक्षों में जड़ों की संख्या भी कम हो जाती है और वृक्ष बौना प्रतीत होता है। यदि परिपक्व वृक्षों की अपेखा तरूण वृक्ष रोग द्वारा प्रभावित होते हैं तो उनकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है। यह रोग मन्दारिन, खट्टा नींबू एवम् ग्रेपफूट की अपेक्षा माल्टा पर अधिक उग्र रूप में उत्पन्न होता है।

नरियानी 1971 के अनुसार हरित रोग से ग्रस्त वृक्षों में ग्लूटैमिक अम्ल, ग्लाइसीन, फेनिल, ऐलानिन एवम् ल्यूसीन जैसे ऐमीनों अम्लों की मात्रा शून्य हो जाती हैं तथा ऐस्पार्टिक अम्ल, लाइसीन, हिस्टिडीन, थियोनिन, मेथियोनिन, ऐलानिन एवम् टाइरोसिन की मात्रा बहुत कम हो जाती है।

रोग चक्र -

नींबू का हरित रोग पैदा करने वाले जीवाणु का संचरण कायिक प्रवर्धन और सिट्रस सिल्ला कीट की दो जातियां: डायफ़ोरिना सिट्राई एवम् ट्रोयाज़ा एरीट्रेड द्वारा होता है (बॉवे 1986)। इलेक्ट्रोन सूक्ष्मदर्शी अध्ययनों ने इस जीव के संचरण ट्रायोजा एरीट्रड की भूमिका को प्रमाणित भी कर दिया है (मॉल एवम् मार्टिन, 1973)। यह रोगवाहक कीट उत्तरी एवम् मध्य भारत में अन्य भागों की अपेक्षा अधिक पाये जाते हैं। कीट के रोगी पत्तियों से आहार ग्रहण करने के 8 से 12 दिन बाद तक जीवाणु उसके शरीर में वृद्धि करता है। कीट इस ऊष्मायन या उद्भवन अवधि के बाद ही संक्रामक होता है तथा एक बार जीवाणु को ग्रहण करने के बाद अपने सम्पूर्ण जीवन काल तक संक्रामक बना रहता है। केवल एक ही रोगवाहक कीट इस रोग के संचरण के लिए पर्याप्त होता है। संक्रामक कीट द्वारा स्वस्थ पौधे में रोग का संचरण कम से कम चार घंटे तक संक्रमण आहार करने के बाद ही होता है। रोगवाहक सिट्रस सिल्ला कीट अपनी डिम्भक अवस्था में भी जीवाणु को ग्रहण कर सकता है, परन्तु यह इसे स्वस्थ वृक्षी में संचरित नहीं कर सकता है। (मॉल एवम् मार्टिन 1973)। यह डिम्बक बाद में वयस्क कीट होने पर रोग

का संचारण कर सकता है गार्निएर एवम् बॉवे 1983 ने जीवाणु के संचरण का उल्लेख अमरबेल द्वारा माल्टा में पेरिविन्कल में होने के लिए किया है।

भारत में हरित रोग का संसूचन सूचक पौधों जैसे - मौसंबी, माल्टा, कागजी नींबू, मन्दारिन, ग्रपफ्रूट एवम् वेस्ट इंडियन लाइम की पौद का प्रयोग करके और वर्ण लेखन द्वारा किया जाता है। नींबू के संक्रमित ऊतकों में हरित रोग का संसूचन प्रतिदीप्ति प्रतिरक्षी तकनी का प्रयोग करके भी किया गया है। (Raychaudhuri et at.,1972 et al., 1975)

रोग प्रबंधन -

बगीचों में सभी बुरी तरह से रोगग्रस्त एवम् अलाभकारी वृक्षों को काट कर नष्ट कर देना चाहिए तथा संसूचित मूलवंतों अथवा बीजांड कायिक पौद से उगाये गये पौधों को ही रोपित करना चाहिए। यद्यपि कुछ वर्षों बाद इस स्वस्थ वृक्षों को भी जीवाणु के रोगवाहक कीट सिट्रस सिल्ला द्वारा संक्रमित कर दिया जाता है। अतः सिट्रस सिल्ला कीअ का उन्मूलन 0.02 प्रतिशत डायजिनान,एन्ड्रिन या पैराथियान अथवा 0.05 प्रतिशत मेलाथियान कीटनाशी दवा का 10 से 15 दिन के अन्तर में नियमित छिड़काव करके किया जा सकता है, जिससे कि रोग का प्रसार बहुत कम हो जाता है। हरित रोग के प्रबंधन के लिए किसी भी योजना को कार्यान्वित करने में निम्न तीन कार्य अवश्य पूरे करने चाहिए -

1. बगीचों में रोगी वृक्षों का उन्मूलन करना,
2. संसूचित मूलवृन्तों अथवा बीजांडकायिक पौद से प्राप्त कली या कलम से उत्पन्न नये स्वस्थ पौधों को लगाना
3. रोगवाहक सिट्रस सिल्ला एवम् अन्य कीटों का नियमित उन्मूलन करना।

यद्यपि कपूर एवम् थिरूमलाचवार, नरियानी एवम् सहयोग 1971 तथा नरियानी एवम् भगवती 1977 से नीबू के हरित रोग के लक्षणांे के टेट्रासाइक्लीन के उपचार द्वारा रोकने की दावा किया था। इसी प्रकार नरियानी एवम् सहयोगी 1975 ने भी रोगजनक जीवाणु को ऊष्मा उपचार द्वारा निष्क्रिय करने में सफलता पायी थी। परन्तु कपूर एवं चीमा तथाचीमा एवम् सहयोगी 1985 में नींबू के वृक्षों पर बाविस्टिन सर्वांगी कवकनाशी तथा लेडरमाइसिन प्रतिजैविक के मिश्रण के छिड़काव द्वारा रोग से शत प्रतिशत विमुक्त होने का उल्लेख किया जाता है। बाविस्टिन एवं लेडरमाइसिन में से प्रत्येक 20 लाख भाग जल में 500 भाग (500 पीपीएम) रखा जाता है और 10 दिन के अन्तर पर छः छिड़काव किये जाते हैं। अकेले लेडरमाइसिन प्रतिजैविक का छिड़काव रोग को रोकने में प्रभावी नहीं होता है, जबकि अकेले बाविस्टिन के छिड़काव द्वारा रोग बहुत कम हो जाता है।

14.5.5 टमाटर का जीवाणु मुरझान

रोगजनक - रालस्टोनिया सोलेनेसिरम

या

सिमोडोमोनास सोलेनेसिरम

लक्षण - पत्तियां पीली पड़ कर सूख जाती है सम्पूर्ण पौधा सूख जाता है।

रोग प्रबंधन -

1. प्रतिरोधी जातियों का उपयोग।
2. गर्मी की जुताई।
3. उचित फसल चक्र अपनाएं।

14.5.6 ब्लैक लेग ऑफ पोटेटो

रोगजनक - इर्बीनिया जाति

लक्षण - पत्तियां सिकुड़ना, मुड़ना, छोटी होना, पौधे का बोना होना।

रोग प्रबंधन -

1. कीड़ो की रोकथाम करें।
2. फसल चक्र अपनाएं।

14.5.7 फलियों का झुलसा रोग

रोगजनक - जैन्थोमोनास फैसिओली

लक्षण - पत्तियों पर जल सिक्त और पारदर्शक धब्बे हो जाना। तना और फल्ली भी प्रभावित होती है।

14.5.8 पान का पर्ण दाग

रोगजनक - जैन्थोमोनास बेटलीकोला

लक्षण - पत्तियों पर काला धब्बा होना और उसके चारों और का भाग पीला होना। ये धब्बे बड़ कर मिल जाते हैं।

रोग प्रबंधन -

1. एग्रीमाइसिन 100 0.025प्रतिशत सेबेल उपचारित करें।
2. स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करें।

14.5.9 पान की पत्तियों का झुलसन, कैंकर

रोगजनक - जैन्थोमोनास जाति

लक्षण - पत्तियां झुलस जाती हैं और हल्के भूरे रंग की हो जाती हैं। तने पर काले धब्बे हो जाते हैं।

रोग प्रबंधन -

1. एग्रीमाइसिन 100 - 0.25 प्रतिशत से बेल उपचारित करें।
2. स्ट्रेप्टोसाइक्लिन - 0.05 प्रतिशत का छिड़काव करें।

14.6 सारांश

बागवानी फसलों में जीवाणु रोग मुख्यतः आलू, नीबंू, गाजर, फलियों वाली सब्जियों तथा पान में पाया जाता है। इन रोगों को समय पर नियंत्रण करने से हम फसल की हानि रोक सकते है।

14.7 बोध प्रष्न

1. सिट्रस कैंकर या नींबू का खर्रा रोग के मुख्य लक्षण एवं रोकथाम समझाइए
2. आलू का भूरा विगलन रो का रोग चक्र समझाइए।
3. धान का जीवाणुज अंगमारी का रोगजनक .....है।
   - अ स्यूडोमोनास सोलेनेसिएरम
   - ब जैन्थोमोनास कैम्पेस्ट्रिस
   - स दोनों
   - द इनमें से कोई नहीं

14.8 संदर्भ सामग्री

1. Reddy,T.Y. and Reddi, G.H.S. 2000,Principles of Agronomy, Kalyani Publishers,New Delhi.
2. शर्मा, ओ.पी., इन्टोदिया, एस.के., शर्मा, एस.एल. एवं नेकेला, एन.एस. 2009, शस्य-विज्ञान (कृषि वर्ग), माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राजस्थान अजमेर.
3. Singh,Chhidda.1999,Modern Techniques of Raising Field Crops ,Oxford & IBH publishing company private limited ,New Delhi.
4. Singh ,S.S. 1993,Crop Management under lirrigated and Rainfed Conditions,Kalyani Publishers,New Delhi.
5. अहलावतए आई. पी. एस., प्रकाश, ओंम एंव सिंह, पी. के., सस्य विज्ञान के सिद्वान्त एंव फसलेंए रामा पब्लिशिंग हाउसए मेरठ.
6. सिंह, बी.पी., पादप रोग विज्ञान, रामा पब्लिषिंग हाउस, मेरठ.

इकाई 15

भण्डारित अनाज के कीट

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 अनाज बिगडने के कारण

15.3 अनाज में अक्सर लगने वाले कीट

15.4 भंडारण में विभिन्न स्त्रोतों से कीटों की पहुंच

15.5 अनाज भण्डारण की विधियां

15.6 भण्डारणगृह में अनाजों का भण्डारण करते समय बरती जाने वाली सावधानियां

15.7 प्रघूमन (प्यूमीगेशन)

15.8 चूहों की रोकथाम

15.9 फलों का भण्डारण एवं डिब्बा बंदी

15.10 सारांश

15.11 बहु चयनात्मक प्रश्न

15.12 संदर्भ

15.0 उद्देश्य :-

भण्डारित अनाज में नुकसान पहुॅचाने वाले कारकों को समझना, कीटों की प्रवृति व हानि करने की प्रकृति की अवधारणा को स्पष्टिकरण करना, उनकी अनाज तक पहुंच, प्रचलन मे भण्डारण की विधियां तथा प्रबन्धन हेतु रखी जाने वाली सावधांनियों एवं उचित प्रघूमन के प्रभावी व सुरक्षित उपायों को जानना

15.1 प्रस्तावना :-

कृषि के क्षेत्र में अनाज ही समृद्वि का प्रतीक माना गया है। हमारे देश में हरित क्रांति से अनाज का उत्पादन बढा है। अनाज का हर दाना कीमती है एवं अनाज ही मुद्रा है। भूमि, श्रम, पूंजी, साहस और प्रबन्ध उत्पादन, इन पॉचों कारकों के एकीकृत प्रतिफल के रूप में प्राप्त अनाज वास्तव में बहुत कीमती है। हमारे देश में पिछले तीस वर्षो की तुलना में अनाज का उत्पादन दुगने से अधिक हो गया है, परन्तु अथक परिश्रम के बावजूद उपलब्ध अनाज को सही तौर पर और समय पर संभाल न सकने के कारण बहुमूल्य अनाज नष्ट हो जाता है एक अनुमान के अनुसार देश में लगभग 10-12 प्रतिशत अनाज किसी न किसी कारणवश भण्डारण में नष्ट हो जाता है। इस बरबादी को रोकना किसान व देश के सर्वदा हित में होगा। आज यह सर्वविदित है कि अनाज भण्डारण एवं उसकी सुरक्षा हमारे देश की अर्थव्यवस्था का एक मूल धरोहर है।

15.2 अनाज बिगडने के कारण :-

1. भौतिक - नमी और तापमान।
2. जैविक - फफूंद, चूंहे, सूक्ष्म जीव, कीट आदि।
3. रसायनिक - अनाज पर किसी रसायन के सीधे सम्पर्क या रसायनिक क्रिया के कारण।
4. यांत्रिक - अनाज को मशीन आदि द्वारा नुकसान होने पर टूटे हुए दानों का भण्डारण।

15.3 अनाज में अक्सर लगने वाले कीट :-

खरीफ एवं रबी दोनों फसलों में पैदा होने वाले अनाज को कृषक घर पर संग्रहित करते है। इन अनाजों में प्रायः लगने वाले कीट सुरसुरी, खपरा, घुन, लट, ढोरा, आदि प्रमुख हैं।

1. सुरसुरी (साइटोफिलस ओराइजी) :-

यह कीट भूरे लाल रंग का करीब 2.5-3.0 मि.मी. लम्बा होता है। इसके सिर का अग्रभाग नुकीला होता है। प्रौढ़ मादा अनाज के दानों में छोटी सी गुहा बनाती है तथा उसमें अण्डे विसर्जित करती है। और इसे एक चिपचिपे द्रव स्राव से बंद कर देती हैं। आमतौर पर सिर्फ एक अंडा एक दाने में देती है। इस तरह मादा अपने अल्पकालिक जीवन (एक माह) में 300-400 अंडे देती है। अंडे एक हफ्ते बाद छोटे पांव विहीन कुछ झुकी हुई लट (ग्रब) में बदल जाते हैं। यह दाने के भीतर ही खाते हुए बढती रहती है। 3-4 हफ्ते बाद लट परिपक्व होकर शंखी के रूप में बदल जाती है। इस अवस्था में कीट कुछ नहीं खाते। एक हफ्ते तक ऐसे ही पडे रहने के बाद प्रौढ दाने को काट कर बाहर आ जाते है। इसके बाहर आने के बाद दाना या अनाज काफी हल्का हो जाता है। ऐसे आक्रमित दाने पानी में डालने पर ऊपरी सतह पर आ जाते हैं। इस कीट का प्रकोप सर्वप्रथम चावल पर पाया गया था किन्तु अब भण्डारण में गेहूँ के लिये भी एक समस्या बन गया है।

2. छोटा अनाज बेधक, घुन (राइजोपर्था डोमिनिका) :-

अनाज घुन यह कीट सुरसुरी से छोटा और सूंड व्हीन होता है। इसका सिर भी छोटा होता है। प्रौढ़ मादा अण्डे सतह या अनाजो के बीच में देती है और 300-500 अण्डे तक देने में समर्थ होती है। अण्डे से एक हफ्ते बाद लट (ग्रब) निकलती है। इसकी 6 टांगे होती है। यह भी सुरसुरी की तरह अनाज को भीतर से ही खाती है और 3-4 हफ्ते बाद पूर्ण विकसित होकर शंखी के रूप में बदल जाती हैं। शंखी से एक हफ्ते बाद प्रौढ़ बनते हैं। इस कीट की लट (ग्रब) व प्रौढ़ दोनो अवस्थायें अनाज को हानि पहुचाती है।

3. खपरा (ट्रोगोडर्मा ग्रेनेरियम) :-

प्रौढ़ मादा 4 मि.मी. लंबी अण्डाकार आकृति की होती है। नर प्रौढ का आकार मादा प्रौढ के मुकाबले आधा होता है। मादा प्रौढ लगभग 100-125 सफेद अण्डे अनाज की सतह या दरारों में देती है। अण्डे 4-5 दिन में 35 डिग्री सेल्सियस ताप पर लट (ग्रब) बनाते है। ये दाने की टूट को खाते हैं। लट (ग्रब) लगभग 1 महीने तक खाने के बाद शंखी का निर्माण करती हैं। शंखी 5-6 दिन के बाद प्रौढ के रूप में बदल जाती है।

4. **आटे का लाल कीड़ा, धनेरा (ट्राइबोलियम कैस्टेनियम)** :-

प्रौढ़ एक चपटा कीट लम्बाई में 5-6 मि.मी. का होता है। यह अण्डे अनाज के दानों पर देता है। जो एक हफ्ते बाद लट (ग्रब) का रूप ले लेते हैं। लट (ग्रब) सफेद व हल्की लाल होती है जो दाने के अंकुरित वाले स्थान और उसमें उपलब्ध पाउडर को खाती हैं। लट 3-4 हफ्ते में पूर्ण विकसित होकर दाने के ऊपर शंखी बना लेती है। लट (ग्रब) एक हफ्ते बाद प्रौढ़ के रूप में बदल जाते हैं।

5. दालों का ढोरा (पल्स बीटिल) :-

यह छोटा व चैकोर आकृति के साथ साथ अपने मुखांगो के अग्रभाग जो कि भोंधरा होता है, से जल्दी पहचाना जा सकता है। ये कीट दानों को खाकर सीधा नुकसान तो करते ही है बल्कि वे अपनी जीव क्रियाओं से भण्डार की नमी व तापमान बढाते है जो अनाज पर फफूंद का आक्रमण बढाने में सहायक होते है।

6. बादाम का पतंगा (काड्रा काटेला) :-

यह पतंगा अपने अग्र पंख पर गहरे धारी रंग बनाये रखते हैं। यह लम्बाई में 8 मि.मी. तक का होता है। यह अपने सफेद अण्डे अनाज में और अन्य सतहों पर बिखेर देते हैं। अण्डे 4-5 दिन में विकसित होकर 1 मि.मी. से भी छोटी लट (केटरपिलर) में बदल जाते हैं और अनाज को खाना शुरू कर देती है। लट (केटरपिलर) 3-4 हफ्ते तक लगातार खाने के बाद शंखी के रूप में बदल जाती है। शंखी अनाज में या उसमें रखे हुए भंडारण पात्र के बाहर बनती है। शंखी से प्रौढ़ (पतंगा) 5-7 दिन बाद बाहर निकलता है।

7. अनाज का पतंगा (साइटोट्रोगा सीरियेलेल्ला) :-

यह पतंगा अग्र पंख की ओर बहुत ज्यादा रोंयेदार होता है। अण्डे लगभग 8-10 मि.मी. लंबे होते है। किन्तु पंख फैलाने के बाद 15 मि.मी. लंबा हो जाता है। यह धान की बालियों के परिपक्व होने पर तथा धान के भंडारण वाले स्थान पर भी अण्डे देते है। इस तरह दिये गये अण्डों से छोटी लट (केटरपिलर) एक हफ्ते बाद निकलकर धान के जोड वाले स्थान से अंदर घुसती है। लट (केटरपिलर) लगभग 3-4 हफ्ते तक खाने के बाद शंखी में बदल जाती है। शंखी बनने से पूर्व लट (केटरपिलर) धान में एक छोटा सा गोल आकृति का कटाव बनाती हैं और सिल्क रूपी धागों (स्राव) से बंद कर देती है। शंखी बनने के 1 हफ्ते बाद पतंगा इसे खोलकर बाहर आ जाता है।

8. चावल का पतंगा (कोर्सिरा सिफेलोनिका) :-

पतंगा 10-12 मि.मी. लम्बा होता है। प्रौढ़ मादा 200 अंडे देती है। अंडे से 4-5 दिनों में लट (केटरपिलर) बन जाती हैं और यह टूटे हुए दानों को खाती हैं। लट (केटरपिलर) 4-5 हफ्ते तक खाने के बाद शंखी के रूप में बदल जाती है। लट (केटरपिलर) चावल में खाने के साथ साथ रूई जैसी जालीनुमा नाली का निर्माण करती है। शंखी से पतंगा 9-10 दिन बाद बाहर निकलता है।

15.4 भंडारण में विभिन्न स्त्रोतों से कीटों की पहुंच :-

- कुछ कीट जैसे चावल की धुन, दाल का भृंगॅ व अन्न का शलभ अपने अण्डे खेत में ही पकती फसल के दानों पर दे देते हैं और वे दानों के साथ भण्डार में भी पहुंच जाते है।
- खलिहानों में पुराने अनाजों अथवा कूड़ा-करकट आदि में छिपे रहते हैं तथा मड़ाई के समय दानों में अपने अंडे दे देते हैं और भंडारण में पहुंच जाते है।
- अनाज ढोने वाले बर्तनों, बोरों आदि में कीट की विभिन्न अवस्थाएं सुसुप्तावस्था में छिपी रहती हैं तथा अनाज ढोने के समय भण्डार गृह या कोठी में चली जाती है।
- भंडारण हेतु प्रयुक्त किये जाने वाले बिनों (कोठियों) आदि में पहले से ही छिपे हुए कीट सक्रीय अथवा सुसुप्तावस्था में रहते हैं और नये अनाजों को रखने के बाद इनका प्रकोप धीरे-धीरे उपयुक्त वातावरण मिलने से बढ़ जाता है।
- वयस्क (शलभ) अनाज के लगे ढेरों में उड़कर भी अपने अंडे देते हैं और अनाज के साथ ये भण्डारों में पहुंच जाते है।

15.5 अनाज भण्डारण की विधियां :-

1. पारम्परिक :-

आज देश में अनाज की कुल पैदावार का लगभग 70 प्रतिशत अनाज गांवों में किसानों के यहां भण्डारित किया जाता है। इसका कुछ प्रतिशत बेचने के पश्चात् शेष बचे हुए का अपने परिवार के पालन पोषण हेतु उसका भण्डारण अपने खेतों पर बने स्थानों या घरों में करते है। परन्तु देखा गया है कि उचित व्यवस्था व ज्ञान के अभाव में अनाज खराब हो जाता है। जिसका आर्थिक हरजाना किसान को भुगतना पड़ता है कारण है पारम्परिक भण्डारण की विधियां जैसे कि मिट्टी के पात्र, लकड़ी पटसन की बोरियां, ईट आदि जो कि अनाज को लम्बी अवधि अथवा आगामी फसल तक अच्छी हाल में रखने में असमर्थ रहते है।

2. उन्नत भण्डारण :-

अधिकांशतः गांवों में अनाज का भडारण ऊंचे पक्के फर्श वाले कमरे में या पक्की बनी कोठरी या कोठी या मिट्टी के बडे बर्तनों में किया जाता है, किन्तु इन सबमें छोटे किसानों के लिए धातु से बनी कोठियां अधिक उपयुक्त हैं जिनमे 3 क्विंटल से लेकर 10 क्विंटल तक अनाज, कोठी की क्षमता के अनुसार रखा जा सकता है।

वर्तमान में अनाज का उत्पादन अधिक होता है। तब उसका भण्डारण पक्के फर्शवाले बडे कमरे में किया जाता है, जिसमें अनाज को बोरों में भरकर रख देते हैं। भण्डारणगृह में बोरों को नमी से बचाने के लिए फर्श पर बांस की चटाई के साथ पॉलीथीन शीट बिछाकर या लकडी के चैखटे बिछाकर बोरों को उसके ऊपर बल्लियों मे रख देते है। बोरे रखते समय ध्यान रहे कि बल्लियां दीवारें से सटी न होकर लगभग 75 से.मी. की दूरी पर हों ताकि दीवारों की नमी बोरों में प्रवेश न कर सके। बल्लियों केा इस प्रकार लगाना चाहिये कि भण्डार में आने जाने का रास्ता बना रहे जिससे समय समय पर बोरों का निरीक्षण किया जा सके। भण्डारणगृह में बोरों को कमरे की ऊंचाई के 3/4 भाग तक ही रखें ऊपर का 1/4 भाग खाली रहे।

15.6 भण्डारणगृह में अनाजों का भण्डारण करते समय बरती जाने वाली सावधानियां :-

1. जहां तक सम्भव हो भण्डारण के लिए पक्के गोदाम बनाने चाहिए, जिसकी दीवारें नमी अवरोधी हों।
2. भण्डारण से पूर्व गोदामों एवं कोठियों की दीवारों में बनी दरारें व गड्ढों को सीमेंट से बंद कर देना चाहिए, जिससे उसमें कीट शरण न ले सके।
3. गोदाम की सफाई अच्छी प्रकार करके दरवाजे आदि खोल देने चाहिए, जिससे गोदाम अच्छी प्रकार सूख जाये। भंडारण से पूर्व गोदाम में मैलाथियॉन 50 ई.सी. नामक कीटनाशी रसायन का 5 मि.ली./लीटर पानी में घोल बनाकर दीवारों, फर्श आदि पर अच्छी प्रकार छिड़काव करना चाहिए, जिससे कोनों, दरारों आदि में छिपे कीट मर जाये।
4. पुराने बोरों को प्रयोग में लाने से पूर्व उबलते पानी में 15 मिनट तक डुबोकर अथवा मैलाथियॉन 50 ई.सी. को 10 मि.ली/लीटर पानी में घोलकर 10 मिनट तक डुबोकर अच्छी प्रकार धूप सुखाने के बाद ही प्रयोग में लेना चाहिए।
5. अनाज ढोने वाले बर्तनों, गाड़ियों एवं भंडारित करने हेतु प्रयोग में लाये जाने वाले बिनों (कोठियों) की अच्छी प्रकार सफाई करके धूप में सुखा लेना चाहिए।
6. नयी फसल की मढ़ाई से पूर्व खलिहान की सफाई करने के पश्चात् गोबर से अच्छी प्रकार लिपाई करके सुखाना चाहिए।
7. अनाज को खलिहान में अच्छी प्रकार धूप में सुखा लेना चाहिए, ताकि उसमें नमी 8-10 प्रतिशत से ज्यादा न रहने पाये।
8. यदि अनाज को बोरों में भरकर भंडारण करना हो तो गोदान के फर्श पर 75 सें.मी.मोटी सूखे भूसे की तह लगा देनी चाहिए तथा बोंरों को दीवारों से 75 से.मी. की दूरी पर रखना चाहिए ।
9. भंडारण से पूर्व अनाज में एक किलो ग्राम नीम की निम्बोली का पाउडर प्रति क्विंटल की दर से मिलाकर भंडारित करनें पर कीटों का प्रकोप बहुत कम होता है ।
10. बीज के लिए भंडारित किये जाने वाले अनाजों को मैलाथियॉन 5 प्रतिशत धूल की 2.5 ग्राम /कि.ग्रा. कि दर से मिलाकर भंडारित करना चाहिए तथा इस तरह से उपचारित बीज को कभी भी खाने के कम में नहीं लें ।
11. छोटे किसानों को आज-कल प्रचलित जी.आई. शीट की चादरों से बने बिनों का प्रयोग करना चाहिए। यह 50 कि.ग्रा. से लेकर 10 क्विंटल भंडारण क्षमता वाले आकार में उपलब्ध हैं। किसान अपनी आवश्यकता अनुसार बिनों को कृषि विभाग से क्रय कर मिलने वाली छूट का लाभ भी ले सकते हैं। पर्वतीय क्षेत्र में इसका उपयोग काफी लाभदायक एवं सुरक्षित हैं, क्योंकि किसानों को कम मात्रा में ही अनाज का भंडारण करना होता हैं।

15.6 प्रघूमन (फ्यूमीगेशन) :-

भण्डारण अवधि में अनाज को कीटों से सुरक्षित रखने के लिए निम्न में से कोई एक उपाय अपनाना चाहिए।

1. ई.डी.बी. (एथीलीन डाई ब्रोमाइड) :-

यह रसायन विभिन्न आकार में 3,6,15,30 मिली के कांच के एम्पुलों में उपलब्ध होता है। यह एम्पुल रूई में लिपटी कपडे की बंद थैली में मिलती है जिसे अनाज के अन्दर रखकर संडासी या प्लास से दबाकर तोड देते हैं। टूटे हुए एम्पुल को लकडी की सहायता से अनाज के अन्दर की सतह में धंसाकर कोठी या मिट्टी के बर्तनों का मुंह यथा शीघ्र ढंककर गीली मिट्टी से सील कर देते है। यह गैस हवा से 6.25 गुना भारी होती है। अतः कोठी की निचली सतह तक अपने आप पहुंचकर भण्डारण अवधि में बनी रहती है। जिससे यदि अनाज में कीट पैदा हुए भी तो पनप नहीं पाते और मर जाते हैं तथा अनाज सुरक्षित बना रहता है। एक क्विंटल अनाज में लिए 3 सी.सी. वाला एक एम्पुल पर्याप्त है। यदि अनाज बोरों में रखा गया हो तो ईडीबी एम्पुल की वांछित संख्या को बोरों के ऊपर तोडकर तुरन्त पॉलीथीन चादर से ढंक दें। इस दशा में रसायन की मात्रा का प्रयोग अनाज के बोरों के आयतन के आधार 10 मि.ली. दवा प्रति घन मीटर की दर से करना होता है। अनाज को पॉलीथीन से न ढका जा रहा हो तो दवा का प्रयोग पूरे कमरे के आयतन को ध्यान में रखकर करना होगा। दवा के प्रयोग के बाद 7 दिन तक भण्डार को न खोलें।

2. एल्यूमीनियम फॉस्फाइड :-

इस रसायन का प्रयोग अनाज मे लगने वाले कीट और चूहों को मारने के लिए किया जाता है। यह रसायन बाजार में कई नामों से मिलती है जैसे सेल्फास, फॉस्टाक्सीन आदि। यह रसायन 3 ग्राम वाली 10 टिकियों के पैकेट में और 0.6 ग्राम वाली छोटी पिलेट (टिकियों) के रूप में पन्नी में बंद मिलती है। 1 टन अनाज को संग्रहित करने के लिए 3 ग्राम वाली 2-3 टिकिया पर्याप्त होती है। रसायन हवा में मौजूद नमी के सम्पर्क में आने से फॉस्फीन नाम की गैस पैदा करती है जो बहुत जहरीली होती है। इसलिए इसके प्रयोग मे बहुत सावधानी बरतने की जरूरत है। इस दवा की गंध कार्बाइड की गंध के समान होती है। भण्डारणगृह में इसका प्रयोग करने के लिए प्रयुक्त टिकियों की संख्या की आधी टिकियो को बोरों में रख देते हैं। टिकियों को रखने का काम 10-15 मिनट में समाप्त कर लेना चाहिए क्योकि लगभग आधा घंटे बाद टिकियों से जहरीली गैस निकलना शुरू हो जाती है। इस रसायन का प्रयोग धातु की कोठी मे अनाजों को कीटों से सुरक्षित रखने के लिए मुख्य रूप से किया जाता है। इसी प्ररकार कोठी में अनाज रखने के बाद टिकिया को एक मिट्टी के दीपक में रखकर अनाज के ऊपर रख देते हैं और कोठी का ढक्कन बंद करके उसके मुंह पर चारों ओर तथा अनाज निकालने के रास्ते पर गीली मिट्टी लगाकर सील कर देते हैं जिससे जहरीली गैस कोठी से बाहर न निकल पाये। कोठी से अनाज निकालते समय दीपक को पहले हटा लेना चाहिए जिसमें रसायन का सफेद राख जैसा पाउडर मौजूद होगा। यह ध्यान रहे कि रसायन पाउडर अनाज में मिलने न पाये। यथा संभव घरों में इसका प्रयोग नहीं करें।

3. प्रंघूमन (फ्यूमीगेशन) बरती जाने वाली विशेष सावधानियां :-

भण्डारणगृह में अनाज को सुरक्षित रखने के लिए जो रसायन ऊपर बताई गयी हैं वे अत्यन्त जहरीली हैं अतः इनका प्रयोग किसी प्रशिक्षित कार्यकर्ता की देखरेख में ही करें। गोदाम, कोठी, बर्तन आदि जिसमें अनाज को रखकर दवा से उपचारित किया जाये उसे आवास के कमरों से दूर होना चाहिए। किसी भी प्रकार की दुर्घटना हो जाने पर तुरन्त डॉक्टरों से सलाह लेना चाहिए।

- प्रघूमन विष जैसे एल्यूमिनियम फास्फाइड एवं ई.डी.बी. एम्पयूल का प्रयोग प्रतिबंधित है, इसलिए इनका प्रयोग बहुत ही सावधानी से अति आवश्यक होने पर ही करना चाहिए। किसानों को चाहिए कि इनके प्रयोग से पूर्व अपने विकास खण्ड के कृषि इकाई अथवा जिला कृषि अधिकारी से सम्पर्क करके इनके प्रयोग के बारे में जानकारी प्राप्त कर लेवें।
- अनाज का भण्डारण हमेशा अलग मकान में करें, जिसे रहने हेतु प्रयोग न किया जाता हो।
- उपचारित अनाज को खाने हेतु प्रयोग में लाने से पहले कम से कम एक सप्ताह पूर्व बिन से बाहर निकाल लें तथा पानी से अच्छी प्रकार धोकर धूप में सुखा लें।

15.7 चूहों की रोकथाम :-

गोदामों में भी चूहे बिल बनाकर पहुंच जाते हैं इन बिलों को खोजकर उनमें सेल्फास की 3 ग्राम वाली टिकिया की चैथई टिकिया या 0.6 ग्राम की पिलेट डालकर उसका मुंह गीली मिट्टी से बंद कर देना चाहिए। इसके अतिरिक्त जिंक फास्फाइड से बने जहरीले रसायन की पुडियों को चूहों के आने जाने के रास्ते पर, दीवारों के किनारों और कोनों में रख देना चाहिए। जहरीला रसायन एक भाग जिंक फास्फाइड, एक भाग सरसों का तेल तथा 48 भाग दलिया मिलाकर बना सकते हैं। 2-3 दिन बाद बची हुई जहरीली पुडियों और जहरीले दानों को बीनकर मिट्टी में गाड देना चाहिए। जिससे कोई अन्य जानवर उसे न खा सके और जहरीला अनाज अच्छे अनाजो ंमें न मिल सके।

15.8 फलों का भण्डारण एवं डिब्बा बंदी :-

फलों की तुड़ाई के उपररांत फलों के सही भण्डारण व डिब्बा बंदी का बहुत महत्व है। सही ढंग से रखरखाव न करने की स्थिति में किसानों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है। फलों की तुडाई हमेशा सुबह या शाम करनी चाहिए।

फलों को तोडने की पश्चात् उन्हें धोकर या साफ करके छांटकर डिब्बों में बंद कर देना चाहिए। फलों को उनकी आवश्यकतानुसार डिब्बों में भरना चाहिए। डिब्बे के अन्दर एक कागज की तह रखे या अलग-अलग फलों को कागज में लपेटना चाहिए। अतः निम्नानुसार फलों का रखरखाव करके उनको को नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

1. किन्नू :-

किन्नू को लकड़ी के डिब्बों में बंद करके पॉलीथीन के लिफाफे में डालकर उन्हें बिना ऊर्जा भण्डारण के कक्ष में रखा जाए तो इन्हें 56 दिन तक आसानी से बिना किसी गुणात्मक बदलाव के रखा जा सकता है परन्तु इस दौरान इन लिफाफों को 15-30 मिनट तक प्रति सप्ताह खोल देना चाहिए ताकि उनमें जमी दुर्गन्ध तथा पानी की बून्दे निकल जाएं।

किन्नू के फलों को 7 दिन तक बिना किसी उपचार के कमरे के तापमान पर रखा जा सकता है। यदि इन्हें 0.5% कैप्टान के घोल (5 ग्राम कैप्टान/लीटर पानी) या 20% तिल के तेल (20 मि.ली. तेल + 2 मि.ली.टीपोल/लीटर पानी) से उपचारित कर दिया जाये तो फलों को 21 दिन तक रखा जा सकता है।

2. **अंगूर** :-

अंगूर तोडने के पश्चात नही पकते इसलिए इन्हें पूरी पकी हुई अवस्था में ही तोडना चाहिए। अच्छी किस्म के अंगूरों के अच्छे दाम मिलते है। गुच्छे के पकने का अन्दाजा गुच्छे के आखरी अंगूरों को देखकर लगाया जा सकता है। गुच्छे को तोडते समय उन्हें केवल तने से पकडना चाहिए, ताकि वास्तविकता न बिगडे। डिब्बाबंदी से पहले गुच्छे में से टूटे, सडे तथा खराब अंगूर के दानों को निकाल देना चाहिए। गुच्छों को उनकी आकार व कुल घुलनशील तत्वों के आधार पर अलग अलग करना चाहिए। कुल घुलनशील तत्व परलेट, थोम्पसन तथा ब्यूटी सीडलैश में क्रमशः 18-19, 20-21 तथा 17-18 होना चाहिए।

गुच्छे को अलग-अलग करने के पश्चपात् उन्हें गत्ते के डिब्बे में अखबार का कागज लगाकर पैक करना चाहिए। बीमारी की रोकथाम के लिए 5 किलो के डिब्बे में 5 ग्राम ब्लीचिंग पाउडर अखबार के नीचे रखना चाहिए।

3. आम :-

तोड़े हुए फलों को उनकी किस्म, आकार और पकने की अवस्था के आधार पर अलग-अलग करना चाहिए। पूरी तरह पके हुए फलों को नजदीक की मंडी में भेजें या संरक्षण के लिए प्रयोग में लाएं। अच्छे फलों को लकड़ी की पेटी में अखबार लगाकर दूर मंडी में भेजना चाहिए।

4. अमरूद :-

पूरी तरह पके हुए फलों को नजदीक की मंडी में भेजना चाहिए क्योकि इनका स्थानान्तरण में नुकसान हो सकता है। दूर की मण्डी के लिए फलों को लकड़ी के डिब्बों में पैक करना चाहिए। दूर-दराज की मंण्डियों में भेजने के लिए अमरूद की अपरिपक्व अवस्थाओं में जबकि फल हरे रंग के हो तोडने चाहिए। उस समय फल का अपेक्षित धनत्व 1.05 होना चाहिए। गर्मियों में फलों का भण्डारण नही किया जा सकता लेकिन सर्दियों में हरी अवस्था में 2-3 दिन रखा जा सकता है।

5. बेर :-

फलों को तोडने से 10-15 दिन पहले कैप्टान या मैकोजेब (500पी.पी.एम.) का छिड़काव करने से तोडने के उपरान्त फलों को 8 दिन तक सड़ने से बचाया जा सकता है। बेर की डिब्बाबंदी के लिए कोरूगेडिट कार्ड बोर्ड के डिब्बे या बांस की टोकरियों में कागज के टुकड़ें डालकर उपयोग करने चाहिए। वर्गीकरण करने के उपरान्त ही फलों को बेचने से अधिक लाभ लिया जा सकता है। बडे आकार (35 ग्राम) के फल लगभग दुगनी कीमत पर बिकते है।

15.9 सारांश :-

वर्णित इकाई में भण्डारण के महत्व के बारे में परिचित होना - समस्या उत्पन्न में कारकों के बारे मे जानकारी तथा विभिन्न स्त्रोतों से कीटों का संक्रमण होना, भिन्न-भिन्न प्रकार

के कीटों की विभिन्न अवस्थाओं द्वारा भण्डारित अनाज को क्षती पहुँचाने की जानकरी हासिल कर सुरक्षात्मक उपायों को अपना कर उचित भण्डारण को जानना जिससे भण्डारित अनाज को नुकसान करने वाले कारकों से बचाया जा सके और अन्त में अत्यावश्यक होने पर प्रघूमन रसायनों का अनुमोदित मात्रा में समुचित तरीके से प्रयोग कर सुरक्षित अनाज भण्डारण किया जा सकता है।

15.10 बहुचयनात्मक प्रश्न

1. भण्डारण में सामान्यतया कितना प्रतिशत अनाज नष्ट होता है।
   (अ) 5-7 (ब) 10-12 (स) 15-17 (द) 20-22 {ब}
2. घुन कीट की कौनसी अवस्था अनाज को हानि पहुॅचाती है।
   (अ) ग्रब (ब) शंखी (स) दोनो (द) कोई नही {अ}
3. भण्डारण के समय अनाज में कितने प्रतिशत नमी होनी चाहिए।
   (अ) 10-12 (ब) 12-15 (स) 8-10 (द) 15-20 {स}
4. स्टॉक भण्डारण में दीवारो से बोरों की कितनी दूरी रखनी चाहिए।
   (अ) 50 सेमी. (ब) 75 सेमी. (स) 100 सेमी. (द) 25 सेमी. {ब}
5. भण्डारण से पूर्व गोदाम मे मेलाथियान 50 ई.सी. प्रति लीटर पानी में किस दर से दिवारों व फर्श पर छिडकाव करना चाहिए।
   (अ) 5 मिली (ब) 10 मिली (स) 7.5 मिली (द) 2.5 मिली {अ}

15.11 संदर्भ :-

1. Kushwaha K.S. and Sharma J.C., Safe Storage of Grains and other Products from Insect Pests and Rats.
2. अपने अनाज को कीटों से बचाईयेए निदेशालय प्रचार एवं प्रसार, खाद्य मंत्रालय, भारत सरकार।
3. Hill, D.S., Pests of stored products and their control जेकेएच